डॉ. धर्मवीर भारती की कविता : युगदर्शन के परिप्रेक्ष्य में

(एक साहित्यिक एवं समाज–दर्शन परक मूल्यांकन)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, की पी-एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

1993

निर्देशक,

डा० सियाराम शरण शर्मा

पूर्व प्राध्यापक, हिन्दी विभाग

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

शोधकर्ती,

श्रीमती विभा शुक्ला

डॉ० धर्मवीर भारती की कविता : युगदर्शन के परिप्रेक्ष्य में

डॉ धर्मवीर भारती की कविता : युगदर्शन के परिप्रेक्ष्य में
(एक साहित्यिक एवं समाज-दर्शन परक मूल्यांकन)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, की पी-एच0 डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत

1 9 9 3

निर्देशक,

डा0 सियाराम शरण शर्मा,
पूर्व प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी.

शोधकर्ता,

श्रीमती विभा शुक्ला

प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती विभा शुक्ला ने मेरे निर्देशन में **'डॉ0 धर्मवीर भारती की कविता : युगदर्शन के परिप्रेक्ष्य में, एक साहित्यिक एंव समाज दर्शन परक मूल्यांकन'** विषय पर पी-एच0 डी0 के लिए अपना शोध प्रबन्ध पूर्ण किया है । इन्होंने अत्यन्त सूझबूझ एवं मौलिक दृष्टि से शोध कार्य सम्पन्न किया है । डॉ0 धर्मवीर भारती नयी कविता के सक्षम हस्ताक्षर हैं । इनके काव्य का साहित्यिक एवं समाज दर्शन परक मूल्यांकन निश्चित रूप से एक उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया जायेगा ।

मैं यह भी प्रमाणित करता हूँ कि श्रीमती विभा शुक्ला ने बुन्देलखण्ड विश्व विद्यालय, झाँसी द्वारा निर्धारित सभी नियमों का पालन किया है तथा शोधकार्य पूर्ण करने के लिए मेरे निर्देशन के अवसर पर मेरे समक्ष 200 दिवस से अधिक की उपस्थिति दी है ।

स्थान : झाँसी

दिनांक : 1.10.1993

डॉ0 सियारामशरण शर्मा
(शोध पर्यवेक्षक)
पूर्व प्राध्यापक हिन्दी विभाग,
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी

अनुक्रम

****

भूमिका

नयी कविता हिन्दी साहित्य परम्परा की महत्वपूर्ण कड़ी हैं । दूसरा सप्तक के बाद की कविता को 'नयी कविता' के नाम से सम्बोधित किया गया है । कुछ साहित्यकार सन् 1953 में 'नयेपत्ते' के प्रकाशन के साथ ही इसका प्रारम्भ मानते हैं । यह वस्तुतः प्रयोगवाद का ही परिवर्तित एंव विकसित रूप है ।

नयी कविता के जन्म के साथ सामाजिक, आर्थिक एवं राष्ट्रीय आन्दोलनों की इतिहास गाथा जुड़ी हुई है । नये कवि ने भारतीय इतिहास के गौरवशाली पृष्ठों को देखा, उन पर गर्व किया और उन्हें अपने काव्य का कथ्य बनाया तथा इसी कथ्य के माध्यम से भारत की साधारण जनता में प्राण फूंकने का प्रयास किया । नये कवि को इस बात का बोध हुआ कि उसका इतिहास केवल उतना नहीं है, जितना उसने अपने पूर्वजों से जाना, बल्कि उसके अतिरिक्त इतिहास का बहुत बड़ा भाग ऐसा भी है, जिसे उसे स्वयं जानना है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नये कवि ने खुशहाली के स्वप्न संजोये थे । उसके मन में देश को जागृत एवं उन्नत देखने की बड़ी अभिलाषा थी, लेकिन यह सब नहीं हुआ । वह सब भी नहीं हुआ जिसे जनता ने चाहा, बल्कि हुआ वह जिसे राजनैतिक नेताओं और उनके संकेतों पर चलने वाले मोहरो ने चाहा ।

नयी कविता के पूर्वज कवि अज्ञेय, मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे, रामविलास शर्मा, गिरिजा कुमार माथुर, भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती एंव केदारनाथ अग्रवाल आदि ने इस दिशा में अत्यधिक चिंतन किया । इसी चिन्तन के परिणाम स्वरूप इनका आस्थावादी कवि रूप मुखरित हुआ है ।

नव लेखन एवं कृतिकारों की नयी पीढ़ी का नेतृत्व करने वालों में अज्ञेय के बाद 'भारती' का नाम आता है । भारती बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार हैं । उनकी कलात्मक चेतना समसामयिक परिवेश के संदर्भ में रूपायित हुई, क्योंकि किसी भी संवेदनशील कृतिकार के लिए अपने युग के बहुविध संस्पर्शो से वंचित रह जाना सम्भव नहीं होता । उसकी अनुभूति प्रवणता न केवल युगीन विशिष्टताओं को छूती है, अपितु उसका भावुक मन एक ऐसे धरातल पर समासीन हो जाता है, जहाँ कई बार वह युगीन तथ्यों को आलोड़ित करता प्रतीत होता है । अत्याधिक ऊहापोह एवं उथल-पुथल वाली बीसवीं सदी के चौथे दशक के सजग, चिन्तनशील, एवं अनुभूति प्रवण भावुक कवि के लिए यह सहज संभाव्य था कि वह अपने युग की चतुर्दिक भाव और चिन्तन धाराओं को जाने, समझे और रूपायित करे । इसी चिन्तन से प्रभावित होकर 'भारती' ने मानव समाज की विभिन्न स्थितियों, उसकी नियति और परम्पराओं को नये परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश की है । 'ठंडालोहा' से लेकर 'कनुप्रिया' तक उनकी साहित्यिक संरचना युगीन हलचलों, उत्पातों, संघर्षो, विध्वंस एवं युद्ध-

जन्य विकृति से मानवीय रक्षा के प्रयासों का काव्यात्मक चित्रण है । भावुक एवं सजग होने के नाते भारती ने युग की विषमताओं को, विघटनशील जीवन मूल्यों को गहराई से समझा तथा उसे सामयिक वातावरण में ढालकर व्यक्ति को सोचने, समझने एवं व्यवहार करने के लिए नयी दिशा प्रदान की है ।

'भारती' हिन्दी की नयी कविता के स्थापित और निर्विवाद रूप से सक्षम हस्ताक्षर है । नयी कविता का सूत्रपात एक आन्दोलन के रूप में इसी नाम की एक पत्रिका द्वारा हुआ । इस पत्रिका की सारी योजना भारती की ही बनायी हुई थी और वह इसके प्रमुख सूत्रधार भी थे । हिन्दी जगत में भारती का अभ्युदय उत्तर छायावादी गीतकार के रूप में हुआ । शिक्षाकाल में ही उनकी रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं। सन् 1951 में अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'दूसरा सप्तक' के माध्यम से अपने समकालीन कवियों में भारती सर्वाधिक रोमांटिक रूप में चर्चित हुए । इस काव्य संकलन में 'भारती' के व्यक्तित्व के अनेक आयाम आभासित हुए थे । आस्था - अनास्था, युगबोध, सौन्दर्यबोध, रूमानियत आदि प्रवृत्तियाँ इनकी कविताओं में परिलक्षित हुई । इसके पश्चात् युवा मानस के मोहभंग, निराशा, कुण्ठा एवं कटु अनुभवों के साथ समष्टिगत समस्याओं से जूझता इनका कवि व्यक्तित्व 'ठण्डालोहा' में स्पष्ट हुआ । 'ठंडालोहा' भारती की पूर्ववर्ती कविताओं का अगला सोपान है । यह संकलन सभी दृष्टियों से 'भारती' के काव्य का प्रस्थान बिन्दु है। यहाँ एक ओर उनका रोमानी मन 'फिरोज़ी होठ, 'गुनाह का गीत' आदि रचनाओं में खुल कर उभरा है, तथा दूसरी ओर युगजीवन की त्रासद स्थितियों को 'ठंडालोहा' 'फूलमोमबत्तियाँ, सपने, जैसी कविताओं में अभिव्यक्ति दे सका है । 'सातगीतवर्ष' की भावभूमि 'ठंडालोहा' के आगे का मार्ग प्रशस्त करती है । 'सातगीतवर्ष' की कविताएँ इस बात का प्रमाण हैं कि इन कविताओं के रचनाकाल में कवि मानसिक संघर्षो से जूझता रहा । इनमें कवि मन के जुड़ने, टूटने, हताश होने और पुनः जुड़ने का प्रमाण मिलता हैं।अनेकों विपरीत भावस्थितियों में उलझे होते हुए भी कवि ने अपनी आस्था को अखंडित रखा और संघर्षो को चुनौती देने का साहस किया है ।

'भारती' ने मानवीय परिवेश, परिस्थितियों व सत्य को 'अंधायुग' के माध्यम से उकेरा है तथा महाभारत के परिवेश में आधुनिक आणविक शक्ति का अन्वेषण करते हुए आस्था और मर्यादा की स्थापना की है । इस कृति का नायक अश्वत्थामा 'भारती' की हिन्दी साहित्य को बहुमूल्य देन है । यहाँ कवि ने मानवीय सत्य को सापेक्ष परिवेशों, विभाजित और विकलांग अवस्थाओं में चित्रित कर ह्रासोन्मुख नैतिक मानदण्डों के बीच मर्यादा की स्थापना की है । यह न सिर्फ महाभारत युग की बल्कि आज के युग की प्रमुख समस्या है । इस समस्या को कवि ने रागात्मकता व भावाकुलता के द्वारा राधा के माध्यम से 'कनुप्रिया' में उठाया है । ऐसा लगता है कि राधा भारतीय संस्कृति कीं मूल रागात्मक वृत्ति की प्रतीक बनकर आधुनिक जटिल परिवेश में स्वस्थ्य युग निर्माण की आकांक्षा करती है । वह युद्ध की हिंसा द्वारा नहीं बल्कि तन्मयता पूर्ण प्रश्नों द्वारा भारतीय मानस को झकझोरती है ।

इस प्रकार भारती के काव्य में परम्परा और आधुनिकता का समन्वय मिलता है । सामयिक परिवेश व उसकी समस्याओं का इनके काव्य में सफल चित्रण हुआ है ।

पिछले दशक में कुछ साहित्यकारों ने इनकी कविता के विविध पक्षों पर समीक्षात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है, किन्तु इनके काव्य का युगदर्शन के परिप्रेक्ष्य में समाज दर्शन परक मूल्यांकन कम ही हुआ है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में नयी कविता के समर्थ कवि 'भारती' की कविता का युगदर्शन के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करने का प्रयास किया है । यह कार्य मैंने डॉ0 सियाराम शरण शर्मा, पूर्व प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी के निर्देशन में पूरा किया । डॉ0 शर्मा ने अत्यन्त व्यस्तता में भी मेरे कार्य में रूचि ली और मेरी समस्त शोध सम्बन्धी कठिनाइयों का समाधान किया । डॉ0 शर्मा के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने का प्रयास ही एक दुस्साहस लगता है ।

मैं शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दतिया के डॉ0 के0बी0 एल0 पाण्डेय तथा डॉ0 हरिहर गोस्वामी की अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होने समय-समय पर अपने बहुमूल्य सुझाव दिये व सन्दर्भ ग्रन्थ उपलब्ध कराने में मेरी सहायता की । प्रो0 पी0 आर0 शुक्ल, प्रवक्ता समाज शास्त्र विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी के प्रति आभार व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं, क्योंकि विषय चयन से लेकर इसकी पूर्णाहुति तक उनका उत्साहवर्धन प्रमुख रहा, अन्यथा यह कार्य पूर्ण होना सम्भव नहीं था । अन्त में मैं उन सभी विद्वानों व लेखकों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ, जिनकी कृतियों से मुझे सहायता मिली ।

V Shukla
(विभा शुक्ला)
विभा शुक्ला

अध्याय एक - परिपार्श्विक अध्ययन

छायावाद

प्रगतिवाद

प्रयोगवाद

नयी कविता

अध्याय : 1

परिपार्श्विक अध्ययन

किसी भी साहित्यकार की साहित्यिक प्रवृत्ति के विवेचन में पृष्ठभूमि का महत्वपूर्ण स्थान होता है, क्योंकि हर रचना के मूल में वे तमाम परिस्थितियाँ मौजूद होती हैं जिनसे होकर रचनाकार को गुजरना पड़ता है । इसी अर्थ में वह युग-सत्य का साक्षात्कार करता, हर अनुभव को भोगता अपनी रचना प्रक्रिया में संलग्न रहता है ।

नई कविता के कवि डॉ0 भारती भी पिछले चार दशकों की परिस्थितियों से प्रभावित हैं और उनके काव्य की पृष्ठभूमि में आधुनिक युग की समस्त चेतना शक्तियों की अवस्थिति है । वस्तुतः पूर्व-प्रचलित आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक साहित्यिक आदि परिस्थितियों ने ही कवि की प्रतिभा को प्रभावित किया व उभारा है । इस सन्दर्भ में सुश्री महादेवी वर्मा का यह कथन समीचीन प्रतीत होता है कि 'वर्तमान, आकाश से गिरी हुई सम्बन्ध रहित वस्तु न होकर भूतकाल का ही बालक है, जिसके जन्म का रहस्य भूतकाल में ही ढूंढ़ा जा सकता है ।'[1] अतएव डा0 भारती के काव्य मर्म तक पहुंचने के लिए उसे उद्भूत तथा विकसित करने वाली पूर्व पृष्ठभूमि का संक्षिप्त अवलोकन आवश्यक है ।

छायावाद :

किसी भी काव्यधारा का उद्गम प्रथम दृष्टि में चाहे आकस्मिक प्रतीत हो, किन्तु वास्तव में वह आकस्मिक नहीं होता । उसकी पृष्ठभूमि में एक निश्चित सूत्र होता है, एक निश्चित परम्परा होती है । द्विवेदी युग छायावाद का पृष्ठाधार है । इसकी प्रेरणा एवं पृष्ठभूमि में द्विवेदी युग पर्याप्त सीमा तक सहायक था। काव्य क्षेत्र में यह मान्यता है कि एक के बाद दूसरी काव्यधारा का विकास विरोधजन्य होता है । इसी मान्यता के आलोक में छायावाद का जन्म द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता के विरोध में स्वीकारा जाता है । छायावाद अपने पूर्ववर्ती साहित्य से निरपेक्ष नहीं रह सका, यह सत्य छायावादी कवि भी स्वीकारते हैं । महादेवी के शब्दों में 'नदी के एक होने का कारण पुरातन जल नहीं, नवीन तरंग भंगिमा है । प्रत्येक युग के साहित्य में नवीन तरंगाकुलता उसे मूल प्रवाहिनी से विच्छिन्न नहीं करती, वरन् उन्हीं नवीन तरंग भंगिमाओं की अनंत आवृत्तियों के कारण मूल प्रवाहिनी अपने लक्ष्य तक पहुँचने की गति पाती है ।'[2] पंत ने भी नवीनता की अपेक्षा के साथ ही पुरातन के आधार को स्वीकृति प्रदान की है ।

---

1. महादेवी वर्मा, 'सप्तपर्णा' पृष्ठ - 59,   2. महादेवी वर्मा, 'सप्तपर्णा', पृष्ठ- 11

छायावाद के उदय के सम्बन्ध में आलोचकों में मतवैभिन्य है, फिर भी विभिन्न मत-मतान्तरों की उपस्थिति के बावजूद यह लगभग निर्णीत हो चुका है कि छायावाद का उदय प्रथम विश्व युद्ध के आसपास, लगभग सन् 1920-22 में हुआ । इस समय कुछ ऐसे कलाकारों ने साहित्य सृजन प्रारम्भ किया, जिनका व्यक्तित्व किसी सीमा में आबद्ध न होकर अनुभूति की अभिव्यक्ति में स्वतंत्र था । ये कवि मानवमन के भावों को मात्र सामाजिक मानने की अपेक्षा वैयक्तिक भी मानते थे । वे वैयक्तिकता का कण्ठ अवरूद्ध करना नहीं चाहते थे । यही दृष्टिकोण छायावाद का आधार बना ।

'सामान्यतः प्रथम एवं द्वितीय महायुद्ध के मध्य की उस कविता को जो सौन्दर्य के प्रति आस्था, वैयक्तिक दृष्टिकोण, प्रकृति का मानवीकरण, लाक्षणिकता एवं प्रतीकात्मक शैली तथा नूतनत्वप्रियता की प्रवृति आदि को प्रश्रय देकर चली, छायावाद कहा जाता है ।'[1]

'कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश विदेश की सुन्दरी के बाहृय वर्णन से भिन्न, वेदना के अधर पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी, तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया ।[2]

छायावाद के जन्म के मूल में तत्कालीन परिस्थितियों का विशेष प्रभाव है । उस समय का इतिहास अनेक विसंगतियों से भरा हुआ है । यह एक ऐसा युग था जबकि सर्वत्र असंतोष की लहर व्याप्त थी । भारतवासी स्वतंत्रता के लिए प्रयत्नशील थे, परन्तु इस संघर्ष में कई कारणों से वे शान्तिमय उपायों को अपनाने हेतु विवश थे । जो इस ढ़ंग से असंतुष्ट थे, उनके आतंकवादी प्रयत्न भी छुटपुट रूप से चल रहे थे । महात्मा गाँधी जैसे प्रभावशाली नेता की उपस्थिति भी इन आतंकवादी प्रयत्नों को चुप नहीं करा सकी थी । उन दिनों एक ओर राजनीति के रंगमंच पर विदेशी सत्ता का विरोध किया जाता था तो दूसरी ओर मानवता के कल्पित आदर्श की भूमि पर विदेशियों के स्वागत की तैयारी होती थी । अनेकता में एक-रूपता देखने वाली हमारी भारतीय संस्कृति का राजनैतिक क्षेत्र में यह एक अनूठा प्रयोग था । सन् 1920 में काँग्रेस का नेतृत्व लेकर गाँधी जी ने विदेशी सत्ता की समाप्ति हेतु असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया ।' असहयोग आन्दोलन इसी प्रयत्न का मूर्त रूप था, उसे सिर्फ राजनैतिक रूप तक सीमित नहीं समझना चाहिए । यह सम्पूर्ण देश का आत्म स्वभाव समझने का प्रयत्न था, और अपनी गल्तियों का सुधार कर संसार की समृद्ध जातियों की प्रतिद्वंद्विता में अग्रसर होने का संकल्प था ।'[3]

'आर्थिक व्यवस्था के क्षेत्र में यह समय प्राप्ति सूचक नहीं था । अंग्रेजों ने हमारे देश की आर्थिक उन्नति में व्यवधान उपस्थित कर दिया, उनकी नीति सदैव शोषण की थी ।'[4]

---

1. सुषमापाल,'छायावाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि पृ0-13 । 2. जयशंकर प्रसाद 'काव्यकला तथा अन्य निबंध पृ0 22 ।

अंग्रेजो के आने के पूर्व देश में कुटीर उद्योगों का प्रचलन था । अंग्रेजों ने उन्हें समाप्त कर आर्थिक स्थिति को और भी शोचनीय बना दिया । कुटीर उद्योगों के स्थान पर नवीन औद्योगिक व्यवस्था का निर्माण किया, फलस्वरूप बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि होती गयी । अकाल, टैक्स एवं भुखमरी से जनता त्रस्त हो उठी, अतः हड़तालें हुई, व मजदूरों एवं किसानों ने जमकर संघर्ष किया । इसलिए श्रमिक एवं कृषक जागृति के लिए यह समय महत्वपूर्ण है ।

आर्थिक व राजनैतिक क्षेत्रों की भाँति सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी वर्तमान स्थिति से असंतोष की भावना तीव्र होती जा रही थी । जिन लोगो को भारतीय सामाजिक व्यवस्था मान्य थी, उन्हें देश में अनुरूप वातावरण नहीं मिल रहा था, क्योकिं इस उथल-पुथल का जितना प्रभाव आम जनता पर पड़ा, उससे कहीं बहुत अधिक प्रभावित होने वाला बौद्धिक वर्ग था, फिर बौद्धिक वर्ग निम्न तरीकों द्वारा आक्रोश की अभिव्यक्ति भी नहीं कर सकता था । ऐसे वातावरण में जहाँ दयानन्द ने कर्म एंवं विवेकानन्द ने ज्ञान पर जोर देकर भारतीय संस्कृति के दो पहलुओं को सामने रखा, वहीं विदेशियों के द्वारा तीसरे पहलू का उद्घाटन अंग्रेजी शिक्षा, डाक तार आदि के माध्यम से हो रहा था । एक ओर भारतीय ज्ञान का प्रसार हो रहा था, और दूसरी ओर पाश्चात्य संस्कृति की किरणें भारतीय मानस में प्रवेश कर रही थीं, ये दोनों आपस में टकरा रही थीं । इस टकराहट की चिन्गारी से जो प्रकाश फैल रहा था, वह व्यवहारिक जीवन में प्रेरणा देने से अधिक काल्पनिक सुख के क्षितिज की ओर संकेत कर रहा था । डॉ0 नगेन्द्र ने युग की मानसिक भूमिका का विश्लेषण करते हुए लिखा है -'राजनीति में ब्रिटिश साम्राज्य की अचल सत्ता और समाज में सुधारवाद की दृढ़ नैतिकता असंतोष और विद्रोह की इन भावनाओं को बहिर्मुखी अभिव्यक्ति का अवसर नहीं देती थी । निदान वे अंतर्मुखी होकर धीरे-धीरे अवचेतन में जाकर बैठ रही थीं और वहाँ से क्षतिपूर्ति के लिए छायाचित्रों की सृष्टि कर रही थीं ।'[1]

छायावादी काव्य आजादी के लिए लालायित उस वर्ग की पुकार है, जो अंग्रेजों को हटाने की सीधी बात न कर जनता के मनोभावों को प्रेरित करना चाहता था । यह वर्ग देश की स्थिति की प्रतिक्रिया स्वरूप ही इतना सृजन कर सका है । निराला के शब्दों में -'मैं स्वयं छायावाद को देश व्यापी जीवन की दुरवस्थाओं की साहित्यिक प्रतिक्रिया मानता हूं ।'[2] स्पष्ट है कि, छायावाद के मूल में तत्कालीन बौद्धिक वर्ग की मानसिकता परिलक्षित होती है । वस्तुतः छायावाद के उदय में अनेक प्रासंगिक कारण होते हुए भी मूल कारण है, कवियों की प्रतिभा में निहित शक्ति, जो अनुरूप वातावरण में पनपी थी । 'सत्य तो यह है कि द्विवेदी युगीन

---

1. नगेन्द्र - 'विचार और अनुभूति', पृष्ठ - 35
2. गंगा प्रसाद पाण्डेय, 'महाप्राण निराला', पृष्ठ - 164.

इतिवृतात्मकता की प्रतिक्रिया, पाश्चात्य स्वच्छन्दतावाद का प्रभाव, युग की व्यक्तिप्रधान प्रवृति का प्रभाव तो पड़ा किन्तु छायावादी कवियों की प्रतिभा भूमि की उर्वरता नें अपेक्षित मात्रा में उन सबका समग्र प्रभाव ग्रहण करते हुए सुनिश्चित काव्यधारा का रूप ग्रहण किया हैं ।'[1] छायावाद मात्र काव्य की अभिव्यक्ति ही नहीं अपितु जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति है । इसका अपना श्रेष्ठ जीवन दर्शन है ।" छायावाद केवल एक काव्यकला नहीं है । जहाँ तक साहित्यिक टैकनीक से उसका सम्बन्ध है, वहाँ वह एक प्राण है, एक सत्य है । अतएव छायावाद काव्य की एक अभिव्यक्ति ही नहीं बल्कि इससे ऊपर एक श्रेष्ठ अभिव्यक्ति भी है ।'[2]

छायावादी काव्य के उदय में पृष्ठभूमि का ऐतिहासिक विकास क्रम निहित है, जो कभी व्यक्त कभी अव्यक्त रह कर अन्त में व्यवस्थित ढंग से स्थापित होकर समसामयिक प्रभाव ग्रहण करते हुए इस युग की प्रवृतियों के रूप में स्पष्ट दिखाई पड़ता है । छायावाद की प्रवृतियों को लक्ष्य करते हुए आलोचकों ने इसे विदेशी काव्य की संज्ञा दे डाली है । किन्तु प्रसाद, महादेवी इसका उत्स वेदों, उपनिषदों आदि से बताते हुए इसे शुद्ध भारतीय काव्यधारा मानते हैं । वस्तुतः भारतीय वेदों, उपनिषदों, विदेशी साहित्य, तत्कालीन सामाजिक विचारधाराओं, नैतिक मूल्यों आदि से प्रेरणा ग्रहण करते हुए छायावादी कवियों ने जो भी कुछ भारतीय समाज को दिया वह कथ्य एवं शैली दोनो ही दिशाओं में विविध नूतनताओं को जन्म देने वाला है ।

छायावाद के उदय के मूल में तद्‌युगीन समाज की वैयक्तिक अभिरूचि स्पष्ट होती है । राष्ट्रीय आन्दोलनों से प्रभावित कवि का सामाजिक भाव बोध तो जागृत रहा, किन्तु वह मूलतः व्यक्तिवादी हो गया । कवि की इस व्यक्तिवाद की पृष्ठभूमि में सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों का हाथ रहा है, क्योकि 'अंग्रेजी सभ्यता ने हमारी निर्जीव मान्यताओं को बदलने में सहयोग दिया । रेल, तार, सड़क ने हमारे सोये दमित भाव संसार को जगाया । फलतः रूढ़ियों का अकर्मक जगत तिलमिलाया और टूटने लगा ।[3] पाश्चात्य संस्कृति व्यक्तिवादी थी, उसके अध्ययन से भारत के बौद्धिक वर्ग पर राजनैतिक प्रभाव के साथ भावनात्मक प्रभाव भी पड़ा । जो व्यक्ति पहले समाजोन्मुखी व्यवस्था का समर्थक था, वहीं व्यक्तिवादी बन गया । गांधी जी की राजनैतिक विचारधारा, ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन और थियोसोफिकल सोसाइटी का बौद्धिक जगत पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा और निराश वातावरण में यह बौद्धिक वर्ग कुंठित होने की अपेक्षा अंतर्मुखी बन गया । इसीलिए छायावादी कवि बाह्यवातावरण में रमने की अपेक्षा आत्मलीन ही बना रहा । कहीं-कहीं उसकी वैयक्तिकता इतनी अन्तर्मुखी हो गयी कि वह वस्तु सत्य की नितान्त अवहेलना करता हुआ सूक्ष्म भावात्मक स्वप्नों और आशाओं के वायवी रंगीन चित्रों तथा कल्पना की रंगीन घाटियों में विचरण करता रहा । छायावादी

---

1. सुषमा पाल, 'छायावाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ - 6.
2. सुरेशचन्द्र गुप्त, 'प्रतिनिधि आलोचक', पृष्ठ - 39.
3. कमला प्रसाद पाण्डेय, 'छायावाद प्रकृति और प्रयोग', पृष्ठ - 23

कवियों की वैयक्तिक्ता के पीछे एक ओर पूंजीवादी व्यवस्था जन्य आर्थिक स्थिति का प्रभाव है तो दूसरी ओर द्विवेदी युगीन इतिवृतात्मकता का विरोध भी है । इस युग का कवि कल्पना के रंगीन चित्र भी बनाता है, देश की स्वतंत्रता का शंखनाद करता है और व्यक्ति स्वतंत्रता की आकांक्षा भी । इन कवियों की वैयक्तिकता को प्रसाद के आनन्दवाद, निराला के अद्वैतवाद, पंत की आत्मरति एवँ महादेवी की परोक्षरति में देखा जा सकता है। व्यक्तिवादी होते हुए भी इन कवियों में संकीर्णता नाम मात्र को भी नही है । कवियों ने भावनात्मक स्तर का उन्नयन करके काव्य को औदात्य प्रदान किया है । ये कवि व्यष्टि को समष्टि के साथ प्रस्तुत करने के आकांक्षी है । इनकी अनुभूति जनमानस की अनुभूति है । साहित्य का मूल धर्म -आत्माभिव्यक्ति ही इनका विशेष गुण है ।

छायावादी कवि सौन्दर्यप्रेमी हैं, इनकी सौन्दर्य चेतना प्रकृति की गोद में पोषित है, अत इनकी अभिव्यक्ति का विषय भी प्रायः सौन्दर्य युक्त रहा है । 'स्थूल सौन्दर्य की निर्जीव आवृतियों से थके हुए और कविता की परम्परागत नियम श्रृंखला से ऊबे हुए व्यक्तियों को फिर उन्हीं रेखाओं में बंधे स्थूल का न तो यथार्थ चित्रण रुचिकर हुआ और न उसकी रूढ़िगत आदर्श भाषा । उन्हें नवीन रूप रेखाओं में सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति की आवश्यकता थी, जो छायावाद में पूर्ण हुई ।'[1] सामाजिक विसंगतियों के कारण छायावादी कवि के मन को ठेस पहुंची, तब उसने अपना ध्यान प्रकृति की ओर केन्द्रित किया । इसी प्रकृति ने विस्मय, जिज्ञासा, औत्सुक्य आदि भाव जगा कर कवि को दार्शनिकता की ओर मोड़ दिया । सामाजिक व्यवस्था से चिंतित कवि प्रकृति की गोद में ही शान्ति प्राप्त कर सका है और अपने हृदय का तादात्म्य सारे जगत के साथ कर सका । कवि ने अपने सुख-दुख की जीवन्त सहचरी के रूप में प्रकृति को जाना और समझा, अतः मानवीकरण इस युग की प्रमुख विशेषता बन गया है । प्रकृति के स्पर्श ने कवि के अनेक सोते भावों को जगाया है । डॉ0 नगेन्द्र के शब्दों में - 'छायावाद प्रकृति काव्य नहीं है ..... छायावाद में प्रकृति का चित्रण नहीं है, वरन् प्रकृति के स्पर्श से मन में जो छायाचित्र उठे, उनका ही चित्रण है ।'[2]

राष्ट्रीयता और मानवतावाद से छायावाद का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । अनेक असफलताओं और निराशा के बावजूद इस युग की मानवता एवँ राष्ट्रीयता की भावना अबाध गति से प्रवाहित होती रही है । इन कवियों की व्यष्टि चेतना का परिहार समष्टि चेतना में हुआ है । महायुद्ध के बाद समग्र मानव दृष्टि में परिवर्तन आया था, उसे मानवतावाद का नया चरण कहा जा सकता है । इस मानवतावादी कल्पना में धर्म निरपेक्ष-

---

1. सुमित्रानन्दन पंत, 'आधुनिक कवि', पृष्ठ - 15
2. डॉ0 नगेन्द्र, 'आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृतियाँ, पृष्ठ- 17

समाजवादिता का प्रमुख योग है।एक ओर भारत के प्राचीन मानवतावाद की दुहाई देकर संस्कृति के प्रति जागरूक बनाने की प्रक्रिया इस युग में हुई हैं, तो दूसरी ओर प्राचीन सांस्कृतिक गौरव को आधार स्वरूप ग्रहण कर अंग्रेजी शासकों के शासनतन्त्र में देश की तत्कालीन दुर्दशा का सिंहावलोकन किया गया है ।'[1]

ब्रिटिश राज्य के अत्याचारों से पीड़ित भारत अपनी स्वतंत्रता के लिए कृतसंकल्प था, किन्तु असफल आन्दोलनों के कारण राष्ट्रीय स्वतंत्रता की भावना को ठेस पहुँची थी । इससे सर्वाधिक प्रभावित शिक्षित वर्ग था। वांछित सुविधाओं के अभाव में उसका निराश होना स्वाभाविक था । तत्कालीन पूंजीवादी विचारधारा से इस वर्ग में विद्रोह पनप उठा था, किन्तु सही दिशा निर्देश न मिल पाने के कारण नवनिर्माण का मार्ग प्रशस्त नहीं हो पा रहा था । इस प्रकार एक साथ राजनैतिक पराधीनता, बेरोजगारी, पारिवारिक तनाव एवं भुखमरी के कारण जर्जर स्वास्थ्य, व्यक्तिगत प्रेम की असफलता आदि ने छायावादी कवि को अत्यन्त क्षुब्ध कर दिया । दार्शनिक स्तर पर वेदान्त के प्रभाव से वह अहंवादी तो पहले ही हो चुका था । जैसे -जैसे परिस्थितियों के कारण उसका अहं पराजित होता गया, अवसाद बढ़ता गया । आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर सामाजिक बन्धनों के कारण वह निराशावादी बन गया । उसकी व्यक्तिवादी जीवन दृष्टि नैतिक और सामाजिक मान्यताओं से संघर्ष करती हुई निराशा और वेदना की जन्मदात्री बन गयी । वैयक्तिक असफलताओं ने इस निराशा को और गहरा दिया । यही कारण है कि निराला व पंत की रचनाओं में प्रणय जनित पीड़ा के स्थान पर सामाजिक परिवेशजन्य व्यथाओं ने अभिव्यक्ति पायी है । 'राम की शक्तिपूजा' में पराजय से आशंकित राम की वेदना वस्तुतः जीवन संघर्षों से त्रस्त निराला की वेदना है, जो दूसरे स्तर पर 'सरोजस्मृति' जैसी कविताओं में व्यक्त हुई है । जीवन संघर्ष में मिलने वाली पराजयों से विक्षुब्ध और वैयक्तिक असफलताओं से निराश होकर छायावादी कवियों ने पलायनवृति को भी प्रश्रय दिया । प्रसाद की 'ले चल मुझे भुलावा देकर' में यही वृति प्रमुख है । यह पलायन कभी प्रकृति के क्षेत्र में हुआ है तो कभी दर्शन के क्षेत्र में ।

विषाद व निराशा के कारण छायावादी कवि अन्तर्मुखी हो गये । समाज के आदर्श बन्धनों में बँधे रह कर वे समाज व राष्ट्र की बुराइयों के प्रति विद्रोही न बन सके । नितान्त वैयक्तिक अनुभूतियाँ होने के उपरान्त भी वे सामाजिक मर्यादाओं के आदर्श बन्धन को स्वीकारते रहे और निराश व कुंठित होकर पलायनवादी भी हो गये । उनकी यही निराशा एवं समाज के प्रति व्रिदोह न कर पाने की विवशता ही काव्य के क्षेत्र में विद्रोह बन कर उतर गयी । कलात्मक स्वतंत्रता के लिए छायावादी कवियों ने काव्य-रूढ़ियों व नैतिक मर्यादाओं के बन्धन तोड़ फेंके । जीवन की वास्तविक अनुभूतियों को मात्र काव्य के द्वारा ही अभिव्यक्ति दी जा सकती थी, इसीलिए वे जीर्ण-शीर्ण मान्यताओं के विरोधी बन कर 'पुरातनता का निर्मोक' उतारने के लिए तत्पर हो गये ।

---

1. डॉ0 नगेन्द्र, 'आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ-17

पंत, प्रसाद व निराला की क्रमशः 'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र'[1] 'पुरातनता का यह निर्मोक सहन करती न प्रकृति पल एक'[2] एवं निराला की 'जुही की कली' में यह विद्रोह स्पष्ट है । व्यष्टि और समष्टि का समन्वय करके निराला ने इस कविता में रूप में अरूप की उपासना तो की ही, साथ ही मुक्त छन्द के माध्यम से अपनी मुक्त श्रृंगारिक भावना को अभिव्यक्ति भी दी है ।

छायावादी काव्य विषय प्रधान न होकर आत्मपरक है । अन्तर्जगत के सौन्दर्य को रागारूण हृदय की भूमिका में अभिव्यक्ति देना इन कवियों की मूल प्रवृत्ति है । व्यक्तिवादिता एवं कल्पना प्रियता के कारण कवि की स्वच्छन्द भावना विकसित हुई है और कवि आन्तरिक सौन्दर्य की ओर उन्मुख हुआ है । 'धीरे-धीरे अंग्रेजी के स्वच्छंदतावादी कवियों-उनकी काव्य दृष्टि और सिद्धान्तों से हिन्दी का कवि परिचित हुआ, उस ओर उसका लगाव बढ़ा और पश्चिमी साहित्य दृष्टि और प्रेरणा को लेकर वह काव्य की नूतन विधा का निर्माण करने लगा ।'[1] छायावादी कवि की सौन्दर्य प्रधान दृष्टि के मूल में वैयक्तिक प्रेम सम्बन्धी सहज अनुभूतियों का आधार अस्वीकार्य नहीं है । सूक्ष्म निरीक्षण प्रवृत्ति के कारण इसका प्रेम अतीन्द्रिय एवं मानसिक है । वह रीतिकालीन कवि के समान पल-पल परिवर्तित रूप की अपेक्षा एक शाश्वत सौन्दर्य की तलाश में रहता है । इसीलिए उसकी प्रेम भावना रीति कालीन माँसलता व उपभोग से परे एक पवित्र अनुभूति बन कर प्रस्तुत होती है । कवि का व्यक्तित्व आदर्श भावना से परिपूर्ण है । यही आदर्श उसे समाज से विद्रोह नहीं करने देता, अतः प्रेम के क्षेत्र में सामाजिक बन्धनों के कारण कवि को सदैव निराश हो कर विरह सहन करना पड़ा है ।

तत्कालीन राजनैतिक एवं सामाजिक स्थिति का प्रभाव कवि पर विशेष रूप से पड़ा । किन्तु यह बौद्धिक वर्ग आम जनता के समान तुच्छ साधनों को अपनाने का विरोधी था । इसलिए निराश होते हुए भी यह आशान्वित था । निराशा के क्षणों में हर पल वह कुछ नए की प्रतीक्षा करता रहता था । प्रकृति उसके लिए नित नया सन्देश लाती थी और वह हमेशा अपने अदृश्य भविष्य के लिए लालायित बना रहता था । उसकी यही ललक उसे कल्पनाप्रिय बनाती गयी और उसे कल्पना के सुन्दर लोक में संतुष्टि मिलती रही । कल्पना की इस अतिशयता को आलोचकों ने पलायन का नाम दे दिया । किन्तु यह पलायन न होकर कुछ पाने व खोजने का प्रयास था । छायावादी कवि आदर्श प्रिय तो था ही, इसीलिए 'छायावाद के कवि को व्यक्तिगत जीवन में निराश होना पड़ा था, अतः उसने निराशा व उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप भोगवाद के गीत गाये, किन्तु छायावाद के कवि में आदर्शप्रियता कूट-कूट कर भरी हुई थी । अतः अपने काव्य के चारों और निराशा और भोगवाद का ताना - बाना बुनना उसे अभीष्ट नहीं हो सकता था । अतएव अपनी आदर्शप्रियता के प्रदर्शन के लिए

---

1. करूणापति त्रिपाठी, आधुनिक हिन्दी काव्य प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ - 51.
2. हरनारायण सिंह, 'छायावाद; काव्य तथा दर्शन, पृष्ठ- 93.

उसने कल्पना का सहारा लिया ।'[1]

छायावादी कवि का रहस्यवाद अपने ढंग का अनूठा है । कवि अपने अन्तर में बैठकर उसके सभी स्तरों को झाँकता और उनसे परिचित होता है । अन्तर की गहराई में उसे यह चेतनता मिलती है जो सबके लिए समान है । उसी भूमिका में जड़ता व चेतनता का भेद समाप्त हो जाता है और यही से रहस्यवाद प्रारम्भ होता है । सच पूछा जाये तो रहस्यवाद का कोई निश्चित स्वरूप नहीं होता ।' जब किसी तथ्य का बोध कारण और कार्य की सीमा में नही बाधा जा सकता तब उसे रहस्यवाद कहते है और इस अर्थ में जैसे-जैसे ज्ञान बढ़ता है, रहस्य स्पष्ट होता है, वह वाद सीमाएँ तोड़ देता है । हमारी धारणा है कि कवि या दार्शनिक की कोई बात उसके बीच में रहस्यमय नहीं होती, वह पाठको के लिए रहस्यमय होती है ।'[2] अतः छायावादी कवि अपने युग विसंगतियों से परेशान कुछ नए का आकांक्षी है । वह जिज्ञासु है । हर पल कुछ ऐसा हो, अनोखा हो, नया हो, इस आशा में वह पर्दे के पीछे की बात करता है । उसका पर्दा भविष्य के प्रति आशान्वित व्यक्ति की अभिलाषाओं को आच्छादित किए तत्कालीन समाज की निराशा का आवरण है, जिसे हटाने की बात वह करता है । छायावादी कवि निराश मन के लिए असीमित शक्ति संचय करना चाहता था, इसलिए उसने वैयक्तिक सीमाओं को इतना उदार रूप दिया । पंत ने लिखा है - 'छायावाद में रहस्यानुभूति को यदि किसी हद तक वाणी भी मिली तो वह रहस्य भावना मध्ययुगीन सन्तों की सी निषेध पोषित, जीवन रस वंचित, आत्मा या ब्रह्म के अस्पष्ट स्पर्श की अतीन्द्रिय अनुभूति न होकर नये विश्वजीवन तथा विश्वचैतन्य की खोज एवं जिज्ञासा की भावानुभूति रही ।'[3]

छायावादी कवि का यह रहस्यबोध नया है, क्योंकि वह आजकल और आगत की बात परम्परा के जीवन बोध के साथ देखता है । इस युग का कवि जिस मानव की कल्पना कर रहा था वह साधारण जनों के लिए समय से आगे की बात थी । इसीलिए आलोचकों ने इसे रहस्यवादी घोषित किया । जबकि विशुद्ध मानवीय अनुभूति एवं व्यक्ति से विश्व तक सभी पहलुओं को लेकर काव्य सृजन करने वाला यह कवि सम्पूर्ण विश्व के उत्थान एवं विकास का सन्देश देता है । छायावाद में प्रयुक्त वे शब्द, जिनके आधार पर रहस्यवाद की ओर इंगित किया जाता है, समय व परिस्थितियों के अनुसार हैं । उनमें यदि हम भक्ति कालीन रहस्यवादी अर्थ ढूंढें

---

1. हरनारायण सिंह, 'छायावाद काव्य तथा दर्शन', पृष्ठ - 93.
2. कमला प्रसाद पाण्डेय, 'छायावाद:प्रकृति और प्रयोग' पृष्ठ- 142.
3. सुमित्रानन्दन पंत, 'छायावाद पुनर्मूल्यांकन, पृष्ठ- 18

तो हमें निराशा ही होगी । 'छायावादी कवि की रहस्यानुभूति का मुख्य प्रेरणास्त्रोत उपनिषद ज्ञान ही रहा, जिसकी ओर वह सांस्कृतिक आन्दोलनों के प्रभाव से उन्मुख हुआ था, और उसकी रहस्यात्मक वृत्ति के मूल में उसका वह स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण था, जिसके कारण वह प्रत्येक वस्तु को आदर्श रूप में देखना चाहता था ।'[1] छायावाद का विद्रोह संयमित है और इस विद्रोह की अभिव्यक्ति भी यत्र-तत्र सांकेतिक शैली में हुई है, जिसे आलोचकों ने रहस्यवाद का नाम दे दिया है ।' छायावाद का विद्रोह संयमित और अनुशासित है । इस संयमित विद्रोह के कारण उसमें सांकेतिकता और प्रतीक योजना का बाहुल्य है, जिसे कभी-कभी भूल से नैतिकतावादी रहस्यवाद की संज्ञा दे बैठे हैं ।'[2]

छायावाद में दार्शनिकता और मानवता की जो भावनाएँ मिलती हैं, उनका कारण देश की राष्ट्रीय चेतना तथा समाज की नैतिकता है । महादेवी के जिस काव्य को रहस्यवाद की संज्ञा दी जाती है, उसमें कुछ गीत ऐसे हैं जो पूर्णतः लौकिक हैं, किन्तु उनका निर्वाह उच्च भावभूमि पर हुआ है । अतः हमें रहस्यवाद का भ्रम होने लगता है । इस युग में जो रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं उनमें सांख्य, वेदान्त, बौद्धदर्शन, शैवागम और सूफी दर्शन का पर्याप्त योग है । इन दार्शनिक प्रभावों ने भावनाओं को अनुशासित किया है । निराला पर वेदान्त व रामकृष्ण मिशन का प्रभाव है । 'छायावादी कवियों में कुछ लोगों ने आध्यात्मिक रंग भी ढूढ़ने का प्रयास किया है, पर सच तो यह है कि आध्यात्म छायावादी काव्य का प्रकृत क्षेत्र नहीं है ।[3]

छायावाद युग में नारी उत्थान विशेष उल्लेखनीय है । इस दृष्टि से द्विवेदी युग की परम्परा से प्रभावित होकर एक ओर नारी की दीन-हीन दशा का, नारी के भोग्य रूप का, अनमेल विवाह, दहेजप्रथा, सतीप्रथा, पर्दाप्रथा, नारी शिक्षा का अभाव, विधवा जीवन का विरोध किया गया तो दूसरी ओर उसे देवि, माँ, सहचरी, प्राण कहकर आदर भी दिया गया । नारी के प्रति स्थूल वासनात्मक दृष्टिकोण इस युग में आदर व पूजा में बदल गया है ।

छायावादी कवि ने जिस नए भावजगत का निर्माण किया, उसी के अनुकूल काव्यशिल्प को भी चुना । भावजगत के अनुरूप ही उसका अभिव्यंजनापक्ष भी पर्याप्त समृद्ध है । छायावादी काव्य शैली से प्रभावित होकर आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि - 'छायावाद की शाखा के भीतर धीरे-धीरे काव्य शैली का बहुत अच्छा विकास हुआ, इसके सन्देह नहीं । इसमें भावावेश की आकुल व्यंजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, मूर्तप्रत्यक्षीकरण, भाषा की

---

1. हरनारायण सिंह, 'छायावाद काव्य तथा दर्शन' पृष्ठ - 84.
2. बालकृष्ण राव, गोविन्द रजनीश, 'नयी कविता: परिवेश, प्रवृत्ति एवं अभिव्यक्ति,' पृष्ठ - 14.
3. डॉ0 रामवचन राय, 'नई कविता की पृष्ठभूमि', पृष्ठ - ।

वक्रता, विरोध चमत्कार, कोमल पद विन्यास इत्यादि काव्य का स्वरूप संघटित करने वाली प्रचुर सामग्री दिखाई पड़ी ।'[1] इस युग में द्विवेदी युग की इतिवृत प्रणाली का घोर विरोध हुआ । भाषा को सरल एवं सरस बनाने का कार्य प्रायः सभी कवियों ने किया । स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म भावानुभूति के कारण भाषा की अर्थशक्ति समृद्ध हुई। गीतिशैली के सभी प्रमुख तत्व - भावात्मकता, कोमलता, वैयक्तिकता, संगीतात्मकता यहाँ उपलब्ध हैं । यह गीति तत्व कवि मानस के रागतत्व के सर्वथा अनुरूप है । पंत के गीतों में सुकुमारता एवं भावात्मकता व महादेवी के गीतों में वैयक्तिकता विद्यमान है ।

इस काव्यधारा में चित्र शैली का उत्कृष्ट स्वरूप परिलक्षित होता है । इन कवियो की मान्यता रही है कि कविता का श्रेष्ठ रूप वह है जहाँ शब्द सस्वर हों तथा उनके माध्यम से भाव मूर्त हो उठे । इसीलिए अलंकारों के प्रति इन कवियों में कोई पूर्वाग्रह नहीं है । इन्होंने अँग्रेजी के विशेषण विपर्यय, मानवीकरण तथा ध्वन्यार्थ व्यंजना आदि अलंकारों का प्रयोग किया है ।

छायावादी कवियों ने हिन्दी की प्रकृति की रक्षा करते हुए पुराने छन्दों को नवीनता में परिणित किया है । प्रसाद एवं निराला के छन्द आज भी लोकप्रिय हैं । स्वच्छन्द छन्दों का प्रयोग छायावादी काव्यधारा में सर्वप्रथम प्रसाद ने किया । परन्तु उसका सर्वोत्तम ग्राह्य रूप भाषा वैशिष्ट्य, लय, नाद, संगीत के साथ निराला में मिलता है । उसमें गति, ध्वनि, कार्य और रूप का एक निष्ठ परन्तु गत्यात्मक चित्र उपस्थित किया गया है । 'मुक्त छन्द और मात्राओं के वैषम्य को देखकर जो घबराते है, उन्हें लय और संगीत की इस प्रवृत्ति का अध्ययन करना चाहिए । छायावादी कविता की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि उसने लय को छन्द के बन्धनों से मुक्त किया है ।'[2] मुक्त छन्द के सम्बन्ध में निराला की अपनी मान्यता है कि -'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है । मनुष्यो की मुक्ति कर्मो के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति है, छन्दों के शासन से अलग हो जाना ।'[3]

छायावादी कविता में प्रतीकों का बाहुल्य है और वह संभवतः इसलिए, क्योंकि इन कवियों ने बाह्य जगत की अपेक्षा अंतर्जगत के चित्रण पर विशेष बल दिया है । इन्होंने मूर्त में अमूर्त एवं अमूर्त में मूर्त को खोज निकाला है । अभिधा शब्द शक्ति का इस युग में तिरस्कार सा किया गया । इन कवियों की काव्य भाषा लक्षणा व व्यंजना से परिपूर्ण है ।

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ- 655
2. शम्भुनाथ सिंह, 'छायावाद - युग' पृष्ठ - 39।
3. निराला, 'परिमल' पृष्ठ - 14.

काव्य का मूलाधार कल्पना होने के कारण इस युग में ध्वनि एवं व्यंजना को विशेष स्थान प्राप्त हुआ । काव्य रूपों की दृष्टि से भी यह काव्य अत्यन्त समृद्ध है । एक ओर इसमें गीतों और मुक्त छन्द की कविताएँ है तो दूसरी ओर 'आँसू' एवं 'तुलसीदास' जैसे खण्डकाव्य भी हैं । 'कामायनी' महाकाव्य में तो छायावादी संवेदना अपनी समग्रता में मूर्तिमान है ।

'निष्कर्षतः छायावादी काव्य का अभिव्यंजना पक्ष स्वच्छन्दतावादी काव्य चिन्तन के उन समस्त तत्वों से पूर्ण है जिनमें भाव और भाषा का मनोवैज्ञानिक प्रयोग, सार्वजनिक ध्वनियाँ तथा जीवन की आलोचनात्मक स्थितियों के भाव संकेत मिलते हैं ।'[1]

इस प्रकार कल्पना एवं नवीनता की भावना ने छायावाद की अभिव्यंजना पद्धति को गरिमामयस्वरूप दिया । अभिव्यंजना सौष्ठव की दृष्टि से खड़ी बोली हिन्दी को सुष्ठु बनाने में छायावाद का अमूल्य योगदान है। छायावादी कवि ने सम्पूर्ण मानवता को अखण्ड रूप में देखा । राष्ट्रीय चेतना तथा देशभक्ति की भावना से पूर्ण यह काव्य जनमानस को नयी चेतना देने में सफल हुआ है । निराला की 'जागो फिर एक बार', 'वीणा वादिनी वर दे' इस दृष्टि से प्रमुख रचनाएँ हैं। प्रसाद के राष्ट्रीय उद्‌बोधन के गीत भी इसी प्रवृति की ओर संकेत करते हैं ।

जीवन की पूर्णाभिव्यक्ति इस काव्यधारा की विशेषता है । सच तो यह है कि छायावाद काव्य में ही आधुनिक काव्य पहली बार सम्पन्न और पुष्ट सांस्कृतिक भूमिका का निर्माण कर सका है । इस काव्य में ही हम जागरण के सांस्कृतिक चिन्तन और समन्वित जीवन-दर्शन की परिणिति देख सकते हैं । यह काव्यधारा एक ओर वर्तमान के प्रति विद्रोह और असंतोष की भावना से मुखर हैं तो दूसरी ओर स्थूल और वासनात्मक प्रेम से हट कर सूक्ष्म और अतीन्द्रिय प्रणय की रागिनी सुनाती है । उसे प्रकृति में भी चेतन सत्ता के सौन्दर्य का आभास मिलता है । वह स्थूल के प्रति विद्रोही है । रूढ़िगत बन्धनों का तिरस्कार करती है । प्रयोगवाद व नई कविता में स्वस्थ मानवतावाद का जो स्वर है उसका मूल छायावाद के महाकाव्य 'कामायनी' में निहित है । 'छायावाद में काव्य की व्याप्ति, वर्णनीय अनुभूति, चिन्तनधारा, चेतना-प्रवाह, जगत निरीक्षण की दृष्टि और तत्व समीक्षा नये ढंग की है । जीवन और जगत, मानवहृदय और हृदयस्थ प्रेम, दया, शोक, करूणा आदि में देखने की उसकी दृष्टि भिन्न है । वह स्थूल जगत के माध्यम से सूक्ष्म की ओर बढ़ता है, दृश्य जगत की रमणीयता के सहारे अदृश्य जगत की ओर जाता है । प्रकृति की सुषमा के मार्ग से व्यापक सौन्दर्य, सत्य सौन्दर्य का दर्शन करता है । वह नये छन्द, नये प्रतीक, नये साम्य और उपमान तथा नयी योजना को अपने उपकरण के रूप में

---

1. राजेश्वर दयाल सक्सेना, 'छायावादी काव्य स्वरूप और व्याख्या', पृष्ठ- 9

लेकर काव्य की उपासना करता है ।'[1]

'छायावादी काव्य साहित्यिक आभिजात्य के विरोध में मानवीय आस्थाओं और प्रजातांत्रिक संभावनाओं का काव्य है । व्यवस्थाओं को तोड़ कर नवीन सांस्कृतिक चेतना की करवट इन्हीं कवियों से उभर कर आयी है ।'[2]

वास्तव में छायावादी कवि की विचारधारा उसका व्यक्तित्व एंवं काव्य प्रवृत्तियाँ इतनी उदार हैं कि उन्हें कवि में सीमित करके देखा ही नहीं जा सकता । उसकी अनुभूतियाँ व्यक्तिगत होते हुए भी समष्टि की हैं ।' छायावादी कवि का व्यक्तित्व उदार है, उसमें एक ही विशेषता है जो दावे के साथ कही जा सकती है कि उसने अपनी अनुभूति को व्यक्त किया है । अनुभूति को खोलकर देखेगें तो विश्व मिलेगा, विश्वचिन्तन मिलेगा, धर्म मिलेंगे, सम्प्रदाय मिलेंगे और सबकी परिणिति मानव में होगी ।'[3]

छायावादी कवि की सर्वात्मवादी भाव चेतना उसकी वैयक्तिक दृष्टि से ही प्रस्तुत है । 'उसने एक प्रकार से अपनी आत्म चेतना का दर्शन ही सृष्टि के कण-कण में किया है और इसीलिए वह विश्व के विविध रूपों में एक ही उल्लास को मूर्तिमान देख सका ।[4]

भावों की उदारता ही इस युग की नारी को गौरव के पद पर प्रतिष्ठित कर सकी है । पंत ने उसके रोम-रोम को चाहा,[5] प्रसाद ने उसे समरस बनाने वाली शक्ति के रूप में अपने काव्य में प्रस्तुत किया'[6] लेकिन छायावाद में नारी के भावमय कोमल रूप की अभ्यर्थना हुई, उसके पीड़ित, शोषित रूप पर कवि ने दृष्टि नहीं डाली ।

छायावादी कविता यद्यपि मूलतः अन्तर्मुखी और वैयक्तिक चेतना से सम्पन्न है, जिसके कारण इसमें कहीं-कहीं पलायन के स्वर भी ध्वनित हुए हैं । लेकिन इस वैयक्तिक चेतना ने भी अपने प्रारम्भिक रूप में बड़ी क्रान्तिकारी भूमिका अदा की है । इसी वैयक्तिक चेतना के परिणाम स्वरूप छायावादी कवि सामाजिक रूढ़ियों एवं बन्धनों के विरूद्ध अपनी आत्मा की स्वच्छन्दता को वाणी दे सका । ऐतिहासिक दृष्टि से यह

---

1. करूणापति त्रिपाठी, 'आधुनिक हिन्दी काव्य प्रवृत्तियाँ', पृष्ठ-54
2. कमला प्रसाद पाण्डेय, 'छायावाद प्रकृति और प्रयोग' पृष्ठ - 35
3. कमला प्रसाद पाण्डेय, 'छायावाद प्रकृति और प्रयोग' पृष्ठ 213
4. सुमित्रानन्दन पंत, 'पल्लव' पृष्ठ - 97
5. सुमित्रानन्दन पंत, 'पल्लव' पृष्ठ - 97
6. जयशंकर प्रसाद, 'कामायनी' पृष्ठ - 106

वैयक्तिक चेतना विकासशील पूंजीवाद की ही देन है । जिस प्रकार पूंजीवाद ने अपनी विकासशील अवस्था में सामन्तीय समाज व्यवस्था के संकीर्ण घेरे को तोड़कर एक अधिक व्यापक औद्योगिक सभ्यता की स्थापना की तथा समाज को गतिशील बनाया, उसी प्रकार इस वैयक्तिक चेतना ने भी सामन्तीय रूढ़िबद्ध जीवन के विरूद्ध क्रान्ति की घोषणा की और युगों से जकड़ी मानव आत्मा की मुक्ति के पथ को अधिक प्रशस्त बनाया । 'व्यक्ति चेतना का यह रूप मनुष्य मात्र की चेतना का मुक्तिदायी विकास चिह्न है ।'[1]

छायावाद के सबल पक्ष को स्वीकारते हुए डा0 रामविलास शर्मा लिखते हैं - 'छायावाद ने रीतिकालीन परम्परा से हिन्दी काव्य को मुक्त किया । प्रकृति प्रेम, विश्वबंधुत्व, नारी के सम्मान की प्रतिष्ठा, अतीत पर गर्व और सामन्ती रूढ़ियों के विरूद्ध व्यक्ति के गौरव की घोषणा - यह छायावाद का सबल पक्ष है । उसने उस भावजगत को बदल दिया, जो सामन्ती संस्कारों की नींव पर खड़ा था ।'[2]

यथार्थ और प्रगतिशील चेतना की इस धारा ने ही आगे चलकर प्रगतिवाद को जन्म दिया । प्रगतिशील कविता को छायावाद की प्रतिक्रिया के रूप में ग्रहण किया जाता है । वह इसी अर्थ में कि उसने छायावाद के स्वस्थ तत्वों को अपनाने के साथ ही उसके कतिपय ह्रासशील तत्वों के प्रति विद्रोह भी किया ।

छायावादी काव्य की वैयक्तिक चेतना ने प्रयोगवाद व नयी कविता के लिए भावभूमि तैयार की । उसने जहाँ एक ओर क्रान्ति कारी भूमिका अदा की वहाँ आगे चलकर निराशा पलायन, अमूर्तवायवी कल्पना, अत्यधिक व्यक्तिनिष्ठ दृष्टि, रहस्य के प्रति अस्वाभाविक उत्कंठा को भी जन्म दिया । परिणामतः जीवन के वास्तविक धरातल से उसका सम्बन्ध विच्छेद हो गया और धरातल विहीन होकर वह काल्पनिक भाव-भूमि पर विचरण करने लगा ।

प्रगतिवाद :

छायावाद के कुछ कवियों तथा आलोचकों ने छायावाद के पतन के अनेक कारण खोजे । उन्होंने अस्पष्टता, अतिशय बौद्धिकता, कठिन अभिव्यंजना पद्धति एवं पश्चिमी विचारधारा के अतिरिक्त प्रभाव के आक्षेपों को सार्थक मानकर स्वयं काव्य को ही पतन का कारण बताया । यथार्थ से पृथक सूक्ष्म सौन्दर्य सत्ता को जागृत करने वाले इस काव्य का धीरे -धीरे पतन होता गया । यही कारण है कि सन् 1936 ई0 में छायावाद के ह्रासोन्मुख धरातल पर प्रगतिवाद का जन्म हुआ । डा0 राय के शब्दों में, 'यह एक महत्वपूर्ण तथ्य

---

1. शिवदान सिंह चौहान, 'हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष', पृष्ठ -31
2. डा0 रामविलास शर्मा 'समालोचक' (यथार्थ विशेषांक) फरवरी 1959, संपादकीय पृष्ठ - 198

है कि अपनी समस्त सौन्दर्य चेतना सहित काव्य जगत पर छा जाने वाला छायावाद बहुत दिनों तक नहीं टिक सका । सन् 1936 के आसपास उसके पुरोधाओं ने ही उसके रश्मिबंध तोड़ डाले और जीवन के यथार्थ से कविता का गठबन्धन कराया ।'[1]

इस समय एक ओर वैयक्तिक और अन्तर्मुखी प्रवृत्तियाँ पलायन, निराशा, पराजय आदि भावनाओं को जन्म दे रही थीं तो दूसरी ओर सामाजिक विषमता भी पराकाष्ठा पर पहुँच रही थी । इस स्थिति के फलस्वरूप सबके उन्मूलन को लक्ष्य करते हुए एक नवीन युग की स्थापना हुई, युग की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं को जानने वाले एक नवीन समुदाय का साहित्य के बीच आविर्भाव हुआ, जिसने अपने आपको प्रगतिवादी कहा और जिसकी रचना प्रगतिशील कही गयी ।

आचार्य वाजपेई लिखते है -'सन् 1935 के आसपास हिन्दी साहित्य के रचनात्मक क्षेत्र में जो निराशा और सामाजिक अनुत्तरदायित्व की एक लहर आयी थी, जिसने रचना और समीक्षा के क्षेत्रों में भी अपना अनिष्टकारी प्रभाव दिखाया, उसी की प्रतिक्रिया स्वरूप साहित्य के सामाजिक यथार्थ का आग्रह करते हुई नयी समीक्षा पद्धति हिन्दी क्षेत्र में आयी, साहित्य के लिए यह प्रश्न उठाया गया और इसका उत्तर देते हुए नव्यतर समीक्षकों ने कहा - साहित्य जनता के लिए, साहित्य पूंजीवादी सभ्यता को समाप्त करने के लिए, साहित्य समाजवाद की प्रतिष्ठा के लिए ।[2] प्रगतिवादी कवि ने छायावाद को युग संघर्ष के अनुरूप नहीं समझा । भारत भूषण अग्रवाल के शब्दों में -'यदि कविता का उद्देश्य व्यक्ति की इकाई और समाज की व्यवस्था के बीच के सम्बन्ध को स्वर देना है और उसको शुभ बनाने में सहायता देना है तो हिन्दी के कवि को समाज से नाराज होकर भागने की बजाय समाज की इस शोषण सत्ता से लड़ना होगा, जिसने उसको स्वप्नाभिलाषी और कल्पना विलासी बना छोड़ा है ।'[3]

इस प्रकार पूर्व प्रचलित यथार्थ की परम्परा और छायावाद के कतिपय ह्रासशील तत्व, दोनों ने मिलकर प्रगतिवादी कविता के विकास में प्रेरणा का कार्य किया। श्री भोलानाथ तिवारी की धारणा है कि 'प्रगतिशील कविता को लोकप्रिय बनाने में छायावाद की विषयगत और शैलीगत कुछ कमजोरियों का प्रधान स्थान है ।'[4]

---

1. रामवचन राय, 'नई कविता उद्‌भव और विकास', पृष्ठ -3
2. आचार्य नन्द दुलारे बाजपेई, 'नया साहित्य नये प्रश्न' पृष्ठ - 21
3. अज्ञेय, 'तारसप्तक (सं0) पृष्ठ - 97
4. भोलानाथ तिवारी, 'काव्य की भूमिका' पृष्ठ - 75

स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में हिन्दी साहित्य में प्रगतिवादी आन्दोलन का उद्भव एक विशिष्ट सामाजिक तथा साहित्यिक पृष्ठभूमि का परिणाम है ।

हिन्दी में प्रगतिवाद एक विशेष अर्थ का द्योतक है । प्रगति का अर्थ ऐसे काव्य से है जो पूर्णतया यथार्थवाद पर आधारित है और जिसका मूलाधार मार्क्सवाद है ।

प्रगतिवाद का समय उस सीमा रेखा का परिचायक है जबकि विश्वरंगमंच पर पूंजीवाद के गति अवरोधक तत्व स्पष्ट हो रहे थे । यद्यपि पूंजीवाद के कुछ क्रान्तिकारी तत्व भी थे, जिन्होंने औद्योगिक विकास तथा वैज्ञानिक प्रगति के द्वारा संसार में हलचल पैदा की । पूंजीवाद के इस सृजनात्मक महत्व के द्वारा विचार भावना, दर्शन, संस्कृति तथा साहित्य का क्षितिज भी अधिक व्यापक व उदार हो गया था । पूंजीवादी गति अवरोधक तत्वों की तत्कालीन स्थिति के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका रही । औद्योगिक विकास की चरम परिणति के कारण पूंजी कम से कम हाथों में संचित होती चली गयी । सर्वहारा वर्ग की संख्या बढ़ती गयी । यन्त्रों के अत्यधिक विकास ने मनुष्य को यन्त्रों का दास बना दिया । समस्त सामाजिक सम्बन्धों के केन्द्र में अर्थ विराजमान हो गया । इस अर्थ ने पारस्परिक सहयोग को समाप्त कर दिया । इसके समक्ष मानवीय एवं नैतिक प्रतिमान गौण हो गये । प्रेमचन्द के शब्दों में -'धन लोभ ने मानव भावों को पूर्ण रूप से अपने अधीन कर लिया है । कुलीनता और शराफत, गुण और कमाल की कसौटी पैसा और केवल पैसा है । जिसके पास पैसा है वह देवता स्वरूप है, उसका अंतःकरण कितना ही काला क्यों न हो, साहित्य, संगीत और कला सभी धन की देहरी पर माथा टेकने वालों में हैं । यह हवा इतनी ज़हरीली हो गयी है कि इसमें जीवित रहना कठिन होता जा रहा है ।'[1]

अर्थ व्यवस्था के इस घृणित रूप ने वर्ग विशेष की भावना को प्रबल बनाया और पूंजीवादी युग के सर्वाधिक क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग के संघर्ष को प्रेरणा दी ।

अंग्रेजों की नीति से भारत में औद्योगीकरण पनपने नहीं पा रहा था । उन्होंने भारत के प्राचीन उद्योग व्यवसाय तथा कलाकौशल की अर्थव्यवस्था और समाज व्यवस्था को छिन्न भिन्न कर दिया था । करों का बाहुल्य था और इस आर्थिक शोषण से जनता पीड़ित हो रही थी । अंग्रेजों की नीति यही रही कि भारत हमेशा कृषि प्रधान बना रहे । इसलिए वे यहाँ के कच्चे माल को इंग्लैंड भेज कर बना हुआ सामान मँहगे दामों पर बेच रहे थे । इसका परिणाम यह हुआ कि इंग्लैंड की औद्योगिक व्यवस्था चरमोत्कर्ष पर पहुंच गयी व यहाँ निर्धनता बढ़ती गयी एवं बेकारी की समस्या भयंकर रूप धारण करती गयी । भूख व अकाल से मरना

---

1. प्रेमचन्द 'हंस' (शांति संस्कृति अंक) वर्ष 22 अंक 6-7, पृष्ठ - 7.

हिन्दुस्तानियों के लिए आमबात हो गयी । जो थोड़ा बहुत औद्योगीकरण देश में प्रारम्भ हुआ, उसने दो वर्ग पैदा कर दिए एक था शोषक व दूसरा शोषित । यही कारण है कि कवियों ने साम्राज्यवाद व पूंजीवाद के विरूद्ध आवाज उठायी । क्रान्ति की इस आवाज में मजदूरों व किसानों का साथ दिया - भारतीय मध्यमवर्गीय बौद्धिक समाज ने ।

राजनैतिक दृष्टि से यह युग अस्त व्यस्त स्थितियों से भरा हुआ था । इस समय साम्राज्यवादी शक्तियों का प्रभुत्व देश को निराश किये था । कृषक एवं मजदूर वर्गो पर दमन चक्र चल रहा था । मालगुजारी और टैक्स की अत्यधिक मांग ने निम्न वर्ग की स्थिति को अत्यन्त शोचनीय बना दिया था । बंगाल के अकाल ने अग्नि में आहुति का कार्य कर इस वर्ग की चेतना को जागृत किया । समाजवादी सिद्धान्तों से प्रभावित सर्वहारा वर्ग कहीं अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन बनी तो कहीं अखिल भारतीय किसान सभा स्थापित हुई । इस समय की राजनैतिक स्थिति का विश्लेषण करते हुए श्री नेहरू ने लिखा - 'सात-आठ साल पहले जो ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कॉग्रेस कायम हुई थी वह एक मजबूत तथा प्रतिनिधि जमात थी । न सिर्फ उसकी तादाद और उसके संग्राम में ही काफी तरक्की हुई बल्कि उसके विचार भी ज्यादा लड़ाकू और ज्यादा गरम हो गये थे । अक्सर हड़ताले होती थीं और मजदूरों में वर्ग चेतना जोर पकड़ रही थी ।'[1]

मजदूरों की तरह कृषकों में भी वर्ग चेतना विकसित हो रही थी । इन पर गरीबी और कर्ज का बोझ तो था ही, जमींदारी प्रथा व लगान पद्धति से इनकी स्थिति बड़ी दयनीय हो गयी थी । स्थान स्थान पर किसान सभाएँ हो रही थी जो इस बात का प्रमाण थीं कि यह वर्ग भी शोषण के विरूद्ध लड़ाई के लिए तैयार हो गया था । सन् 1927 की बिहार में हुई किसान सभा में यह प्रस्ताव रखा गया कि - 'सभा का विश्वास है कि किसानों का हित दुनिया में शान्ति कायम रहने में है, इसलिए किसान आजादी की लड़ाई में मजदूरों के साथ बढ़ कर विदेशी सरकार से लोहा लेगें और देश के साधनों को लुटने से बचायेंगे । इस उद्देश्य से किसानों को तुरन्त अपनी आये दिन की लड़ाई शुरू करनी और बढ़ानी चाहिए । यह लड़ाई ब्रिटिश सरकार के अलावा देशी राजाओं, जमींदारों और साहुकारों के खिलाफ भी होगी जो इस देश में अँग्रेजी राज्य के मुख्य स्तम्भ हैं ।'[2]

एक ओर मजदूरों और कृषकों में चेतना के साथ राष्ट्रीय आंदोलन भी गतिशील होता जा रहा था तो दूसरी ओर अँग्रेजी सत्ता का दबाव भी बढ़ता जा रहा था । प्रेस एक्ट, क्रिमिनल लॉ, रोलेट एक्ट आदि इस दमन

---

1. जवाहर लाल नेहरू, 'मेरी कहानी' हिन्दी अनुवाद पृष्ठ - 248
2. रजनी पामदत्त, 'आज का भारत' पृष्ठ - 259

नीति के ही प्रतीक थे । सन् 1905 का बंग भग, सन् 1919 का जलियानवाला बाग काण्ड, सन् 1942 का क्रूर एवं घृणित दमन एवं सन् 1946 के नौसैनिक विद्रोह का दमन भी घोर पाशविक था । यह क्रूरता के इतिहास में अन्यतम उदाहरण हैं ।

प्रथम तथा द्वितीय महासमर की विश्रृंखलता से उत्पन्न आर्थिक-सामाजिक विभीषिका ने भी जन मानस को आंदोलित किया और भारतीय मानस की सुप्त चेतना को जागृति दी । इसके अतिरिक्त पाश्चात्य सामाजिक दर्शन व सिद्धान्तों से भी उसकी दृष्टि को व्यापकता मिली । प्रथम महायुद्ध ने हमें पश्चिमी समाज के हल्के से सम्पर्क में ला रक्खा और हम साहित्य तथा अन्य साधनों से पश्चिम की अधिकाधिक जानकारी करने लगे । महायुद्ध की परिस्थितियों ने हमारी जातीयता की कट्टर भावना को बहुत कुछ शिथिल कर दिया और अब हम उस भूमिका पर आ गये जहाँ जातीय और प्रादेशिक सीमाओं से ऊपर उठकर विश्व की प्रगति को एक निगाह देख सकें ।'[1]

इन परिस्थितियों से स्पष्ट है कि इस काल में देश में एक ओर राजनैतिक स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न हो रहे थे तो दूसरी ओर समाजवादी चेतना भी जागृत हो रही थी ।

सन् 1931 में हुए 'गांधी-इरविन समझौते' का भारतीय जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा और स्वतंत्रता आन्दोलन लगभग कमजोर पड़ने लगा एंवं जनता निराश हो गयी । यद्यपि ऊपर से सब कुछ वैसा ही था। वैसा ही रूप रंग, वैसी ही तरंगे, वैसा ही संघर्ष, वैसे ही लोग, वैसे ही शब्द लेकिन 'मन में एक विराट रिक्तता आ गयी जैसे कुछ बहुत मूल्यवान हमेशा हमेशा के लिए चला गया ।'[2] इसी समय निराश शिक्षित वर्ग ने रूस की राज्य क्रान्ति से प्रभावित होकर आर्थिक एंव राजनैतिक स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न आरम्भ किया । युगीन यथार्थ की इसी पृष्ठ भूमि में देश के कर्णधार मार्क्सवाद से प्रभावित हुए व प्रगतिवाद की नींव पड़ी ।

साहित्य जगत पर भी देश की उथल पुथल का प्रभाव पड़ा और साहित्यकारों का ध्यान प्रगतिशील सामाजिक चेतना की ओर उन्मुख हुआ । बौद्धिक वर्ग में मार्क्सवादी चिन्तन के प्रभाव स्वरूप साम्यवादी विचारधारा का विकास हुआ । सन् 1935 ई0 में पेरिस में प्रगतिशील लेखक संघ नामक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना हुई, जिसके प्रंथम अधिवेशन की अध्यक्षता प्रसिद्ध अंग्रेजी उपन्यासकार ई0एम0 फास्टर ने की । इस संगठन से प्रभावित होकर डा0 मुल्कराज आनन्द, सज्जाद जहीर भवानी भट्टाचार्य आदि भारतीय लेखकों ने

---

1. नन्ददुलारे वाजपेई, 'आधुनिक साहित्य' भूमिका - पृष्ठ - 21
2. डा0 जगदीश गुप्त, 'नई कविता' संयुक्तांक 1960-61 पृष्ठ - 71

लन्दन में 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना की । इसका प्रथम अधिवेशन सन् 1936 में लखनऊ में प्रेमचन्द की अध्यक्षता में हुआ । इसके अतिरिक्त अन्य कई अधिवेशन हुए । जिनसे प्रगतिशील साहित्य रचना को प्रोत्साहन मिला । 'इस प्रकार प्रगतिवादी काव्य युगीन आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों और तद-जन्य प्रभावों के फलस्वरूप विषाक्त, जड़, कुण्ठित और वायवी हो जाने वाले इन क्षेत्रों के वातावरण की उपज है जिसने व्यक्ति के स्थान पर समाज और जनजीवन के कल्याण की निराशा, पराजय और क्षयी रोमान्स के स्थान पर आशा, उत्साह और स्वस्थ प्रेम की दिशाओं में साहित्य को गतिशील किया ।' भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन में प्रेमचन्द्र ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा -'अब साहित्य मन बहलाव की चीज नहीं है, मनोरंजन के सिवा उसका और भी कुछ उद्देश्य है । अब वह केवल नायक नायिका के संयोग की कहानी नहीं सुनाता किन्तु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है और उन्हें हल करता है । अब वह स्फूर्ति व प्रेरणा के लिए अद्भुत या आश्चर्यजनक घटनाएँ नहीं ढूँढता और न अनुप्रास का अन्वेषण करता है, किन्तु उसे उन प्रश्नों में दिलचस्पी है जिससे समाज या व्यक्ति प्रभावित होते हैं । उसकी उत्कृष्टता की वर्तमान कसौटी अनुभूति की वह तीव्रता है, जिससे वह हमारे भावों और विचारों में गति पैदा करता है ।'[2]

हिन्दी साहित्य जगत में इस सामाजिक यथार्थ एवं क्रांतिकारी चेतना को व्यवस्थित रूप देने की दृष्टि से पंत तथा नरेन्द्र शर्मा के सम्पादकत्व में सन् 1938 में 'रूपाभ' का प्रकाशन हुआ । इस पत्रिका के प्रथम अंक में ही तद्युगीन परिस्थितियों के विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि -'इस युग में जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र रूप धारण किया है, उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं । श्रद्धा विश्वास में पलने वाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्नजड़ित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गयी है । अतएव इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती, उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है ।'[3]

साहित्य में यथार्थ का समावेश मार्क्सवादी विचारधारा के फलस्वरूप हुआ । प्रगतिवादी साहित्य की यथार्थ भावभूमि पर इसी चिन्तन का प्रभाव है । प्रगतिवाद को समझने के पूर्व इस विचारधारा का विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है ।

---

1. डा0 शिवकुमार मिश्र, 'नया हिन्दी काव्य' - पृष्ठ - 150
2. प्रेमचन्द, 'साहित्य का उद्देश्य', पृष्ठ - 5
3. सुमित्रानन्दन पंत एवं नरेन्द्र शर्मा 'रूपाभ' (सं) वर्ष 1 संस्करण 1 जुलाई 1938 पृष्ठ - 63.

वैज्ञानिक समाजवाद के जनक कालमार्क्स के पूर्व अनेक विद्वानों ने समाजवाद पर अपने विचार व्यक्त किये, किन्तु समाजवाद की वैज्ञानिक व्याख्या सर्वप्रथम कार्लमार्क्स ने प्रस्तुत की ।

मार्क्स के तीन प्रमुख सिद्धान्त हैं - द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, मूल्यवृद्धि का सिद्धान्त और अर्थव्यवस्था के अनुसार विश्व सभ्यता की व्याख्या । मार्क्स किसी आलौकिक सत्ता में विश्वास नहीं करता । उसके अनुसार आत्मा परमात्मा स्वर्ग नरक आदि भावनाएँ केवल काल्पनिक हैं । वास्तव में इनका कोई अस्तित्व नहीं है । सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में मार्क्स का विचार है कि इसकी उत्पत्ति और विकास भौतिक शक्तियों से होता है । यह विकास भौतिक शक्ति की क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं से आगे बढ़ता है । जिस वस्तु मे जितनी अधिक शक्ति होती है वह उतनी ही अधिक देर तक अपनी सत्ता बनाये रख सकती है । जितनी देर उसकी सत्ता बनी रहती है, उतना ही अधिक विकास होता है ।

मूल्यवृद्धि के सिद्धान्त के अन्तर्गत मार्क्स ने चार बातों का विवेचन किया है - मूल पदार्थ, स्थूल साधन, श्रमिक का श्रम और मूल्यवृद्धि। मूल पदार्थ और स्थूल साधन वे हैं जो उत्पादन में सहायक होते है - मशीन आदि यन्त्र ऐसे ही साधन हैं । इन्हीं के सहयोग से श्रमिक अपने श्रम द्वारा उत्पादन करता है, जिसका अधिकांश लाभ पूंजीपतियों को मिलता है । इसलिए मार्क्स ने समाज को दो वर्गो में बाट दिया - शोषक वर्ग एवं शोषित वर्ग । शोषक वर्ग पूंजीपतियों का है । पूंजीपति श्रमिकों के श्रम से उत्पन्न लाभ के एक बहुत बड़े भाग को स्वयं ले लेता है और श्रमिक उससे वंचित रह जाता है । इस तरह वह श्रमिक वर्ग का शोषण करता है । परिणाम स्वरूप पूंजीपति निरन्तर धनवान बनता जाता है और श्रमिक दरिद्रता का शिकार हो जाता है । इन दोनो के बीच की खाई समाज के लिए अभिशाप बन जाती है । जब तक यह भेदभाव नहीं मिटाया जाता, समाज उन्नत नहीं हो सकता । पूंजीपति अपने लाभांश को बढ़ाने के लिए मूल्यवृद्धि करता है जिसके फलस्वरूप समाज की अर्थव्यवस्था असंतुलित हो जाती है । मार्क्स का विश्वास है कि जब तक यह वर्ग-वैषम्य समाप्त नहीं होता तब तक समाज की उन्नति नहीं हो सकती । मार्क्स समाज के विभाजन का आधार जातिगत न मानकर आर्थिक मानता है । आर्थिक आधार ग्रहण करते हुए उसने विश्व को चार युगों मे विभाजित किया है । उसके अनुसार पहली अवस्था साम्यवाद की थी ।

मार्क्स ने भाग्य का प्रबल विरोध किया है । भाग्य पर विश्वास करने से दो प्रतिक्रियाएँ होती है - पहली तो यह कि पूंजीपति भाग्य के सहारे अपनी शोषक वृत्ति को छिपाते हैं और दूसरी वे श्रमिको के मन मे यह धारणा उत्पन्न करते हैं कि धन का श्रम से कोई सम्बन्ध नही, यह भाग्य का खेल है । और यहीं से श्रमिकों के मन मे आयी संतोष की भावना उनके पतन का कारण बन जाती है ।

शोषक और शोषित के इस अन्तर को मिटाने के लिए मार्क्स ने राष्ट्रीयकरण को एक मात्र आधार माना है । उसकी मान्यता है कि सम्पत्ति का विभाजन व्यक्ति परक न होकर उपयोगिता के आधार पर हो और सम्पत्ति पर व्यक्ति की अपेक्षा समाज का नियन्त्रण हो । मार्क्सवाद का यही रूप हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद के नाम से अवतीर्ण हुआ ।

साम्यवादी प्रभाव से प्रेरित होकर नरेन्द्र शर्मा, अंचल, दिनकर रामविलासशर्मा, नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल आदि कवियों ने प्रगतिवादी रचनाएँ की । इन रचनाओं में समाज का यथार्थवादी रूप प्रस्तुत हुआ । मजदूरों और किसानों को कविता का विषय बना कर उनके दयनीय जीवन को निकट से देखने का प्रयास इन कवियों ने किया है । इन कवियो ने सौन्दर्यवृत्ति, विचार दृष्टि और रचना सामर्थ्य को नये बिन्दुओ पर प्रस्तुत किया है । प्रगतिवादी कवियो ने एक सुव्यवस्थित कलात्मक मानदण्ड अर्थात् समाजवादी यथार्थवाद को साहित्यिक मानदण्डो को रखने का प्रयास किया है ।[1]

प्रगतिवादी कवि मे समसामयिक जीवन के प्रति विशेष आसक्ति है, उसकी यह मान्यता है कि 'सामयिक संघर्ष मे आधुनिक साहित्य जितना ही तपेगा, उसका रंगरूप उतना ही निखरेगा । इस संघर्ष से दूर रहकर यदि लेखक सोने की कलम से भी काल्पनिक साधनो के गीत लिखेगा तो उसकी कलम और साहित्य का मूल्य दो कौड़ी से ज्यादा नही होगा ।[2] अतएव कवि युग सत्य को वाणी देने में ही कला की सार्थकता मानता है । यही कारण है कि कवि ने अपने युग की प्रायः प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना को अभिव्यक्ति दी है । चाहे वह नौसैनिक विद्रोह हो या गाँधी जी की हत्या । प्रगतिवादी कवि की चेतना को प्रत्येक सामयिक घटना ने झकझोरा है । बंगाल के अकाल पर लिखी गयी रामविलास शर्मा व बच्चन की मार्मिक कविताएँ भी इस सत्य का उद्घाटन करती हैं । कवि ने वैयक्तिक अनुभूतियों के स्थान पर सामाजिक सामयिकता को विशेष महत्त्व दिया है । शोषक और शोषितों की विपरीत व्यथा उस युग की एक ज्वलंत समस्या थी, जिसे इन कवियो ने बड़ी खूबी से उभारा है । वैसे भी मार्क्सवादी दृष्टि से सामयिक समस्याओं मे आर्थिक समस्या ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, अतः इसे मूल समस्या मान कर ही इन कवियों ने काव्य रचनाएँ की हैं ।

---

1 डॉ0 रेखा अवस्थी, प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य पृष्ठ - 109

2 डा0 रामविलास शर्मा, भाषा सस्कृति और साहित्य - पृष्ठ - 151

छायावादी कवि कल्पना के उपवन में विचरण करते रहे लेकिन, प्रगतिवादी कवि भौतिक समस्या से पीड़ित हो यथार्थ के धरातल पर उतरने हेतु विवश हो गया । इस यथार्थवादी भावना ने काव्य को गरीबों, दलितों, गन्दी कोठरियों और झोपड़ियों की ओर मोड़ दिया । कविता 'उडु के नील कुञ्ज में स्वप्न खोजने' की अपेक्षा ग्रामों, कृषकों और श्रमिकों की ओर उन्मुख हो गयी । प्रगतिवादी कवि ने कल्पना के संसार से सम्बन्ध तोड़कर लोक जीवन से नाता जोड़ लिया और यथार्थ को उसके वस्तुगत एवं सामाजिक रूप में ही ग्रहण करने का प्रयत्न किया । नरेन्द्र शर्मा की मान्यता है - 'वह कवि प्रगतिशीलता के उतना ही निकट समझा जायेगा जो वस्तुस्थिति और उसकी छाया में अकुलाने वाली अपने इकाई की सक्रिय सामर्थ्य और सीमाओं तथा वस्तुस्थिति और इकाई के घात प्रतिघात पूर्ण पारस्परिक सम्बन्ध और तज्जनित गतिशीलता के नियम को जितना ही अधिक समझता और व्यवहार में ग्रहण करता है ।'[1] उपेक्षित, पीड़ित जन समुदाय के प्रति प्रगतिवादी कवि की गहरी सहानुभूति है । वह उसकी पीड़ा को अपनी ही पीड़ा समझता है । केदारनाथ अग्रवाल व नागार्जुन की रचनाओं में इस कसक की अभिव्यक्ति यथार्थ से परिपूर्ण अनुभूति सहित हुई है । यथार्थ चेतना संपृक्त कवि की दृष्टि इतनी व्यापक हो गयी है कि उसके पास काव्य उपकरणों की कमी नहीं रही । इसलिए मुक्तिबोध मानते हैं कि आज के लेखक के सामने विषयों का आधिक्य है और वह उनका चुनाव भली प्रकार नहीं कर पाता -

जीवन में आज के लेखक की
कठिनाई यह नहीं कि
कमी है विषयों की
वरना यह कि आधिक्य उनका ही
उसको सताता है ।'[2]

वस्तुतः अधिकांश प्रगतिवादी कवि मार्क्स की इस मूल दार्शनिक ऐतिहासिक भौतिकवादी मान्यता से प्रभावित रहे हैं, कि 'भौतिक जीवन में उत्पादन की पद्धति से सामान्य सामाजिक, राजनीतिक एवं बौद्धिक जीवन प्रक्रियाएँ निरूपित होती हैं । मनुष्यों का अस्तित्व उनकी चेतना से निर्धारित नहीं होता, प्रत्युत इसके विपरीत उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना को निरूपित करता है ।'[3] अपनी इस विशिष्ट जीवन दृष्टि के परिणाम स्वरूप वे सामाजिक यथार्थ की मात्र भावाभिव्यक्ति प्रस्तुत नहीं करते वरन् नयी उभरती प्रगतिशील

---

1. नामवर सिंह, 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ' पृष्ठ 132.
2. गजानन माधव मुक्तिबोध, 'चांद का मुंह टेढ़ा है', पृष्ठ- 74.
3. डॉ0 नगेन्द्र, 'पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परम्परा (सं) पृष्ठ - 310.

शक्तियों के विकास में आस्थावान रह कर प्राचीन जर्जर व्यवस्था के विरुद्ध क्रान्ति का उद्घोष भी करते हैं । उनका मत है कि सामाजिक व्यवस्था के ध्वंस में प्रगति के स्त्रोत छिपे हैं । इसलिए कवि प्राचीन ध्वंस से आशान्वित है -

'झरते हों झरने दो पत्ते, डरो न किंचित
नवल मुकुल मंजरियों से भव होगा शोभित ।'[1]

प्रगतिवादी कवि की वर्ग चेतना मार्क्स के सिद्धान्तों पर आधारित है । उसकी मान्यता है कि औद्योगिक व्यवस्था से समाज में दो वर्ग उत्पन्न हो जाते हैं । पहला पूंजीपति वर्ग जो सुविधा भोगी होता है व दूसरा सर्वहारा वर्ग जो निर्धन और परिश्रमी होता है । विपरीत परिस्थितिजन्य विषमता से वर्ग संघर्ष प्रारम्भ होता है । शोषक वर्ग धन, बल, बुद्धि सम्पन्न होता है व शोषित वर्ग अंधविश्वासी एवं भाग्यवादी । उसे जागृत करना कवि का कर्त्तव्य है । इस जागृति के लिए क्रान्ति की आवश्यकता है, जब तक क्रान्ति नहीं होती, समानता नहीं आ सकती । वस्तुतः पूंजीपति धन के बल पर असम्भव को सम्भव कर लेता है । कार्लमार्क्स के शब्दों में - 'वह निष्ठा को प्रवञ्चना में, प्रेम को घृणा और घृणा को प्रेम में, मूढ़ता को बुद्धिमत्ता एवं बुद्धिमत्ता को मूढ़ता में परिवर्तित कर देता है ।'[2] ऐसी विषम स्थिति के कारण समाज विरोधी वर्गों में विभाजित हो जाता है । एक ओर विशालकाय पूंजी के साथ मुठ्ठी भर पूंजीपति बचते हैं तो दूसरी ओर शोषितों की एक सेना तैयार होती जाती है जो निरन्तर भूख और गरीबी से जूझती रहती है । कवि ने उन्हीं मान्यताओं को महत्व दिया है जो शोषितों के हित में है । ऐसी स्थिति में कवि शाश्वत काव्य मूल्यों का त्याग करके शोषितों के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत होता है, क्योकि कवि ने जीवन अनुभव के हर चौराहे पर वर्ग संघर्ष देखा और भोगा है । शायद इसीलिए मुक्तिबोध ने लिखा है -

'घबराये प्रतीक और मुस्काते रूपचित्र
लेकर मैं जब घर पर लौटता
उपमाएँ द्वार पर आते ही कहती हैं कि
सौ बरस और तुम्हें जीना ही चाहिए ।'[3]

---

1. सुमित्रा नन्दन पंत, 'युगवाणी' पृष्ठ - 24
2. डॉ0 नगेन्द्र, 'पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परम्परा (सं.) पृष्ठ - 322
3. मुक्तिबोध, 'चाँद का मुंह टेढ़ा है' पृष्ठ - 74

समसामयिकता को लिए हुए कवि जब आगे बढ़ता है तो उसके लिए अनुभूति की राहें खुली रहती हैं और इस वर्ग चेतना के कारण कविता के लिए उसे नित नए विषय मिलते जाते हैं ।

प्रगतिवादी कवि का यह वर्ग संघर्ष सन् 1931 से लेकर 1951 तक की कविताओं में सरल एवं जटिल दोनो ही रूपों में अभिव्यक्त हुआ है । क्योंकि 'आज साहित्य की वैयक्तिक अनुभूतियों की अपेक्षा स्वभावतः ही उन सार्वजनिक अनुभूतियों को अधिक महत्व देना है जिनके कारण पृथ्वी अशांत एवं मनुष्य के लहू से लाल है ।'[1]

जिस समय प्रगतिवाद का आविर्भाव हुआ, उस समय भारतीय स्वतंत्रता का आन्दोलन वेग पर था । राष्ट्रीय चेतना की इस लहर से प्रेरित होकर कवि ने साम्राज्यवादी शक्तियों और विदेशी सत्ता का विरोध किया। परतन्त्रता को भोगते हुए साम्राज्यवादी शक्तियों से त्रस्त कवि के काव्य में बलिदान, संघर्ष और क्रान्ति का स्पष्ट आह्वान है । उसकी क्रान्ति का आधार भौतिक है, जिसमें अहिंसा व आदर्शवादी सिद्धान्तों को मान्यता नहीं है । इन कवियों का राष्ट्र केवल सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है । देश के गौरवगान में इनकी दृष्टि देशवासियों की दुर्दशा की ओर लगी रही है । इनकी मुक्ति के लिए वह 'विप्लव राग' गा कर विद्रोह की आग में दासता की श्रृंखलाएँ गला देना चाहता है ।

प्रगतिवादी कवि की राष्ट्रीय भावना अमूर्त और भावात्मक ही नहीं है, अपितु वह विशेष के माध्यम से सामान्य की ओर उन्मुख हुई है । नामवरसिंह के शब्दों में - 'पहले की देशभक्ति सामान्योन्मुखी थी तो प्रगतिशील युग की देशभक्ति विषयोन्मुख है और इसीलिए अधिक ठोस और वास्तविक है । यह विशेष के भीतर से ही सामान्य को प्रकट करती है ।'[2] इन कवियों ने देशवासियों के माध्यम से अपनी देशभक्ति को अभिव्यक्ति दी है ।

जनसाधारण ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात जिस खुशहाली के स्वप्न संजोये थे उनके टूटने की अभिव्यक्ति इनकी कविताओं में बड़ी मार्मिक हुई है । भारत का यह 'रेशमी-नगर' ज्योति से पूर्ण है और आजादी के पश्चात भी सारा देश अन्धकार में डूबा है ।

> भारत धूलों से भरा, आसुओं से गीला,
> दिल्ली में तो है खूब, ज्योति की चहल पहल ।'[3]

---

1. रामधारी सिंह दिनकर, 'मिट्टी की ओर' (भूमिका) पृष्ठ - 15
2. नामवरसिंह, 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ' पृष्ठ - 109
3. रामधारी सिंह दिनकर 'चक्रवाल' पृष्ठ- 317

प्रगतिवादी कवि की यह राष्ट्रीयता अन्र्राष्ट्रीयता को साथ लिए हुए है । यही कारण है कि कवि ने सम्पूर्ण विश्व के मानव को अपनाया है और दोस्ती का हाथ बढ़ाया है । कवि ने अपने गाँव, देश तथा विश्व को प्यार किया है, किन्तु रूस के प्रति इनका झुकाव अधिक है । डाँ० शिवमंगलसिंह 'सुमन' की 'सोवियत रूस के प्रति', 'मास्को अब भी दूर है', नरेन्द्र शर्मा की 'रूस के मैदान', प्रभाकर माचवे का 'सोवियत सेनिकों का यशोगान' प्रमुख हैं ।

प्रगतिवादी कवि की युद्ध विरोधी एवं शांति चेतना से सम्बन्धित कविताएँ उसकी अन्तर्राष्ट्रीय भावधारा की अभिव्यक्ति हैं । कवि की मान्यता है कि युद्ध के पार्श्व में भी पूंजीवादी शक्तियाँ कार्य करती हैं । इस सभ्यता का विरोधी कवि युद्ध से घृणा करता है । वह जानता है कि युद्ध निर्दोषों की मौत का कारण होगा और विश्व प्रगति की अपेक्षा पीछे लौटने लगेगा । कवि का प्रण है कि वह युद्ध नहीं होने देगा । इसलिए अधिकांश कवियों ने गांधी जी की स्तुति की है ।

प्रगतिवादी कवि की क्रान्ति चेतना का उसकी वर्ग भावना से घनिष्ठ सम्बन्ध है । वर्ग वैषम्य से आहत होकर वह क्रान्ति का आह्वान करता है। उसकी सामाजिक चेतना का स्वर बहुत ही स्पष्ट है । उसकी यह चेतना किसान और मजदूर वर्ग में निहित है । कवि की यह भावना राष्ट्रीय एवं सामाजिक रूपों में चित्रित है । जहाँ कवि राष्ट्रीयता की बात करता है वहाँ पराधीनता के प्रति आक्रोश अभिव्यक्त हुआ है और सामाजिक दृष्टि से वह वर्ग व्यवस्था के ध्वंस के लिए आतुर है । ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति घृणा की अभिव्यक्ति राष्ट्रीय व सामाजिक दोनों रूपों में हुई है । कवि मात्र अपने देश में ही नहीं सम्पूर्ण विश्व से वर्ग वैषम्य मिटाना चाहता है । नरेन्द्र शर्मा की 'लाल निशान' व शिवमंगलसिंह सुमन की 'चली जा रही है बढ़ी लाल सेना' क्रान्ति की ही प्रतीक है । कवि ने स्थान-स्थान पर क्रान्ति का आह्वान कर संघर्ष की प्रेरणा दी है । 'प्रगतिशील कविता की यह संघर्ष प्रेरणा उसकी उच्चतम सौन्दर्यवृत्ति है । जीवन के काले, अंधकार-मय पक्ष का चित्रण कर कवियों ने कर्मण्यता, संघर्ष आस्था और सुखद भविष्य का पार्श्व अंकन किया ।'[1]

प्रगतिवादी कवि ने क्रान्ति के विध्वंसात्मक पक्ष के साथ उसके सृजनात्मक पक्ष को भी अपनाया है । पंत ने तो भावी वर्ग विहीन समाज के ऐसे चित्र प्रस्तुत किए हैं, जो उनकी क्रान्ति के सृजनात्मक पक्ष को प्रस्तुत करते हैं ।

---

1. रेखा अवस्थी, 'प्रगतिवाद और सामानान्तर साहित्य', पृष्ठ - 114

प्रगतिवादी कवि ने ईश्वर और धर्म को एक अमानवीय तथा प्रगति विरोधी तत्व माना है । उसकी मान्यता है कि विकासोन्मुख शोषक शक्तियाँ ईश्वर व धर्म की आड़ ले कर नव निर्माण में बाधक बनती हैं । धर्म व ईश्वर ने ही मनुष्य को कर्म से विमुख कर भाग्यवादी बनाया हैं । असंगत वर्ण व्यवस्था से कवि इतना क्षुब्ध हो गया है कि वह जगतपति का टेंटुआ घोंटने के लिए तत्पर हो जाता है-

'लपक चाटते जूठे पत्ते, जिस दिन देखा मैनें नर को,
यह भी सोचा क्यों न टेटुआ घोटा जाये स्वंय जगतपतिका ।'[1]

हिन्दुस्तान की खोखली आध्यात्मिकता से कवि बहुत क्षुब्ध है । रामेश्वर 'करूण' के 'तमसा' काव्य संग्रह में धर्म व रूढ़ि की धज्जियाँ बिखेरी गयी हैं । इसी प्रकार केदार नाथ अग्रवाल की 'वरदान' देवत्व की अशक्ति एवं तिरस्कार व्यक्त करती है ।

वैसे तो आधुनिक पुनर्जागरण ही मानवतावाद की घोषणा करता है, किन्तु मार्क्स के सिद्धान्त को ग्रहण कर सर्वहारा वर्ग का मानवतावाद पहली बार भारतीय साहित्य में देखा गया है । यहाँ कवि दलितों, शोषितों के प्रति करूणार्द्र हुआ है तथा विषमता, शोषण और अत्याचार के विरोध में कवि की आत्मा रोई है । सामाजिक यथार्थ की प्रतिष्ठा, समसामयिक जीवन की अभिव्यक्ति, साम्राज्यवाद एवं युद्ध का विरोध, शांति के प्रति अखण्ड प्रेम, नारी मुक्ति की कामना, शोषितों के प्रति सहानुभूति आदि कुछ ऐसे बिन्दु हैं, जो कवि को मानवतावादी सिद्ध करते हैं । कवि ने युगों से चले आ रहे सुन्दरता के मानदण्ड, प्रतीक बदल कर श्रेष्ठ मानव श्रमिक को वर्णित किया एवं मानवता के अस्तित्व को स्वीकारा । लेकिन इस मानवतावाद में शोषक को कहीं स्थान नहीं । इसीलिए हम इसे सर्वहारा वर्ग का मानवतावाद भी कह सकते हैं । 'प्रगतिवादी कवि की मानवता सीमित होते हुए भी इसलिए ग्राह्य हैं कि उसके मूल में एक विशाल जन समुदाय की मुक्तिं और सुख सुविधा की आकांक्षा निहित है ।'[2]

प्रगतिवादी कवि ने नारी के उदात्त रूप को सुरक्षित रखा है । किन्तु द्विवेदी युगीन व छायावादी युग की नारी से उसकी नारी कल्पना भिन्न है । उसने द्विवेदी युगीन शिथिल नारी को गति प्रदान की व छायावादी सूक्ष्म नारी को साकार बनाया और ज्वलंत नारी समस्या पर यथार्थ दृष्टिट डालने का एक सुसंगत प्रयास किया। कवि ने नारी के कामिनी रूप की अपेक्षा मानवी रूप को अधिक महत्व दिया । कहीं-कहीं यथार्थ के कारण नारी का स्थूल चित्रण भी हुआ, किन्तु सर्वत्र नारी का शुद्ध मानवी, श्रमजीवी रूप ही चित्रित हुआ है ।

---

1. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन,' 'हम विषपायी जन्म के' पृष्ठ - 493
2. देशराज सिंह भाटी, 'समकालीन हिन्दी कविता' पृष्ठ - 27

प्रगतिवादी कवि नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व एवं अस्तित्व में विश्वास करता है । युगों से सामंती समाज ने उसे भोगवादी दृष्टि से कुंठित किया एवं विभिन्न धर्मों ने वैराग्य एवं संसार की असारता का उपदेश देकर उसे यंत्रणाएँ दी हैं । नागार्जुन की कविता 'पाषाणी' में दूषित अहिल्या का चरित्र है तो 'भिक्षुणी' में धर्म की आड़ में पीड़ित नारी का चित्र है । कवि ने मजदूर व किसान की भाँति नारी को भी विशिष्ट शोषित वर्ग के अन्तर्गत ग्रहण किया है । उसका मत है कि जिस प्रकार पूंजीपति व सामन्तवर्ग मजदूरों व किसानों का शोषण करते हैं, उसी प्रकार पुरूष वर्ग ने भी नारी का शोषण किया है । इसी शोषण के विरूद्ध कवि की वाणी मुखरित हुई है । प्रगतिवादी कवि की दृष्टि नारी के बाह्य सौन्दर्य पर कम टिकी है । नये यथार्थवादी युग ने कवि के मन से नारी की कामिनी मूर्ति हटा दी है एवं प्रायः श्रमिक एवं निम्न वर्ग की नारी का ही व्यक्तित्व अंकन काव्य में हुआ है ।

अपनी समाजवादी विचारधारा के फलस्वरूप कवि ने आर्थिक संघर्ष के कारण प्रेम को गौण माना है । 'राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन तथा जन क्रान्ति के प्रति ऐतिहासिक जिम्मेवारी का अनुभव करने वाले कवियों ने साफ तौर पर कहा कि देश की मुक्ति सर्वोपरि समस्या है । प्रेम और दाम्पत्य का स्थान उसके बाद ही है ।'[1] जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने अपनी कविता 'तरूण के प्रति' में इस आग्रह को अभिव्यक्ति दी है -

'प्रेयसी का प्यार पीछे,
स्वप्न का संसार पीछे ।'[2]

कवि ने स्वप्निल एवं काल्पनिक प्रेम को उपहास की दृष्टि से देखा है और प्रेम के स्वस्थ रूप को अभिव्यक्ति दी । इनका प्रेम अपने परिवेश व सन्दर्भ से जुड़ा हुआ है । डा0 रांगेयराघव तो स्वस्थ प्रेम को कवि कर्म की पूर्णता हेतु आवश्यक मानते हैं । उनका मत है -'उनका विरोध करना भी ठीक है, जबकि प्रेम को पलायन के रूप में लिया जाये । किन्तु प्रेम जीवन को प्रेरणा भी देता है, और उस रूप को न देखना अपूर्णता का एक प्रतिबिम्ब है ।'[3] इसी बात को स्वीकार करते हुए कहा जा सकता है कि नारी प्रेम पलायन ही नहीं संघर्ष की प्रेरणा भी देता है । व्यावहारिक धरातल पर प्रेम व्यंजना करने वाले इन कवियों ने नारी सौन्दर्य के अनेक चित्र प्रस्तुत किये हैं । इनमें सौन्दर्य की अगाध प्यास है । कहीं कहीं रूपासक्ति है इसीलिए कवि 'कितनी बार तुम्हें देखा पर आँखे नहीं भरी'[4] कहता रहता है ।'

---

1. रेखा अवस्थी, 'प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य' पृष्ठ - 130.
2. जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, 'बलिपथ के गीत' पृष्ठ - 97
3. रांगेय राघव, 'समीक्षा और आदर्श' पृष्ठ 61.
4. शिवमंगलसिंह सुमन, 'आँखे नही भरी' पृष्ठ - 23

प्रगतिवादी कवि ने प्रकृति को ग्राम्य जीवन के यथार्थ चित्रण में माध्यम बनाया है । यहाँ प्रकृति काल्पनिक सुन्दरी न होकर राष्ट्रीय जागृति व क्रान्ति से अनुप्राणित है । कवियों ने हिमालय, सागर, झंझा आदि के माध्यम से गहनता, गम्भीरता, उन्नति एवं विद्रोह का सन्देश दिया है । प्रगतिवादी साहित्य में कहीं प्रकृति संघर्षरत है , तो कहीं पौरुषमय रूप में अभिव्यक्त है । केदारनाथ अग्रवाल को क्रेन नदी की धारा गति का सन्देश देती है, तो बादल नया राग सिखाते हैं, वायु समानता का सन्देश देती है तो उषा की लाली उन्हें नवजागरण व स्वतंत्रता की प्रेरणा देती है । प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृति के उन सभी रूपों को काव्य में स्थान दिया है जिन्हें छायावादी कवियों ने स्वीकार किया था । अन्तर सिर्फ इतना है कि इन कवियों की भावना प्रकृति के साथ यथार्थ संपृक्त है, अतः प्रकृति व्यावहारिक रूप में चित्रित हुई है ।

प्रगतिवादी कवियों की यथार्थ दृष्टि का सबसे सशक्त एवं जीवन्त माध्यम उनका व्यंग्य विधान है । 'भारतेन्दु युग के आलोचनात्मक यथार्थवाद की व्यंग्य शैली से इन कवियों ने हिन्दी की नयी कविता को समृद्ध किया है । इस दिशा में पहल कदमी निराला ने ही की है ।'[1]

इन कवियों ने सामाजिक रूढ़ियों, राजनैतिक छल-छन्दों, झूठे सौन्दर्य स्वप्नों, पवित्रता के अहंकारों एवं छायावादी शैली पर व्यंग्य किये हैं । तत्कालीन राजनैतिक स्थिति, साम्राज्यवाद एवं शासन व्यवस्था पर तीखे व्यंग्य इन कवियों की विशेषता है । प्रगतिवाद की व्यंग्यात्मक शैली से प्रेरणा लेकर प्रयोगवादी कवियों ने व्यक्तित्व के रंग भर कर व्यंग्य विधान किये हैं । 'व्यंग्य की शक्ति और तीक्ष्णता के जितने अच्छे प्रयोग नागार्जुन, केदार चन्द्रदेव शर्मा, शंकर शैलेन्द्र, नियाज हैदर, सुदर्शन चक्र आदि ने किए उतने सम्भवतः उस जमाने में क्या अब तक नहीं हो सके हैं ।'[2]

प्रगतिवादी कवियों ने व्यंग्य की पुरातन प्रबन्ध परम्परा को भी तोड़ा एवं नए ढंग से प्रबन्धात्मक कविता की रचना की । इस समय लम्बी प्रबन्धात्मक कविताएँ भी लिखी गयीं ।

राष्ट्रीय जागरण, जनवादी क्रान्ति, सर्वहारा वर्ग की हलचलों एवं युद्धकालीन विसंगतियों ने पूर्व प्रचलित शिल्प को भावाभिव्यक्ति के लिए अशक्त घोषित कर दिया था । कवि के समक्ष यथार्थवादी सौन्दर्यबोध और समाजवादी विचार दृष्टि को कलात्मक रूप देना एक समस्या बन रही थी । ऐसी स्थिति में अभिव्यक्ति प्रकारों में नया अन्वेषण हुआ । रचना प्रक्रिया के रूप में यह भाषा, छन्द, प्रतीक, बिम्ब, उपमान, लय, अन्विति लेकर आया । छन्द के बन्धन तो निराला तोड़ ही चुके थे । जनभाषा का ओज और प्रवाह दिनकर,

---

1. रेखा अवस्थी, 'प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य' पृष्ठ- 130
2. रेखा अवस्थी, 'प्रगतिवाद और सामान्तर साहित्य, पृष्ठ - 130

सुमन व निराला ने प्रस्तुत कर दिया। इस समय जनमानस की लोक प्रचलित भाषा में समूह गान, कजली, श्रमगीत लिखे गये ।

व्यंग्य चित्रण में प्रतीकों का प्रयोग हुआ । कहीं गाय व सिंह के प्रतीक द्वारा शोषित व शोषक का चित्रण हुआ , तो कहीं कुकुरमुत्ता के माध्यम से सर्वहारा वर्ग व गुलाब के माध्यम से पूंजीपति वर्ग का चित्रण हुआ ।

अलंकारों का प्रयोग कवि ने समाज एवं राष्ट्र की दुर्दशा के उल्लेख में किया । कहीं-कहीं सामाजिक विसंगतियों से त्रस्त कवि ने विशेषण-विपर्यय, उपमा आदि का आश्रय लेकर अभिव्यक्ति की । वस्तुतः अलंकारों का प्रयोग ग्राम्य जीवन, प्रकृति चित्रण आदि में ही अधिक हुआ है ।

इन कवियों की भाषा सीधी सरल व प्रभावोत्पादक है, क्योंकि कवि अपना प्रथम उत्तरदायित्व जन साधारण के प्रति मानता है । इसलिए उसका झुकाव लोकभाषा की ओर अधिक है । लोकभाषा के साथ लोकधुन अपना कर जन मन को प्रभावित करने का कार्य प्रगतिवादी कवि ने किया है । क्योंकि युग की माँग के अनुरूप कविता का सम्पूर्ण श्रृंगार ही बदल गया था । उस समय केदारनाथ अग्रवाल ने लिखा - 'आज कहीं भी देखिये नई कविता ही छपती है । वह बिलकुल बदली हुई होती है । जैसे उसका नखशिख ही बदल गया हो ।'[1]

सामाजिक यथार्थ का चित्रण करते हुए प्रगतिवादी कवि ने जो रचनाएँ समाज को दीं वे जीवन की ठोस वास्तविकता से सम्बन्धित हैं । इस युग की कविताएँ वैयक्तिक सीमाओं से निकल कर समाजपरक बनीं । कविता का क्षेत्र जनमन में विस्तीर्ण हो गया एवं जनता के दुख दर्दों को अभिव्यक्ति मिली । ये कवि प्रारंभ से ही सामाजिक यथार्थ का आँचल पकड़ कर एवं शोषित जनता के मंगलमय भविष्य में अडिग विश्वास लेकर चले । धर्म और ईश्वर को ये समाज की अफीम मानते हैं । इनके काव्य में नारी की विशुद्ध मानवी रूप में प्रतिष्ठा हुई । व्यंग्य की दृष्टि से प्रगतिवादी कविता अत्यन्त समृद्ध है । कला और शिल्प के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन इसी युग की देन है । इन कवियों ने अतीत और परम्परा को वर्तमान सन्दर्भ में देखा। इसी यथार्थ दृष्टि से प्रेरित होकर शिल्प तत्व को गौण स्थान दिया गया ।

प्रगतिवादी कवि के वर्ण्य विषय असीमित हैं । लोक भावना से तादात्म्य इसकी मुख्य विशेषता है । यहाँ मानव अपनी सम्पूर्ण महिमा और गरिमा के साथ प्रतिष्ठित हुआ ।

---

1. केदारनाथ अग्रवाल, 'समय समय पर' पृष्ठ - 124

अनेक उपलब्धियाँ होने के बावजूद भी हिन्दी में प्रगतिवाद का प्रसार जितनी शीघ्रता से हुआ, उतनी स्थिरता नहीं प्राप्त कर सका । लगभग बीस वर्षों की अवधि में भी वह ऐसी कोई रचना नहीं दे सका जो 'कामायनी' के समकक्ष हो । दिनकर ने 'चक्रवाल' की भूमिका में लिखा है कि, 'प्रगतिवाद ने साहित्य पर ऐसा कोई प्रभाव नहीं डाला, जिसे हम किसी भी दृष्टि से साहित्यिक प्रभाव कह सकते हैं । यह मुख्यतर साहित्येतर आन्दोलन था जो साहित्य के भीतर केवल राजनीतिक उपयोग के लिए साहित्यिकों का शोषण करने आया था ।'[1]

प्रगतिवादी कवि ने साहित्य को मात्र नारेबाजी अथवा दलगत प्रचार में सीमित कर दिया । वस्तुतः उसके मूल में प्रगतिवाद की वह सैद्धान्तिक मान्यताएँ हैं जो साहित्य को दलगत प्रचार का एक अंग मानती हैं । 'साहित्य के उद्देश्य पर अपना मत प्रकट करते हुए एक बार लेनिन ने कहा था कि, साहित्य को पार्टी लिटरेचर की भूमि पर प्रतिष्ठित करना चाहिये । लेनिन के इस कथन को वेदवाक्य की भांति स्वीकार कर प्रगतिवादी आगे तो बढ़ गये परन्तु लेनिन की सी प्रशस्त दृष्टि अपने में समाहित न कर सके ।'[2] इसी का परिणाम है कि उनकी कविताओं में अपेक्षित गरिमा का अभाव है ।

वर्गवादी जीवन दृष्टि ने भी इस कविता को संकुचित बनाया है । कवि वर्ग के घेरे में आबद्ध होकर ही समाज का चित्रण करता है जो कि साहित्यिक दृष्टि से श्रेष्ठ नहीं माना जा सकता ।' कल्पना और मानव भावना की भूमि पर रहने वाले स्वतंत्र कवियों और साहित्यकारों को वर्गवाद की खूंटी से बांधने का प्रयत्न करना बुद्धिमानो की बात नहीं है । इसीलिए इस सिद्धान्त के हिमायतियों को पग-पग पर दूसरों के साथ समझौता करना पड़ता है ।'[3]

व्यंग्य के क्षेत्र में भी ये कवि सीमाओं का अतिक्रमण कर गये हैं । वैयक्तिक भूमिकाओं में उतर कर इन्होंने विशिष्ट व्यक्तियों पर भी व्यंग्य प्रहार किए हैं ।

प्रगतिवादी काव्य की बहुत बड़ी दुर्बलता कला और शिल्प के प्रति उसकी उदासीनता है । अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन में देश-विदेश के समीक्षकों ने वस्तु और शिल्प के उपयुक्त सन्तुलन पर बल दिया है, परन्तु प्रगतिवादी कवियों ने व्यावहारिक रूप में इस पर ध्यान नहीं दिया । यही कारण है कि वस्तु तथ्य में सारगर्भित और पुष्ट होते हुए भी अपेक्षित कला शिल्प के अभाव में कविताएँ अनगढ़ प्रतीत होती हैं ।

---

1. रामधारीसिंह, 'दिनकर', चक्रवाल - पृष्ठ - 41.
2. शिवकुमार मिश्र, 'नया हिन्दी काव्य पृष्ठ - 164.
3. नंद दुलारे वाजपेयी, 'नया साहित्य नये प्रश्न पृष्ठ - 9.

प्रगतिवादी कवियों में अनुभूति की तरलता का अभाव है । अतः काव्य मर्मस्पर्शी नहीं बन सका । भाषा की दृष्टि से इसका पक्ष बहुत दुर्बल है । निष्कर्षतः कलापक्ष की ओर से प्रायः सभी प्रगतिवादी कवि उदासीन रहे हैं ।

प्रगतिवाद ने चाहे स्वंय कोई महत्वपूर्ण रचना न दी हो, किन्तु इसके प्रभाव से परवर्ती साहित्यकारों का दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ । नई कविता के तथ्य में इसका प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है ।

डॉ० केसरी नारायण शुक्ल लिखते है -- '.... उसका उद्‌देश्य जीवन के भौतिक पक्ष का अभ्युत्थान है । जीवन के आर्थिक सामाजिक पक्ष पर विशेष आग्रह दिखाकर समस्त मानवता के व्यावहारिक पक्ष का उत्तरोत्तर विकास करना चाहता है । प्रगतिवाद का इसलिए भी महत्व है कि उसमें वर्तमान विकास के प्रधान तत्व छिपे हैं ।'[1]

छायावादी कवियों की अतिशय काल्पनिकता, सूक्ष्मता आदि के विरूद्ध जो मानस क्रान्ति हुई उसने ही प्रगतिवाद और प्रयोग वाद को जन्म दिया । इन दोनो ही काव्यधाराओं के उत्थान के कारणों में समानता होने के बावजूद भी विकास की दिशाएँ अलग-अलग हो गयीं । प्रगतिवाद मार्क्सवाद पर आधारित होने के कारण एक राजनैतिक नारा बन गया और प्रयोगवाद राजनीति से पृथक, जीवन के यथार्थ मूल्यों को खोजने व अंकित करने लगा ।

प्रयोगवाद :

प्रयोगवाद के प्रारम्भिक वर्ष भारतीय राजनीति में समझौते, निराशा, गतिरोध संघर्ष और दमन के वर्ष थे । विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप होने वाली आर्थिक अस्त्व्यस्तता, ह्रास, मंहगाई, बेकारी, हड़तालों एवं तालेबंदियों की स्थितिजन्य विषमताओं ने यों तो समाज के सभी वर्गों को प्रभावित किया, किन्तु वास्तविक प्रभाव पड़ा साहित्यकारों एवं संवेदनशील कवियों पर । द्वितीय विश्व-युद्ध के विश्वव्यापी परिणामों से कोई अछूता नहीं रहा । 'प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि में यदि रूस की साम्यवादी शक्ति प्रेरणा स्त्रोत थी तो प्रयोगवाद की पृष्ठभूमि में द्वितीय महायुद्ध के विश्व व्यापी परिणाम क्रियाशील थे, जिसके आधार पर आधुनिक बोध की नए सिरे से व्याख्या हुई ।'[2] इस काल में राष्ट्रीय समस्याओं को अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं के संदर्भ में देखा जाने लगा । निर्माण तथा विनाश दोनों का महत्व स्वीकार किया गया एवं युद्ध को अनिवार्य पक्ष मानकर व्यक्ति की समस्याओं पर अधिक ध्यान देने की बात कही गयी । शाश्वत और सामयिक तत्वों पर से मनुष्य का

---

1. केशरी नारायण शुक्ल, 'आधुनिक हिन्दी काव्यधारा का सॉंस्कृतिक स्त्रोत, पृष्ठ - 148.
2. त्रिलोचन पाण्डेय, 'छायावादोत्तर हिन्दी कविता प्रमुख प्रवृत्तियाँ' पृष्ठ - 94.

विश्वास टूटने लगा तथा वास्तविक सत्य को बाह्य न मानकर आन्तरिक मानने की धारणा प्रबल हो उठी । इस नयी धारणा ने सामाजिक यथार्थ की कल्पना को प्रभावित कर उसे मनुष्य के अन्तर्जगत की ओर मोड़ दिया।

योरोप में यह अस्तित्व-वाद के प्रकर्ष का समय था, जिसके प्रस्तोता ज्यां पॉल सांत्र फ्रांस में संकटबोध को जीवन का श्रेष्ठ बोध घोषित कर रहे थे । इस संकट की संयोजना में द्वितीय महायुद्ध का बड़ा हाथ रहा है । परिणामस्वरूप मानव नियति में अनियमितता एवं विघटन के दर्शन हुए । प्रयोगवादी इस विघटन के संयोजन में विज्ञान के उदय को एक महत्वपूर्ण कारण मानते हैं । उनका विचार है कि धर्मशास्त्रों द्वारा अनुमोदित सृष्टि कल्पना और मानवजीवन की व्याख्याओं की अस्वीकृति द्वारा विज्ञान ने धर्म के मूल पर कुठाराघात किया । विज्ञान ने विश्वास के स्थान पर परीक्षण, श्रद्धा के स्थान पर तर्क एवं आस्था के स्थान पर विश्लेषण को बल देकर हमारी मध्ययुगीन धारणा को आमूल परिवर्तित कर दिया । 'विज्ञान की इस परिणति ने एक अजीब सी विषम स्थिति ला दी । इस सारे अभियान का केन्द्र बिन्दु था-मनुष्य । अर्थात् मनुष्य एक विचित्र शून्यता में परिवर्तित हो गया । इसके लिए मूल्य निर्धारण की कसौटी क्या ? उसकी यह विकास यात्रा हो किसलिए रही है ? इसके लिए विज्ञान के पास कोई साधन नहीं था । अभी तक जो तत्व मनुष्यों को पशुओं से पृथक करते थे, यानी उसकी विवेकपूर्ण संकल्पशक्ति, उसकी नैतिक चेतना उन दोनों ने विज्ञान को अमान्य सिद्ध कर दिया । परिणाम यह था कि हम सारे मूल्यों का अवमूल्यन पाते हैं- एक विराट अराजकता, एक घातक अन्धकार मय शून्य । मूल्यों के इस विघटन ने कैन्सर की तरह मानवीयता को अन्दर से खोखला बनाना शुरू कर दिया । प्रकृति पर ज्यों-ज्यों विजय प्राप्त हुई, मनुष्य त्यों-त्यों अपने को हारता गया । इसके पहले कि विज्ञान और दर्शन इस संकट का अनुभव करते, साहित्य ने इस संकट का एहसास कर लिया था ।'[1]

इसके अतिरिक्त लोकतन्त्र की भावना का उदय भी मानसिक द्वन्द्व का एक कारण रहा । इस भावना के उदय से सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों की दासता से मुक्त होकर मनुष्य व्यक्तिनिष्ठ, आत्मकेन्द्रित तथा सामाजिक और राजनैतिक शक्ति के नियामक के रूप में परिणत हो गया ।

संकट बोध की पद्धति के विस्तार में ब्रिटेन का अपना महत्वपूर्ण योगदान रहा । वहाँ के कुछ कवि -स्टीफेनस्पेन्डर, जॉन लेहमन ने 'न्यूसिगनेचर' के नाम से एक काव्य संग्रह प्रकाशित किया जिसमें परम्परागत काव्य पद्धतियों के स्थान पर नयी दिशाओं की खोज की गयी थी । इसमें प्राचीन के प्रति असंतोष एवं नवीन के प्रति आग्रह दोनो विधमान थे । इलियट, एजरापाउण्ड, यूनियर जैसे कवियों मनोविश्लेषण की स्थापना का सहारा लेकर युगबोध अथवा संकटबोध व्यक्त करने की पद्धतियाँ विकसित की । जिसका प्रभाव हिन्दी की

---

1. धर्मवीर भारती, 'कल्पना' अंक फरवरी 1961 पृष्ठ - 40-41.

प्रयोगवादी कविता पर देखा जा सकता है ।

आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियों के अतिरिक्त उस युग की साहित्यिक परिस्थिति भी ऐसी थी जिसने इन कवियों को नयी लीकें पकड़ने के लिए प्रेरित किया । जहाँ देश के साहित्यिक बुद्धि जीवियों के एक बड़े अंश ने इन प्रयत्नों में हाथ बढ़ा कर उन्हें एक संगठित ठोस रूप प्रदान किया, वहाँ एक दल ऐसा भी था जिसने परिस्थितियों की विषमता से उत्पन्न निराशा, पराजय, खिन्नता तथा अवसाद को ही मूल मान कर अपनी कृतियों में उन्हीं की अभिव्यक्ति करने में अपने कर्तव्य की इति श्री समझ ली । इस प्रकार की मनः स्थिति वाले कवियों में भी कुछ कवि ऐसे थे, जिन्होंने उन्हें भाँति-भाँति के मनोवैज्ञानिक और प्रतीकात्मक आवरणों में प्रस्तुत किया । एक ओर समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, अनैतिकता आदि से असंतोष, दूसरी ओर उनके निवारण के प्रयत्नों में असहयोग तथा वस्तुस्थिति को ही सत्य मान लेने की उनकी प्रवृति दोनो ने ही मिल कर इस प्रकार के कवियों की स्थिति उलझा दी । उन्हें कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि वे सारे समाज से कट कर बिलकुल एकाकी हो गये हैं । समाज में उनकी कोई उपयोगिता ही नहीं रह गयी है । सामाजिक अनुपयोगिता की यह अनुभूति कुछ कवियों के लिए विशेष व्याकुलता का कारण बनी । सर्वप्रथम उन्होनें अपनी सामाजिक उपयोगिता प्रमाणित करने का प्रयत्न किया । परन्तु जब उन्हें इस कार्य में असफलता मिली तब उन्होंने एक तोष प्रद सामाजिक प्रवृति की मांग की । इसमें भी असफल होने पर परिस्थिति में ही संतोषजनक प्रवृति गढ़ने की मांग की । इस आशा से कि शायद सामाजिक व्यवस्था कभी स्वयं ही उनके अनुकूल होकर उन्हें उनका इच्छित गौरव दे दे । परन्तु सारे प्रयत्नों में विफल यह मध्यवर्गीय कवि परिस्थिति में भी संतोषजनक प्रवृति न गढ़ सका । वह स्वयं अपने ही वर्ग द्वारा उपेक्षित हुआ । फलतः एक ओर तो वह अपने वर्ग से बाह्य रूप से कट गया, दूसरी ओर समाज की झूठी प्रशंसा व सम्मान पाने के मोह में निम्न वर्ग से भी नाता न जोड़ सका । उसकी नियति त्रिशंकु सी हो गयी । उसकी मानसिक उलझनें व प्रतिक्रियाएँ विभिन्न रूपों मे फूटती रहीं और उनसे नयी-नयी प्रवृतियों का जन्म होता रहा । वस्तुतः ये ही वे कवि तथा लेखक हैं जिनमें से कुछ को हिन्दी के प्रयोगवादी काव्यांदोलन को जन्म देने का श्रेय प्राप्त है ।'[1] सन 1943 ई. में अज्ञेय के सम्पादकत्व में प्रकाशित 'तारसप्तक' ने हिन्दी जगत को एक नयी काव्य प्रवृति से परिचित कराया जो संग्रह में अज्ञेय की भूमिका तथा संग्रहीत कवियों में से अधिकांश के वक्तव्यों में काव्यगत प्रयोगों की विस्तृत चर्चा के कारण प्रयोगवाद नाम से पुकारी गयी । जिस प्रकार छायावाद के नामकरण का कारण उस वाद का विरोध और उसके प्रति उपेक्षाभाव था । इसी प्रकार विरोध और उपेक्षा भाव प्रयोगवाद के भी नामकरण का कारण बना । इस काव्यधारा के प्रवर्तक अज्ञेय ने इसे कोई नाम नहीं दिया,

---

1. नामवर सिंह 'आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृतियाँ'

किन्तु उनके द्वारा लिखी 'तारसप्तक' की भूमिका में बार-बार प्रयोग शब्द की व्याख्या किये जाने पर आलोचकों ने इस धारा का नामकरण प्रयोगवाद कर दिया । प्रयोगवाद का आधार ग्रन्थ 'तारसप्तक' प्रयोग को ही काव्यधर्म मानकर चला । कवियों को राहों का अन्वेषी' और काव्य सत्य का प्रयोक्ता कहने के कारण आचार्य वाजपेई ने इनकी रचनाओं को 'प्रयोगवादी रचनाएँ' संज्ञा से विभूषित किया । यद्यपि अज्ञेय ने इसका प्रतिवाद किया, किन्तु फिर भी ये प्रयोगवादी कहलाये और 'तारसप्तक' से लेकर 'दूसरा सप्तक' तक के कवि प्रयोगवादी आन्दोलन के तहत विवेचित हुए ।

प्रथम संकलन 'तारसप्तक'के साथ ही हिन्दी साहित्य के प्रयोगवाद अपने सुस्पष्ट और पृथक अस्तित्व के साथ प्रकट हुआ । इसके लगभग वारह वर्ष पश्चात प्रकाशित 'दूसरा सप्तक' प्रयोगवाद के विकास का सूचक है । भवानी प्रसाद मिश्र, रामशेर बहादुर सिंह, शकुन्त माथुर, हरिनारायण व्यास, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती इसमें संकलित है । इस संकलन में हम तारसप्तक की कविताओं में निबद्ध संशय और शंकाकुल मन को दृढ़ता के साथ अग्रसर होते देखते हैं । इन कवियों की अपनी अलग-अलग दिशाएँ हैं, लेकिन कुछ काव्य प्रवृतियाँ ऐसी हैं जो प्रत्येक कवि की रचनाओं में हैं और वे प्रयोगवादी कवि का जीवन दर्शन प्रस्तुत करती हैं ।

व्यक्तिवाद और उसकी चरम परिणति अहंवाद को प्रयोगवादी काव्य की सर्वप्रथमऔर सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रवृति के रूप में स्वीकार किया जा सकता है । प्रयोगवादी कवि का व्यक्तिवाद उसकी एकाकी और असमर्थ स्थिति का ही परिणाम है । इस व्यक्तिवाद से जुड़ा अहं कवि के काव्य का केन्द्र बिन्दु है इसलिए इन कवियों पर आलोचकों ने असामाजिकता का आरोप भी लगाया है । इनके काव्य की निराशा, नियति, पीड़ा, घुटन आदि विकृतियाँ भी व्यक्तिवाद की ही देन हैं ।

वस्तुतः कोई भी विचार जब बाह्य यथार्थ से कट कर वास्तविक सक्रियता से रहित हो उठता है तब वह विकृतियाँ उत्पन्न करता है जो कला के क्षेत्र में भाँति-भाँति के गूढ़ और अस्पष्ट आवरणों को ओढ़ कर प्रकट होती हैं । पश्चिम के प्रतीकवाद, अस्तित्ववाद, अतिवस्तुवाद सब इन्हीं विकृतियों के प्रतिरूप हैं । जिनके मूल में व्यक्ति की अहंवादिता की, अपनी व्यक्तिगत इच्छापूर्ति की स्थिति है । प्रयोगवादी कवियों ने व्यक्तिवादी अहंवादी विचारधारा का दृढ़ता से प्रतिपादन किया है । अज्ञेय ने अपनी अनेक कविताओं में इस विचारधारा की पुष्टि की है । कवि को अपने अहं पर इतना विश्वास है कि वह युग जीवन की विषमताओं से घिरा रहने के उपरान्त भी मात्र अपनी शक्ति के बल पर उन विषमताओं को चीर कर आगे बढ़ जाने का साहस रखता है एवं वैयक्तिकता को समाजिकता में लीन करते हुए शंकित होता है । यदि वह पंक्ति में

मिलता भी है तो अपने महत्व व शक्ति का भरपूर बखान कर लेने के बाद ही ।[1] वह अपने व्यक्तिगत अहं को जरा भी कुम्हलाते नहीं देख सकता, क्योंकि यही अहं जनित व्यक्तिवाद ही अन्य प्रवृतियों का जन्मदाता है ।

व्यक्तिवाद के समर्थक ये कवि यदा कदा सामाजिक दिशाओं की ओर भी घूमे हैं, जिसका कारण परिवेश का प्रभाव है । इस प्रकार की कविताओं में कथ्य बहुत ही प्रभावशाली बन गया है । डॉ0 भारती की कुछ कविताऐं इसका श्रेष्ठ उदाहरण हो सकती हैं । इनकी कविताऐं वैयक्तिक होने के बाद भी सामाजिक समस्याओं को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती हैं ।[2]

जिन परिस्थितियों एवं प्रेरणाओं ने प्रयोगवादी कवि को व्यक्तिवादी तथा अहंवादी बनाया उन्हीं ने उसे युग जीवन के प्रति एक अनास्थामय दृष्टिकोण भी दे दिया । अनास्था से आक्रान्त कवि ने न केवल परम्परागत मूल्यों का तिरस्कार किया अपितु समाज व जीवन के परम्परागत व वर्तमान मूल्य भी उसकी उपेक्षा के पात्र बने । उसे चारों ओर अपूर्णता दिखी । फलतः उसने एक साथ सबके प्रति अविश्वास की घोषणा की ओर अपनी अनास्था मूलक प्रवृत्ति की अनिवार्यता व औचित्य प्रमाणित करने का भी प्रयत्न किया । पाश्चात्य समाज की निराशा, कुण्ठा, अनास्था एवं कटुता उत्पन्न करने वाली मनोदशाओं को उसने साहित्य में अभिव्यक्ति देकर यहाँ के समाज पर लादना चाहा । इस अनास्था ने ही कवि को शंकालु बना दिया । जब भी वह सामाजिकता की ओर मुड़ा, शंकालु मन उसे बार-बार रोकता रहा बांधता रहा और उन चरणों की तलाश करता रहा जहाँ लक्ष्यहीन मन विश्राम पा सके । किन्तु प्रयोगवादी कवि की यह अनास्था युगीन परिवेश से उतनी प्रभावित नहीं है जितनी कि वह बाहर से लायी गयी है । वह स्वाभाविक न होकर प्रयत्न पूर्वक वर्णित की गयी है ।

निराशा, कुण्ठा एवं घुटन का व्यापक प्रदर्शन भी प्रयोगवाद की महत्वपूर्ण दिशा है । एकांत व्यक्तिवादिता तथा सामाजिक विषमता से अकेले संघर्ष करने की भावना ने इस प्रवृत्ति को जन्म दिया । प्रयोगवादी कवि अजीब सी कशमकश में जीता हुआ छटपटाता रहता है । कभी वह आशा, आस्था के गीत गाता है तो दूसरे ही पल निराश व कुण्ठित स्थिति में लीन हो जाता है । वस्तुतः उसका विश्वास व आशा क्षणिक है परिणाम स्वरूप निराशा व कुण्ठा ही काव्य का चिरस्थायी प्राण तत्व बन गयी है । यदि कहीं कवि इस प्रवृति से उबरना भी चाहता है तो वह सप्रयास प्रतीत होता है, स्वाभाविक नहीं ।

---

1. अज्ञेय, 'बावरा अहेरी' पृष्ठ 62-63.
2. धर्मवीर भारती, 'ठण्डालोहा' पृष्ठ 49

पराजय व पलायनवादी प्रवृति भी प्रयोगवादी काव्य के साथ सम्बद्ध है । इसके मूल में कवि का अहं निहित है । व्यक्तिवादिता के कारण कवि अपनी शक्ति और क्षमता का झूठा आत्म विश्वास लेकर प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्षकरता रहता है, किन्तु गहरी पराजय के कारण वह पलायनवादी बन जाता है । इस पराजय ने उसकी क्रिया शीलता का हनन कर उसे यथार्थ-भीरू और समाज से उदासीन बना दिया । समाज की वास्तविकताओं से कटकर वह अपनी कलात्मक रूचि की तृप्ति के लिए कभी शब्दों में नए अर्थ भरता रहा तो कभी यौन प्रतीको की सृष्टि करता रहा । अपने अहंवाद के कारण ही कवि अपनी क्षमता का झूठा एहसास कर प्रतिकूल परिस्थितियों के विरोध में एकाकी खड़ा हुआ है । यही कारण है कि उसके मस्तिष्क में गहरे अवसाद व क्षोभ के कारण उसकी सारी क्रियाशीलता समाप्त हो गयी है ।

क्षणवादी भावना भी प्रयोगवादी कवियों में गहरे संस्कारों के रूप में प्रतिष्ठित है । इस भावना के मूल में लॉरैन्स सांत्र, एवं फ्रेंच प्रतीकवादियों के विचार हैं, जिन्होंने प्रयोगवादी कवि को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है । हर क्षण का उपभोग इनकी मानसिकता बन गयी है । यही क्षणभोगी विचारधारा इन्हें भोगवादी बना गयी है । जब कवि को इच्छित क्षण की प्राप्ति नहीं होती, तब वह नियतिवादी बन कर अशान्त व व्यथित हो उठता है । अन्य ह्रासशील रूझानों के साथ क्षणवाद व नियतिवाद की अभिव्यक्ति इन कवियों ने बड़ी सजीवता व स्पष्टता के साथ की है । 'यह उनका क्षयशील रूप ही है जिसने हिन्दी की जागरुक काव्य चेतना को उसके विरोध में उठने के लिए भी बाध्य किया है ।'[1]

भावनाओं की अभिव्यक्ति के दौरान प्रयोगवादी कवि ने अपनी लघुता एवं निरीहता को भी स्पष्ट किया है । कहीं-कहीं भावना ही रूप बदल कर अपराधों एवं पापों की स्वीकृति के रूप में प्रकट हुई है । 'अपनी दीनता हीनता एवं पापों की यह स्वीकृति नई नहीं है । इसे मध्यकालीन संत एवं भक्त कवियों की रचनाओं में स्पष्ट देखा जा सकता है । अन्तर केवल इतना है कि हृदय से निश्चल एवं अकलुष होते हुए भी जहाँ मध्यकालीन भक्त एवं संत कवि अपनी शक्ति की प्रगाढ़ अनुभूतियों के वश एक गहन लोकोपकारी भावना से प्रेरित होकर युग के सारे कलुष को अपने सिर पर थोपकर अपने पतित पावन प्रभु से अपने व प्राणितमात्र के उद्धार की प्रार्थना करते थे, वहाँ प्रयोगवादी कवियों की प्रवृति के मूल में और कुछ नहीं, वस्तुतः उनके पराजित और पद दलित अहं का हाहाकार ही निहित है । अथवा यह उनकी अभिव्यक्ति की ऐसी टैकनीक विशेष है जिसके द्वारा कवि का मूल मन्तव्य अधिक प्रभावोत्पादक ढंग से सामने आता है ।'[2]

---

1. नन्द दुलारे वाजपेयी, 'आलोचना' संपादकीय पृष्ठ - 20
2. शिवकुमार मिश्र, 'नया हिन्दी काव्य' पृष्ठ - 230.

लघुता, निरीहता, अपराधों तथा पापों का यह प्रदर्शन प्रयोगवादी काव्य में पर्याप्त विविधता के साथ हुआ है । यहाँ कवि वस्तुपक्ष की विकृति के बावजूद भी शिल्प दक्षता प्रस्तुत करने में सफल हुआ है ।

पीड़ा और दर्द की अभिव्यक्ति भी प्रयोगवाद में बहुलता से हुई है, किन्तु यह पीड़ा किसी व्यापक उद्देश्य को लेकर बहुत कम अभिव्यक्ति पा सकी है । प्यार की पीड़ा के रूप में ही यह अधिक व्यक्त हुई है । डा० भारती का 'ठंडालोहा' इस पीड़ा के विविध आयामों को प्रस्तुत करता है । इस संग्रह में दिल के दर्द को ही विरह में परिणत होने वाला कह कर उसे दार्शनिक रूप दे दिया है ।

'फ्रायड तथा पाश्चात्य प्रकृतवादियों एवं अस्तित्ववादियों के प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव के कारण प्रयोगवादी काव्य नग्न यथार्थ तक पहुँच गया है । इसी प्रकार यौनभावनाओं का प्राबल्य भी इस काव्य में देखा जा सकता है । प्रकृतवादियों तथा अस्तित्ववादियो ने भी अपनी कृतियों में बहुधा मानव को एक बर्बर प्राणी के रूप में ही चित्रित किया है जो अपनी सारी पाशविक प्रवृतियों के साथ भाँति-भाँति के अधम से अधम कार्य करता है और जो बहुधा उसकी कुण्ठित काम वृत्तियों से सम्बन्धित रहते हैं ।'[1] फ्रायड की यह मान्यता है कि प्रत्येक कला के उद्भव के मूल में कलाकार की दमित काम वासनाएँ ही कार्य करती है तथा कलाकार सामाजिक दृष्टि से अनुपयोगी होने के कारण अपनी कला द्वारा समाज में अपनी उपयोगिता को प्रमाणित करने का प्रयत्न करता है । यही कारण है कि प्रयोगवादी काव्य में प्रायः दमित काम वासना का खुला चित्रण मिलता है । 'यों तो मध्यवर्गीय व्यक्ति जीवन की पीड़ा के अनेक स्तर इन कविताओं में उभरे हैं किन्तु विशेषतया दमित काम वासना का ही प्राधान्य लक्षित होता है । इनकी काम संवेदना जितनी ही तीव्र है उतनी ही सामाजिक बन्धनों की सीमाएँ कठोर ।'[2]

प्रयोगवादी कवि काव्य को भावों का नहीं वरन् बुद्धि का परिणाम मानता है । इसलिए उसके काव्य में भावुकता कम और बौद्धिकता अधिक है । नये कवि की इसी बौद्धिक प्रवृति के कारण काव्य रचना के समय उसकी शुष्क बौद्धिकता उसके साथ लगी रहती है । यद्यपि कोरी भावुकता भी काव्य के लिए न तो श्लाध्य है और न समीचीन ही । परन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं कि कविता रस व भाव से पूर्णतः अलग हो जाये । और भावुकता के विरोध में कोरी बौद्धिकता बन जाये । दोनों ही अति की सूचक हैं । वस्तुतः प्रयोगवादी कवि ने एक 'अति' का निषेध करने की झोंक में दूसरी अति को ही सर्वस्व समझ लिया।

---

1. शिवकुमार मिश्र, 'नया हिन्दी काव्य' पृष्ठ - 232
2. रामदरश मिश्र, 'हिन्दी कविता आधुनिक आयाम' पृष्ठ - 230
3. शिवकुमार मिश्र, 'नया हिन्दी काव्य' पृष्ठ 219.

किसी भी देश की उद्‌बुद्ध काव्य चेतना के लिए बौद्धिकता एवं भावुकता के मध्य उचित संतुलन होना आवश्य है । 'शायद ही कोई कृति हो जिसमें बौद्धिक चेतना का प्रवेश नहीं हो पाया । अतिशय भावना अथवा कल्पनावादी भी यह मानते हैं कि सहज वृत्तियों का उदात्तीकरण मानव संस्कृति के विकास के साथ-साथ होता है । कोई राष्ट्र या जाति अपनी मूल या आदिम वृत्तियों को संजोये बैठी नहीं रहती है । कविता में जातीय जीवन का बौद्धिक विकास-भी प्रतिबिम्बत होता है ।'[1] ऐसी स्थिति में भावना का तिरस्कार कर केवल बुद्धि को शीर्ष स्थान पर बैठा देना कहाँ तक उपयुक्त है ?

बौद्धिकता की सिद्धान्त रूप में स्वीकृति के कारण प्रयोगवादी कविताएँ अत्यन्त दुरूह बन गयी हैं । क्योंकि भावुकता को कवि ने मूर्खता का पर्याय मान लिया है । 'कवि अपने तथा अपने परिवेश के विषय में इतना सतर्क हो गया है कि हर जगह वह बौद्धिकता के रसात्मक कवच के साथ आने का अभ्यस्त हो चला, हर बात में उसे रेशनलाइजेशन की आदत पड़ गयी । अज्ञेय के हरी घास पर क्षण भर' की अधिकांश कविताएँ इस कथन का प्रमाण हैं । जिनमें से कुछ में तो उन्होंने अपने प्रणय की अभिव्यक्ति भी बौद्धिता के स्तर पर ही की है । इस प्रकार रस सिद्धान्त का तिरस्कार कर तथा बौद्धिकता का आश्रय ग्रहण कर, प्रयोगवादी कवि ने वस्तुतः काव्य की आत्मा के मूल को ही अस्वीकार किया है । प्रयोग अपने में बुरे नहीं हैं । काव्य के मूल तत्व रस प्रतीति पर दृष्टि केन्द्रित रख कर काव्य को गतिरोध और रूढ़िजाल से मुक्त करने के लिए नए प्रयोग स्तुत्य हैं - वे काव्य के साधक हैं, परन्तु क्रम को उलट कर काव्य की आत्मा का तिरस्कार करते हुए प्रयोगों को स्वतंत्र महत्व देना, उन्हें ही साध्य मान लेना हल्की साहसिकता मात्र है । काव्यगत मूल्यों का अनुचित तथा अनावश्यक कम विपर्यय है ।'[2]

प्रयोगवादी कवियों की समसामयिक चेतना अत्यन्त प्रबल है । प्रयोगवादी कवि का जीवन इतनी विश्रृंखलताओं और उलझनों से त्रस्त है कि उसके प्राचीन जीवन मूल्य टूट गये हैं, समाज की भौतिक प्रगति ने उसके मन को इतना झकझोर दिया है कि वह अव्यवस्थित और अशान्त हो गया है । वह अपनी मानसिक अव्यवस्था से यदा-कदा इतना आक्रान्त हो जाता है कि अपनी सत्ता को अपने ही अत्यन्त सीमित साधनों से केन्द्रीभूत करके उनसे शांति प्राप्त करनें का उपक्रम करने लगता है ।

प्रगतिवादी कवियों की अपेक्षा प्रयोगवादी कवियों की सामाजिक चेतना का क्षेत्र अधिक विस्तृत तथा व्यापक है । 'जहाँ प्रगतिवादी कवि अपने अशेष अवधान को केवल पूंजीवादी और शोषितों पर ही केन्द्रित करके रह जाता है वहाँ प्रयोगवादी कवि समाज के सम्पूर्ण परिवेश को अपनी कविता का विषय बनाता है।'[3]

---

1. नंद दुलारे वाजपेयी, 'नयी कविता', संपादकीय समालोचना - 1956 पृष्ठ - 20.
2. नगेन्द्र,'विचार और विवेचन' पृ0-151
3. देशराजसिंह भाटी,'समकालीन हिन्दी कविता'पृ0-40

व्यक्ति समाज की महत्वपूर्ण इकाई है । अतः प्रयोगवादी कवि ने जहाँ अपने व्यक्तित्व के चिन्तन प्रधान यथार्थ चित्रों को अंकित किया है वहाँ समाज के अन्य व्यक्तियों के मनोभावों को भी चित्रित किया है । आज प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व कितना कलुषित बना हुआ है, इसका बोध भारती की निम्न पंक्तियों से सहज ही हो जाता है -

'हम सब के दामन पर दाग
हम सब की आत्माएँ झूठ
हम सब के माथे पर शर्म
हम सब के हाथों में टूटी तलवारों की मूठ'[1]

उपर्युक्त भागवत विशेषताओं के अतिरिक्त प्रयोगवादी कवियों का शिल्पपक्ष भी नया है । इन्होंने शिल्प के क्षेत्र में भी मनचाहे परिवर्तन व प्रयोग किये हैं ।

प्रयोगवादी कवियों ने प्रतीकों का प्रयोग बहुलता से किया है । इन कवियों की प्रतीक योजना फ्रांस के प्रतीकवादी आन्दोलन पर आधारित है । 'इन संकेत-गर्भी प्रतीकों के प्रेरणा स्त्रोत फ्रॉस के प्रतीकवादी आन्दोलन की प्रवर्तनकारी विचारधाराओं विशेषकर मेलार्मे और वेलरी आदि कवियों के विविध कथनों में खोजे जा सकते हैं ।'[2] भारती का 'अंधायुग' तथा 'कनुप्रिया' पौराणिक अथवा ऐतिहासिक चरित्रों को प्रतीकों के माध्यम से ही नये युग की संगति में प्रस्तुत करती हैं । इसी प्रकार इनकी 'टूटा पहिया' भी ऐसी ही कविता है ।

फ्रायडीय मनोविज्ञान से प्रभावित यौन प्रतीकों को अज्ञेय ने विशेष प्रश्रय दिया है । उनकी 'सावनमेघ' 'सो रहा है झोंप अंधियाला' आदि ऐसी ही कविताएँ हैं । कुल मिलाकर प्रयोगवादियों की प्रतीक योजना वैविध्यपूर्ण और समृद्ध है । किन्तु कुछ कविताएँ ऐसी भी है जो प्रतीकों की क्लिष्टता के कारण बोझिल हो गयी हैं । इनकी यह प्रतीक योजना यथार्थ भीरूता कही जाये तो अत्युक्ति न होगी । 'इन प्रतीकवादियों को स्पष्ट रूप से यथार्थ का चित्रण करते हिचक होती है । इसीलिए यथार्थ की कटुता, नग्नता और भयंकरता से बचने के लिए प्रायः ये संकेतगर्भी प्रतीकों का प्रयोग करते हैं ।'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 20
2. शिव कुमार मिश्र, 'नया हिन्दी काव्य', पृष्ठ - 350
3. नामवर सिंह, 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ' पृष्ठ - 132

प्रतीक योजना की भाँति इस काव्य का अपना भाषागत वैशिष्टय भी है । प्रयोगवादी कवियों ने भाषा के प्रेषणीयता सम्बन्धी महत्व को अनुभव ही नहीं किया है, अपितु उस ओर विशेष ध्यान भी दिया है । उन्होनें अभिव्यक्ति में किसी ग्राहक, पाठक या श्रोता को अनिवार्य मानते हुए साधारणीकरण सम्बन्धी अपनी जिस मान्यता को स्पष्ट किया है उसमें भी भाषा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये । अपने शब्द भंडार की समृद्धि के लिए उन्होंने लगभग प्रत्येक क्षेत्र की ओर झाँका । विज्ञान, दर्शन, मनोविज्ञान, गाँव, गली-कूचे, शहर, बाजार, फैक्ट्रियाँ, अस्पताल आदि कोई भी उनकी दृष्टि से अछूते नहीं बचे ।

छन्द विधान की दृष्टि से प्रयोगवादी कवि विशेष सफल हुआ है । मुक्त छन्द के प्रति वास्तविक आत्मीयता तो प्रयोगवादी व मध्यवर्ती कवियों ने प्रदर्शित की है । डा0 भारती की कविताओं में मुक्त छन्द प्रायः लय में अनुशासित मिलता है । इन कवियों ने भावानुसार लयात्मकता के द्वारा अपने भावों का उत्कर्ष करके उन्हें सहज संवेदनीय और संप्रेषणीय बनाने में सफलता प्राप्त की है । प्रयोगवादी कवियों में एक मात्र अज्ञेय ही ऐसे हैं जिन्होंने मुक्त छन्द के तरह-तरह के प्रयोग प्रस्तुत किए हैं ।

संप्रेषणीयता काव्य का मुख्य प्रयोजन होता है । जिस काव्य में संप्रेषणीयता जितनी अधिक होगी वह उतनी ही उच्च कोटि का माना जायेगा । प्रयोगवादी कवियों ने भाषा के जिस रूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है उसमें बिम्बों का विधान स्वाभाविक और अनिवार्य है । इसलिए ये कवि बिम्बों के प्रति विशेष सचेष्ट रहे है और अंग्रेजी बिम्ब वादी कवियों से प्रभावित होकर विविध बिम्ब प्रस्तुत किए हैं । 'वस्तुतः बिम्बों के वैविध्य और व्यापकता दोनों में ही इन कवियों का काव्य अपेक्षाकृत नवयुग की काव्यधाराओं के पर्याप्त समृद्ध और सम्पन्न है ।'[1] अज्ञेय व भारती बिम्ब विधान में विशेष रूप से सफल हो सके हैं । शेष कवियों के बिम्ब इतने प्रभावी नहीं बन सके । अनेकानेक कमजोरियों के बाद भी इन कवियों के बिम्ब नये युग की बदलती रूचियों और बदले सौन्दर्य बोध को प्रस्तुत करते हैं ।

निष्कर्षतः 'तारसप्तक' के प्रकाशन के साथ ही प्रयोगवाद ने हिन्दी कविता में अपनी स्थिति की घोषणा की ओर कालान्तर में वह पुष्ट और द्रढ़ भी होता गया । अपने जीवन काल में भले ही प्रयोगवादी काव्य ने अपनी अनेक सीमाएँ व दुर्बलताएँ प्रदर्शित की हों, किन्तु उसने अनेक महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ भी अर्जित की हैं जो वस्तु के क्षेत्र में कम व कला और शिल्प के क्षेत्र में अधिक हैं । वास्तव में प्रयोगवाद का आविर्भाव कला व शिल्प के आन्दोलन के रूप में ही हुआ । विषयवस्तु व जीवनदर्शन तो बाद में निर्मित हुआ । काव्य के क्षेत्र में प्रयोगवाद की सर्वप्रमुख उपलब्धि व्यक्ति के उस महत्व की प्रतिष्ठा का प्रश्न है,

---

1. शिवकुमार मिश्र, 'नया हिन्दी काव्य', पृष्ठ - 343

जिसे प्रगतिवाद ने अशक्त बना दिया था । यहाँ प्रयोगवाद पश्चिम के व्यक्तिवाद से प्रभावित है । यद्यपि यह व्यक्तिवाद अतिवादिता व खोखलापन लिये था एवं अहंवाद से पोषित था । किन्तु प्रयोगवाद ने व्यक्ति मानस की जिन रेखाओं से नई हिन्दी कविता को परिचित कराया वे व्यक्ति के व्यक्तित्व के प्रति उसकी जागरुकता को ही प्रमाणित करती हैं ।'[1]

प्रयोगवाद की दूसरी महत्वपूर्ण उपलब्धि समाज के वर्ग विशेष की मानसिक स्थितियों का प्रकटीकरण है । उसने इस वर्ग के मानसिक विघटन के जो भी चित्र खींचे वे प्रभावोत्पादक तो हैं ही, विचारोत्तेजक भी हैं । उसने ह्रासशील मानसिकता को समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया, जिसके परिशोधन से स्वस्थ समाज बन सके । सभी प्रयोगवादी कवि कलाकार के अहं के प्रति निष्ठावान थे तथा अपनी इस अहं स्थापना में वे मानव विशिष्टता के प्रति जागरूक होने के प्रयास में लीन रहे ।

कला और शिल्प के क्षेत्र में प्रयोगवाद की उपलब्धि विशेष द्रष्टव्य है । यद्यपि यह भी पूर्ववर्ती कला और शिल्प की प्रतिक्रिया मे ही सम्भव हो सकी । परन्तु इस प्रतिक्रिया से कुछ उपलब्धियाँ भी मिली है। अभिव्यंजना शैली, अप्रस्तुत विधान, प्रतीक योजना, छन्द शिल्प इन उपलब्धियों का सभी क्षेत्रों तक प्रसार है । अभिव्यंजना को लेकर इन कवियों ने काव्य बिम्बों को समृद्ध किया एवं संगीत, गज़ल, सॉनेट छन्द परिसंवाद आदि अनेक नये पुराने माध्यमों को ग्रहण कर उसे युगानुरूप प्रस्तुत किया । प्रयोगवादी सामयिक जीवन दृष्टि से प्रेरित होकर अप्रस्तुत तथा रूप विधान के क्षेत्र में नये परिवर्तन लेकर उपस्थित हुए ।

भाषा की ओर भी इन्होंने सहजता प्रदर्शित की । नये शब्द निर्मित किये, पुरानों को काट छाँट कर सही कियां, किसी में नया अर्थ भरा तो कहीं जबरदस्ती अर्थ करने का प्रयास भी किया । इस तरह विचार, वस्तु एवं शिल्प सभी क्षेत्रों में इन कवियों का सक्रिय योगदान है । किन्तु कुछ त्रुटियों तो काव्य मे होती ही हैं । प्रयोगवाद भी इससे बच नहीं सका । इसकी सबसे बड़ी त्रुटि है-बौद्धिकता । अतिशय बौद्धिकता के कारण कवि ने भावनात्मक वर्णन की उपेक्षा की है । मानव वैशिष्ट्य के प्रति जागरूक होने के कारण वह बौद्धिक तृषा की तृप्ति मे ही लगा रहा । और इसी व्यस्तता में काव्य का मार्मिक पक्ष उपेक्षित हो गया । भावों की सहजता के स्थान पर बुद्धि की शुष्कता एवं जटिलता इनके काव्य का मुख्य विषय बन गयी । इसीलिए प्रयोगवादी रचनाएँ पूरी तरह काव्य की चौहद्दी में नहीं आती। वे अतिरिक्त बुद्धिवाद से ग्रस्त हैं। वृत्ति का सहज अभिनिवेश उनमें नहीं वे वैयक्तिक अनुभूति के प्रति ईमानदार नहीं हैं और सामाजिक उत्तरदायित्व

---

1. शिव कुमार मिश्र,'नया हिन्दी काव्य', पृष्ठ - 379.

को पूरा नहीं करती हैं ।'[1]

बौद्धिकता के अतिरिक्त इनके काव्य की दुरूहताके मूल में पाश्चात्य विचारों तथा शैलियों की भी सत्ता है । फ्री एसोसिएशन की प्रक्रिया एवं संकेतमयी भाषा तथा रागात्मक पौर्वापर्य. आदि के प्रभाव से काव्य कठिन हो गया है । अंग्रेजी के नए कवियों की भाँति इन कवियों ने काव्य व शिल्प विषयक प्रयोगों पर अत्यधिक अभिरूचि के कारण जानबूझ कर दुरूहता उत्पन्न की है । प्रयोगों की धुन में ये भूल गये है कि इनकी रचना मात्र स्वान्तः सुखाय ही नहीं है प्रत्युत् उसके रसास्वादन का समाज भी तो आकांक्षी है ।

प्रयोगवादी कवि अनास्था, निराशा कुण्ठा व लघुता के कारण कहीं--कहीं हीन हो गया है । ये भावनाएँ कभी उसे इतना आच्छन्न कर लेती हैं कि वह जीवन व जगत की बात भूल कर आत्मलीन सा हो जाता है । स्वयं कुंठित कवि अपनी संवेदनाओं में इतना उलझा हुआ है कि वह समाज को रचनाएँ भी उलझी संवेदनाओं की ही दे सका है । जिससे पाठक को निराश होना पड़ता है और उसे केवल उलझन ही मिलती है प्रयोगवादी कवि का आदर्शवाद खोखला है, वह पूर्णतः अतिवादी है । इसलिए कभी बहुत आशावान है तो कभी बेहद निराश । नवीनता के आग्रह के कारण बहुत कुछ देने की चाह लेकर भी वह समाज को कुछ नहीं दे पाता । 'नवीनता वरेण्य है किन्तु नवीनता के नाम पर पाठक को द्रविड़ प्राणायाम के लिए विवश कर देना और फिर कुछ भी प्राप्त न होना ग्राह्य नहीं है ।'[2]

छायावादी काव्य से विरासत में मिली पराजय इन कवियों को निराश करती रही है । कभी कवि अहंवादी हो जाता है तो कभी उसका अदम्य अहं बाह्य जगत से टकरा कर घायल हो जाता है ।

सामान्य मानव को पंगु बना कर देखने की, उसे जीवन यापन के व्यापक परिवेश से काट कर अपने तक सीमित कर देने की कवि की यह दृष्टि नवीन तो है किन्तु कलात्मक स्तर पर प्रयोगों के जाल में उलझी है । यही कारण है कि इस काव्य में प्रेम, संवेदना, उपकार आदि का अभाव है ।

नयी कविता :

नया या नयी का साहित्यिक अर्थ समकालीन समस्याओं की जानकारी एवँ उसके समाधान हेतु नये ज्ञान, विज्ञान, विचार व्यवहार के प्रयोग से होता है । यह मात्र काल सूचक नहीं होता । इसमें युग प्रवृति और युगीन चिन्तन सम्मिलित रहता है । हिन्दी की 'नयी कविता' के नामकरण के सम्बन्ध में भी यही बात कही

---

1. लक्ष्मीकान्त वर्मा, 'नयी कविता के प्रतिमान' पृष्ठ - 165
2. देशराज सिंह भाटी, 'समकालीन हिन्दी कविता' पृष्ठ - 59.

जा सकती है । 'प्रगतिवाद जहाँ दृष्टिकोण की प्रगतिशीलता तथा प्रयोगवाद शिल्प की नूतनता का परिचायक है वहीं नयी कविता अपने नाम में ही उक्त दोनों तत्वों के अतिरिक्त समसामयिक युगबोध और युगधर्म को समेट कर चल रही है ।'[1]

यदि हम प्रगतिवाद से लेकर नयी कविता तक की काव्य प्रवृतियों का विश्लेषण करें तो अनायास ही यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रगतिवाद, प्रयोगवाद व नयी कविता भिन्न-भिन्न काव्य धाराएँ नहीं है वरन् एक ही विचार सारिणी के क्रमशः विकसित रूप हैं । प्रगतिवाद ने छायावाद की अतिशय सूक्ष्म प्रवृतियों के विरोध स्वरूप जिस सत्य की स्थापना की थी वह समाज के जीवित धरातल से सम्बन्धित था । आगे चल कर यह वाद भी सामाजिक पक्ष के वर्णन में इतना उदार हुआ कि निजी व्यक्तित्व की नितान्त अवहेलना होती गयी इस अभाव की पूर्ति की प्रयोगवाद ने । वह व्यक्ति के आंतरिक पक्ष को ही लेकर चला । लेकिन आदर्श से यथार्थ तथा व्यक्ति से समाज की समस्याओं की ओर बढ़ती कविता जब नये कवि के हाथों में आयी तो उसमें और भी परिवर्तन हुआ । कथ्य के क्षेत्र में जहाँ विषय अधिकांश वही रहे वहाँ कुछ नये भी आ गये । ऐसे नये जो कभी कविता के विषय नहीं रहे । 'नयी कविता को प्रयोगवाद से सर्वथा भिन्न प्रयत्न मानना भी ठीक नहीं है, प्रत्युत यह ठीक मालूम पड़ता है कि नयी कविता प्रयोगवाद का स्वस्थ और संतुलित दिशा में सम्पन्न एक ऐसा विकास है जो किन्हीं मानियों में प्रगतिशील सामाजिक चेतना को स्वीकार कर के नये मार्गो की ओर अग्रसर हो रही है । साथ ही यह कहना भी गलत है कि नयी कविता आकस्मिक रूप से आयी हुई काव्यधारा है । उसका गोत्रीय सम्बन्ध तो प्रयोगवाद से ही ठहरता है ।'[2]

' नयी कविता व प्रयोगवादी कविता में तात्विक अन्तर नहीं है । अन्तर केवल अभिधागत है । 'तारसप्तक' में जो प्रवृत्तियाँ दबी थीं, नयी कविता में उन्हीं का विकास हुआ है । 'तीसरा सप्तक' प्रयोगवादी कविता के विकास की चौथी सीढ़ी है ।'[3]

नयी कविता प्रयोगवादी कविता की वह अभिधा है जिसका प्रयोग अज्ञेय ने 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में प्रयोगवादी कवियों के लिए किया था । इस अभिधा के उदय के कई कारण थे । पहला कारण तो यह था कि प्रयोगवाद शब्द से ही एक व्यंग्यात्मक ध्वनि निकलती थी और दूसरे इस शब्द के प्रचलन से

---

1. विजय द्विवेदी, 'नयी कविता : प्रेरणा एवं प्रयोजन' पृष्ठ - 15
2. हरिचरण शर्मा, 'नयी कविता नये धरातल' पृष्ठ - 6
3. नरेन्द्र देव वर्मा, 'नयी कविता सिद्धान्त और सृजन' पृष्ठ - 33

कवियो की सैद्धान्तिक कट्टरता का बोध भी हो जाता था । इसलिए इस काव्यधारा को नयी कविता का अभिधेय तो प्रदान किया गया, किन्तु इसकी व्याप्ति और सीमा, व्याख्या और परिभाषा को स्पष्ट करने का कोई प्रयास नहीं किया गया । फलतः नयी कविता अपनी विशिष्ट अभिधा के माध्यम से पनपती गयी । 'दूसरा सप्तक' के प्रकाशन के तीन वर्षों के उपरान्त कतिपय प्रयोगवादी कवियों द्वारा नयी कविता की अभिधा से अर्धवार्षिक संकलन के प्रकाशन की घोषणा की गयी तथा उसी वर्ष 'नयी कविता' का प्रथम अंक प्रकाशित भी हो गया । तब से प्रयोगवादी कविता के लिए नयी कविता का अभिधेय रूढ़ हो गया ।'[1]

'यह कहना तो कठिन है कि प्रयोगवाद न आया होता तो नयी कविता भी न आती । पर यह निष्कर्ष निकालना सुगम है कि प्रयोगवाद ने नयी कविता को जन्म देने में अपना समूचा योगदान किया । बल्कि अधिक सही यह कहना होगा कि प्रयोगवाद और नयी कविता हिन्दी की अधुनातन कविता के क्रमिक उत्थान हैं ।'[2]

आशय यह है कि नयी कविता प्रगति और प्रयोगों के जीवन्त तत्वों को लेकर चलने वाली कविता है । वह आधुनिक बोध से संपृक्त जीवन की जटिलताओं का साक्षात्कार करने वाली कविता है ।

इस प्रकार नयी कविता में उन सभी काव्य प्रवृत्तियों का विकसित रूप समाहित है जो छायावाद के उपरान्त अविर्भूत हुई, इसलिए नयी कविता के क्षेत्र में ऐसे अनेक कवि आ गये हैं जिनका सम्बन्ध प्रगतिवादी प्रयोगवादी काव्यधारा से रहा है ।

प्रगतिवाद व प्रयोगवाद ने नयी कविता की पृष्ठभूमि तैयार की । छायावादोत्तर काव्य की प्रवृत्तियाँ अंततः नयी कविता की ही प्रवृत्तियाँ है । अधिकांश विद्वान अज्ञेय को इसका प्रवर्तक मानते हैं । किन्तु सभी एक मत नहीं है । डा0 नामवर सिंह निराला व नरेन्द्र शर्मा को नयी कविता का प्रवर्तक मानते हैं, तो डा0 रघुवंश अज्ञेय को । नयी कविता के प्रवर्तन का श्रेय किसी एक कवि को नहीं दिया जा सकता । नयी कविता युगीन परिवेश और परिस्थितियों के घात-प्रतिघात की देन है । 'नयी कविता के प्रवर्तन का श्रेय चाहे निराला को दिया जाये, चाहे बच्चन, अज्ञेय, मुक्तिबोध तथा गिरिजा कुमार माथुर को और चाहे उसे सामूहिक रचना धर्मिता का फल माना जाये इससे नयी कविता की रचनात्मक गतिशीलता अप्रतिम ही रहती है । हाँ यदि नयी कविता के प्रवर्तन का श्रेय किसी को दिया जाना ही है तो निराला, अज्ञेय, मुक्तिबोध तीनों के क्रमिक प्रयासों को देना समीचीन होगा । निराला में नयी कविता के बीजांकुर मिलते हैं, अज्ञेय ने इसके पौधे का सिंचन किया

---

1. नरेन्द्र देव वर्मा, 'नयी कविता सिद्धान्त और सृजन' पृष्ठ - 36
2. शिवमंगलसिंह, 'सुमन', एवं विजयबहादुर सिंह, 'छायावादोत्तर काव्यधारा (सं) भूमिका ।

और मुक्तिबोध में आकर नयी कविता ने अपनी निर्दिष्ट रूपाकृति प्राप्त की ।'[1] नयी कविता को वास्तविक आकार प्रकार चाहे जिससे भी प्राप्त हुआ किन्तु उस पर प्रभाव तो अपने समय का ही पड़ा है । 'नयी कविता का अपने युग की परिस्थितियों और परिवेश से जितना घनिष्ठ सम्बन्ध है वैसा भक्तिकाल के बाद फिर देखने में नहीं आया । भक्तिकाल की रचनाओं में व्यक्ति संवेदनाओं के पीछे उस युग की गहरी आस्था और आस्तिकता के दर्शन होते हैं । नयी कविता की संवेदना की जड़ें समसामयिक युग की जीवन स्थितियों में गहरी धंसी हुई हैं । वास्तव में प्रयोग नयी कविता की विशिष्टता नहीं है उसकी विशिष्टता युग साक्षेप होने में है ।'[2]

पिछले तीस वर्षो के अपने जीवनकाल में नयी कविता परिवर्तन के अनेक पड़ावों से गुजरी है । इन परिवर्तनों को युगीन स्थितियों और संवेदनाओं में घटित होने वाले परिवर्तन की पृष्ठभूमि में ही समझा जा सकता है । गत वर्षो में भारतीय जीवन के सभी पक्षों में तेजी से बदलाव आया है । इसके परिपार्श्व में एक ओर यदि द्वितीय महायुद्धकालीन संकटों का प्रभाव था तो दूसरी ओर विभाजन व साम्प्रदायिकता की आग । ऐसी स्थिति में स्वतंत्रता की भावना को देशवासी अनुभूत ही नहीं कर सका और पुरानी परम्पराओं को अस्वीकारता हुआ वह आत्मान्वेषण की ओर बढ़ता रहा । संविधान की घोषणा से ले कर चीन के आक्रमण तक की अवधि नेहरू के चरमोत्कर्ष एंव भारतीय जनमानस के लिए मूल्यगत निष्ठा की अवधि थी । किन्तु चीन के आक्रमण से नेहरू के प्रति आस्था खण्डित हो गयी । और भारतीय जन मानस की निष्ठा एक झटके से चूर - चूर हो गयी । समसामयिक जीवन और युगीन सन्दर्भो से जुड़ी होने के कारण नयी कविता पर इन सब स्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था । यही कारण है कि कविता के क्षेत्र मे संशय, अस्वीकार व यथार्थ की ओर आकर्षण बढ़ता जा रहा था । वैसे तो छायावाद में ही निराला की रचनाओं में ये प्रवृत्तियाँ उभरने लगी थीं । यह ऐसा समय था जब - 'राजसत्ता का कृत्रिम और धार्मिक महत्व व्यर्थ हो गया और साधारण मनुष्य जिसे पहले अकिंचन समझते थे वही शूद्रता में महान दिखलायी पड़ने लगा । उस व्यापक दुख संवलित मानवता को स्पर्श करने वाला साहित्य यथार्थवादी बन गया ।'[3]

यह ऐसा काल था जब देश विदेश में घटी घटना, प्राचीन स्थापित मूल्य बड़े ओछे लगने लगे थे व जनमानस उपस्थित संसार के सुधार के स्थान पर एक नए संसार की आकांक्षा करने लगा था ।

---

1. प्रभाखत्री, 'नयी कविता में आँचलिकता बोध, पृष्ठ - 15
2. प्रभुदयाल अग्निहोत्री, 'पूर्णा' अंक अक्टूबर - 1968.
3. जय शंकर प्रसाद, 'यथार्थवाद और छायावाद' पृष्ठ - 60

वास्तव में चौथे दशक का अन्त और पांचवे दशक का प्रारम्भ भारत ही नहीं सारे विश्व के लिए भारी शंकाओं और संघर्षो से भरा हुआ था । ऐसे समय में 'व्यक्ति जीवन के अभावों की जमीन पर जिस अशान्ति, घुटन, कुण्ठा कशमकश, निरूपायता आदि की अनुभव नेहरू कर रहे थे वहीं गूंजइस दौर के बुद्धि-जीवी कवियों में भी सुनी जा सकती है ।'[1]

नये यथार्थवादी रूझान, परम्परा की अस्वीकृति और आत्मान्वेषण की प्रवृति के कारण दूसरे महायुद्ध के बीच संसार के सभी प्रबुद्ध कवियों में अपने परिवेश को समझने और उसका विश्लेषण करने की प्रवृति जागृत हुई । इस महायुद्ध की व्यापकता में एटमबम जैसे वैज्ञानिक उपकरणों से जो भयावहता भर गयी थी वह मानव के लिए बहुत गहरी चिन्ता का कारण थी । वैज्ञानिक उपकरणों जनित भय से समाज की नैतिक दृष्टि में भी परिवर्तन हुआ । यद्यपि द्वितीय विश्व युद्ध से हमारे देश का पूर्वी किनारा ही प्रभावित हुआ फिर भी आर्थिक दृष्टि से तो सारा अर्थतंत्र ही नष्ट हो गया । बंगाल का अकाल इसका त्रासद उदाहरण है । देश व्यापी मंहगाई व अन्य समस्याओं ने कट्टरता व जातिगत संकीर्ण विचारों को तोड़ा और व्यावहारिक होने के कारण युवा वर्ग विशेष रूप से सक्रिय हुआ ।' इस प्रकार नयी कविता के जन्म के दिनों में भारत का जन मानस पहली बार 'सेक्यूलर' बन रहा था । धर्म के बन्धन शिथिल हो रहे थे । परम्परागत मूल्यों पर से आस्था डिग रही थी और विश्वासों के स्थान पर तर्क और बुद्धि की प्रतिष्ठा हो रही थी ।'[2]

युद्ध की समाप्ति व स्वतंत्रता की प्राप्ति से भारतीय परिवेश बदलता सा लग रहा था । यद्यपि देश विभाजन, गृह कलह व शरणार्थी समस्या ने जातीय आदर्शो को एक गहरा झटका दिया था । किन्तु युगों से परतन्त्र भारतीय जन मन बहुत प्रसन्न था । सन् 1952 में देश में कांग्रेस का समाजवादी नारा बुद्धिजीवियों को आश्वस्त कर गया व वे यह मानने लगे कि संकट के दिन अब समाप्त हो गये । इस परिवर्तित वातावरण से सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र भी प्रभावित हुए-बहुपत्निवाद, अस्पृश्यता के विरूद्ध तीव्र प्रतिक्रियाएँ हुई, विवाह के क्षेत्र में वैयक्तिक रूचियों को मान्यता मिली, औद्योगिक ढांचा सुदृढ़ हुआ । एवं राजनैतिक दलों में भी प्रेम व सौहार्द्र पनपने लगा । 'हिन्दी कविता के छायावादोत्तर उन्मेष के बाद प्रगति प्रयोगवादी दौर के उपरान्त नयी कविता का जो दौर आरम्भ हुआ उसमें आस्था, निष्ठा, विश्वास और उदारता के जो स्वर सुनाई पड़ते हैं वे इसी परिवेश की उपज हैं । 'दूसरा सप्तक' का प्रकाशन इन्हीं स्वरों की सामूहिक अभिव्यक्ति है । नेहरू को सन् 1957 में नये भारत के नेता के रूप में देखकर 'तारसप्तक' के पूर्ववर्ती कवियों में तनाव के स्थान पर आत्मतोष, कुछ आत्म विश्वास, कुछ आशा और कुछ उत्साह का जो भाव आया वह अप्रत्याशित नहीं है ।'[3]

---

1. नामवर सिंह, कविता के नये प्रतिमान' पृष्ठ-9।
2. कान्ति कुमार जैन, 'नयी कविता' पृष्ठ 37
3. कान्ति कुमार जैन, 'नयी कविता' पृष्ठ - 39.

ऐसी स्थिति में एक ओर यदि नेहरू 'भारत की खोज' की ओर अग्रसर हो रहे थे तो दूसरी ओर कवि आत्म सत्य और अपने व्यक्तित्व की तलाश में संलग्न था । परिवेश के प्रभाव ने उस समय की काव्य सर्जना को विशेष रूप से प्रभावित किया । 'परिवेश के साथ काव्य की संगति सर्जनात्मक विकास के लिए वरदान सिद्ध हुई । सन् 1951 से 1959 के बीच नयी कविता के रूप में सर्जनात्मक सम्भावनाओं का जो अभूतपूर्व आवेश दिखाई पड़ता है, उसका श्रेय समकालीन परिवेश के साथ कवि की इस रागात्मक संगति को देना अनुचित न होगा ।'[1]

समकालीन परिवेश के साथ कवियों की यह रागात्मक संगति लगभग 1959-60 तक बनी रही । किन्तु सन् 1960 के बाद भारतीय परिवेश में राजनैतिक और राष्ट्रीय स्तर पर जो मोहभंग हुआ उससे नेहरू युग की समाप्ति हुई । इसी के समान्तर नयी कविता की आस्थापूर्ण सृजनशीलता के स्थान पर साठोत्तरी कविता के रूप में आक्रोश भरे, तीखे युवा लेखन का क्रम प्रारम्भ हुआ और नयी कविता के समानान्तर कुछ अन्य काव्य आन्दोलन विकसित होते हुए । सन् 1960 के पश्चात हिन्दी काव्य संरचना के क्षेत्र में ही नहीं सम्पूर्ण साहित्य में अस्वीकृति का एक चक्र चल रहा था । नयी कविता के बहुत से कवियों ने नये युवा कवियों के आक्रोश को स्वीकार नहीं किया । क्योंकि सप्तक के कवि किसी विचारधारा विशेष में बंधकर रहना नहीं चाहते थे । दूसरी ओर इन तरूण कवियों पर परिवेश की निर्मम वास्तविकताओं का गहरा प्रभाव पड़ा था । वे क्रांति का पक्ष लेते हुए युयुत्सा, दायित्व आदि के प्रति पुनः सजग हो रहे थे । बढ़ती हुई बेकारी, भुखमरी, राजनैतिक भ्रष्टाचार और खोखले आदर्शों ने देश के वातावरण को कुण्ठा और आक्रोश से भर दिया था । धूमिल, दूधनाथ सिंह, मणि मधुकर कैलाश वाजपेयी आदि की रचनाएँ यहाँ उल्लेखनीय हैं । इनकी कविताओं को नयी नयी संज्ञाएँ दी गयीं । इस सन्दर्भ में अकविता, साठोत्तरी कविता, बीटनिक कविता आदि कई नाम उभरे । जितनी तेजी से उभरे वैसे ही कुछ तो समाप्त भी हो गये किन्तु नयी कविता का अस्तित्व वैसा ही बना रहा । क्योंकि नयी कविता सम सामयिकता से रस ग्रहण करती रही व कवि उस परिवेश से पूरी तरह जुड़ा रहा । समाज की हर उथल-पुथल का साहित्य रचना पर प्रभाव पड़ता रहा । आधुनिक युग में वैज्ञानिक अविष्कारों के परिणाम स्वरूप जन जीवन में होने वाले परिवर्तन का भी साहित्य पर प्रभाव पड़ा । क्योंकिं 'कविता का युग जीवन से सीधा सम्बन्ध है । युग जीवन को कविता की अपेक्षा रहती है । उसकी सम्पूर्णता और सार्थकता के लिए जैसे यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने प्राकृतिक परिवेश से और अपनी परम्परागत मानव निर्मित स्थूल और सूक्ष्म सामाजिक संपत्ति से अपने जीवन के लिए वांछनीय और आवश्यक दाय पा सके और ले सके व उसका समुचित उपयोग कर सके । वैसे ही यह भी आवश्यक है कि वह अपनी सृजनशक्ति के सशक्त उत्कर्ष को अपनी कला में अभिव्यक्ति दे सके । युग की किन्हीं असाधारण इकाइयों के माध्यम से यह

1. नामवर सिंह, 'कविता के नये प्रतिमान, पृष्ठ - 96

उत्कर्ष कविता के रूप में अवतरित होता है । ये इकाइयाँ दूसरे शब्दों में युग के कवि के लिए एक ओर असाधारण है वहीं दूसरी ओर वे युग के मानव समाज की इकाइयाँ भी है; समाज से असम्बद्ध उतरे हुए देवता नहीं है ।'[1]

इसलिए समाज के सुख दुख से रचनाकार जुड़ा रहता है । तथा उसका यह लगाव संवेदना के स्तर पर और लोगों से कहीं अधिक होता है । अतः नयी कविता पर भी उसकी सामाजिक पृष्ठ भूमि का विशेष प्रभाव है ।

नयी कविता के विकास की पृष्ठ भूमि पर औद्योगिक सभ्यता का काफी प्रभाव पड़ा है । 'विश्व इतिहास में मनुष्य पहली बार मशीनों का दास हुआ, पहली बार रेनसाँ का आरम्भिक कृषक वर्ग व्यापारी वर्ग में रूपान्तरित हो गया, पहली बार उच्च मानवतावाद की परिणति व्यक्तिवाद में हुई । फलस्वरूप पहली बार अकेले मनुष्य और अव्यवस्थित समाज के बीच 'परायापन' की भीषण समस्या आ खड़ी हुई । पुराने आदर्श और प्रारूप अनुपयोगी तथा अप्रामाणिक हो गये ।'[2]

औद्योगीकरण के फलस्वरूप पूंजीवाद, शहरीकरण, बेरोजगारी, विशेषीकरण आदि कुछ नये आयाम प्रस्तुत हुए, पारिवारिक विघटन होने लगे, मनोरंजन का व्यापारीकरण प्रारम्भ हो गया, महानगर राजनीति व संस्कृति के केन्द्र बनने लगे, शहरीकरण के कारण अपराध बढ़ने लगे एवं व्यक्तिवादी विचारधारा का महत्व बढ़ा । इस काल में मनुष्य प्रकृति से अलगाव महसूस करने लगा, यांत्रिक सभ्यता के कारण उसका जीवन तनाव पूर्ण हो गया । तथा जिन्दगी की भागदौड़ में वह अपनी कोमल वृत्तियों का दमन करने लगा । ये ही दमित कोमल वृतियाँ कुण्ठा बन कर नयी कविता में सामने आयीं । व्यक्ति गाँव की अपेक्षा नगरों को महत्व देने लगा जिससे औद्योगिक केन्द्र महानगर बनने लगे । इन महानगरों में जनवृद्धि के साथ समस्याएँ भी बढ़ती गयीं, आगे चल कर ये ही समस्याएँ नयी कविता के उद्भव और विकास में सहायक बनी । यही कारण है कि अधिकांश नये कवियों की संवेदनाएँ शहरी हैं ।

नयी कविता की पृष्ठभूमि में नारी जागरण का विशेष महत्व है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब देश में नया संविधान लागू हुआ तब उसमें स्त्रियों को भी समान संरक्षण, समान अवसर व समान अधिकार दिए गये । राजनैतिक परिवर्तन के साथ सामाजिक संस्थाओं का भी नारी जागरण के आन्दोलन में प्रमुख हाथ रहा ।

---

1. बालकृष्ण राव, 'कल्पना' (सं) वर्ष 7 अंक 1 जनवरी 1956.
2. रमेश कुन्तल मेघ, 'आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, पृष्ठ - 60

यहाँ नारी अपने अधिकारों व कर्तव्यों के प्रति सचेष्ट हो गयी । योरोप व अमेरिका के नारी आन्दोलन का भी यहाँ प्रभाव पड़ा । वस्तुतः विदेशी व भारतीय आधुनिक चिन्तन प्रक्रिया ने नारी जीवन की पारम्परिक मान्यताएँ तोड़ी । मुक्त प्रेम की जो प्रवृत्ति नयी कविता में है, उस पर नारी आन्दोलन का ही प्रभाव है ।

वैज्ञानिक उन्नति से स्थानान्तरण की सुविधाओं के कारण वैचारिक आदान प्रदान बढ़ने से भी नयी कविता को बहुत कुछ मिला । विदेशों में शिक्षा प्राप्त युवक युवतियों का भी नई कविता में बहुत बड़ा योगदान है । 'वह कस्बाई या देशीय न रहकर सीमान्तक हो गया है । आज का सीमान्तक मानव (Marginal man) एक ऐसे बिन्दु पर खड़ा है जहाँ से वह सरलता से हर परिवेश से जुड़ जाता है । अतः अन्तर्राष्ट्रीय मानव के रूप में वह एक नये सम्बन्ध का निर्माता है ।'[1] किन्तु इस स्थानान्तरण के कारण एक ओर वह जहाँ सीमान्तक हुआ है वहीं दूसरी ओर उसमें अकेलेपन का एहसास भी गहराया है । इस अकेलेपन से उत्पन्न तनाव भी नयी कविता में देखा जा सकता है ।

राजनैतिक, सामाजिक एवं औद्योगिक सभ्यता के अतिरिक्त पूर्ववर्ती काव्य धाराओं का भी नयी कविता पर प्रभाव पड़ा इसने अपनी पूर्वधाराओं से कुछ ग्रहण किया व कुछ प्रवृत्तियों का पूरी तरह तिरस्कार किया है। नयी कविता पर छायावाद की सांस्कृतिक चेतना का प्रभाव पड़ा है । अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, बालकृष्णराव, भवानी प्रसाद मिश्र आदि के काव्य विकास को इसी सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि में परखा जा सकता है । नयी कविता का आस्थावादी स्वर, मानवीय व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा, नारी जागृति आदि भारतीय सांस्कृतिक चेतना की देन है । सांस्कृतिक पुनरूत्थान का यह प्रभाव कुछ पौराणिक आख्यान मूलक कृतियों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । भारती की कनुप्रिया में राधा के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा नारी जागृति का ही प्रतीक है । छायावाद की रोमांटिक कविता का प्रभाव नई कविता के अनेक कवियों की कविताओं पर देखा जा सकता है । चूकिं छायावाद अंतर्मुखी काव्य था, अतः उसकी प्रतिक्रिया में यथार्थ का स्वर लेकर प्रगतिवादी काव्य आया । इसका प्रभाव भी नयी कविता ने सुधार के साथ ग्रहण किया । वैसे भी नयी कविता के अभ्युदय का काल प्रगतिवाद के अवसान का समय है । इसलिए यह स्वाभाविक है कि नयी कविता उससे प्रभावित हो । श्री बालकृष्ण राव ने इस पक्ष पर विचार करते हुए लिखा है कि -'प्रगतिवाद ने भले ही बहुत कुछ ऐसा काव्य दिया हो जो प्रधानतया ही नहीं, पूर्णतया प्रचारात्मक पत्रिका मात्र है पर उसने हिन्दी कविता की छाया में छिपते रहने की बात उड़ा दी । उसे प्रकाश में आने के लिए प्रोत्साहित किया और एक बार प्रकाश में आ

---

1. रामवचन राय, 'नयी कविता उद्‌भव और विकास' पृष्ठ - 76.

जाने पर उसे फिर से तेजी से आधुनिक भावोन्मेष की उस राह पर बढ़ने के लिए क्षमता प्रदान की, जिस पर खड़े अवरोधों की दुर्लंध्यता से पराभूत होकर उसने उनकी ओर से मुँह फेर कर उल्टे पाँवों लौटना आरम्भ किया था ।'[1]

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि नयी कविता प्रगतिवाद से आन्तरिक रूप से जुड़ी हुई है और नये कवियों की यथार्थवादी अभिव्यक्ति प्रगतिवाद की ही देन है ।

नयी कविता की पृष्ठभूमि में योरोप के काव्य आन्दोलनों का भी काफी प्रभाव पड़ा है । वैज्ञानिक सभ्यता के प्रचार--प्रसार के कारण किसी भी देश की घटना का सारे विश्व पर प्रभाव पड़ता है । इसी प्रकार विदेशी साहित्य का भी नये कवियों पर प्रभाव पड़ा । अज्ञेय ऐसे प्रभावों को बुरा नहीं समझते, वे कहते है -'प्रभाव कोई बुरी चीज नहीं है, हम सांस लेते हैं तो उसमें वेक्टीरिया के अनेक जीवाणु हमारे शरीर के भीतर चले जाते है, उनसे स्वास्थ्य का कोई नुकसान नहीं होता । प्रभाव भी बुरा नहीं है, बशर्ते स्वास्थ्य अच्छा रहे । अर्थात् प्रभाव से स्वास्थ्य (रचनाशक्ति) में वृद्धि हो तो वह शुभ है ।'[2]

निष्कर्षतः विगत तीस--पैंतीस वर्षों से नयी कविता का व्यक्तित्व निरनतर विकसित होता रहा है और कालक्रम में कवि व काव्य प्रवृतियाँ जुड़ती गयी हैं । 'वास्तव में नयी कविता किसी सुस्पष्ट व निर्दिष्ट प्रवृत्ति का नाम नहीं है, उसमें अनेक प्रवृत्तियों का समाहार है । इनमें से कुछ प्रवृत्तियाँ इसमें स्वमेव विकसित हुई हैं और कुछ उसे अपनी पूर्ववर्ती काव्यधारा से प्राप्त हुई है । अलग अलग प्रवृत्तियों के बीच समता का अर्न्तवर्ती सूत्र अभी तक खोजा नहीं जा सका है । क्योंकि नयी कविता में कवियों की ऐसी विपुल संख्या क्रियाशील है जो लक्षणों की किसी एक निश्चित परिधि में समाहित नहीं की जा सकती । धीरे-धीरे नयी कविता का व्यक्तित्व विकसित होता आ रहा है और कालक्रम में उसमें विशिष्ट प्रवृत्तियों का आग्रह घटता-बढ़ता आ रहा है ।'[3]

नयी कविता में कवियों का एक भाग ऐसा है जो छायावादी भावभूमि से संपृक्त है और वह चाहकर भी उससे मुक्त नहीं हो सका है । प्रकृति व नारी विषयक रचनाओं में छायावादी संवेदना का विस्तार व परिष्कार देखा जा सकता है । अज्ञेय तथा गिरिजा कुमार माथुर की कई रचनाएँ इस श्रेणी में रखी जा सकती हैं। दूसरी ओर नयी कविता में अनेक ऐसे कवि है जो छायावादी विषय वस्तु से हटकर अपने आसपास के मानव

---

1. रामवचन राय, 'नयी कविता उद्भव और विकास', पृष्ठ- 50
2. अज्ञेय, 'कल्पना' (सं.) अंक फरवरी 1951
3. कान्ति कुमार जैन, 'नयी कविता' पृष्ठ 229.

जगत को एक यथार्थ परक आकुलता के साथ काव्य में प्रस्तुत करते हैं । मुक्तिबोध ऐसे ही कवि हैं । इन दोनो विचारधाराओं को नयी कविता में देखा जा सकता है । इसके अतिरिक्त विदेशी साहित्य के प्रभाव के कारण भी कुछ प्रवृत्तियाँ विकसित हुई हैं ।

विवेक को प्रमुख मानने के कारण नयी कविता में बुद्धि तत्व की प्रधानता है । आज के युग में मनुष्य का जीवन चिंतन प्रधान बनता जा रहा है । मानव नियति के प्रति जिस चिन्ता का कवि अपने काव्य में बखान कर रहा है वह बिना विवेकशील हुए असम्भव है। अपने परिवेश की अभिव्यक्ति हेतु उसका बौद्धिक होना एक प्रकार से अनिवार्य सा हो गया है । 'आज का कवि भावना और कल्पना से अधिक चिन्तन का विश्वासी है । उसने कविता को सस्वर चिंतन बना दिया है । अतः चिन्तन प्रधान नयी कविता जन मानस की नहीं, विशिष्ट संस्कृति की वस्तु बन गयी है ।'[1] यद्यपि नयी कविता विशिष्ट संस्कृति की वस्तु बनी है, किन्तु इसके चिन्तन ने ही इसे वाद विशेष के घेरों से मुक्त रखकर नये भाव बोध में सक्षम बनाया है । 'नये कवि का विश्वास है कि नयी कविता को जीवन के सीधे सम्पर्क को छोड़ कर उसे वाद विशेष के साथ बांध देने से साहित्य के स्वाभाविक विकास में बाधा पड़ती है ।'[2]

नये कवियों ने इस बौद्धिकता के कारण जीवन के प्रति पूर्वाग्रह त्याग कर उसे बहुमुखी दृष्टिकोण से देखा । यहाँ कवि पूरी तरह देखने, समझने व अनुभूतियों के प्रति सतर्क है । कथ्य व शिल्प के स्तर पर नयी कविता की अधिकांश प्रवृति के मूल में यही बौद्धिक दृष्टिकोण है ।

युग से गहन संपृक्ति नयी कविता की एक महत्वपूर्ण विशेषता है । युग-जीवन के सन्दर्भ में नये कवि ने अपने युग के विघटन, अनास्था, संक्रान्ति, कुण्ठा विजड़ित मान्यताओं और यांत्रिकता की बड़ी गहन अनुभूति की है । यथार्थ के प्रति यह ईमानदारी ही नयी कविता को पूर्ववर्ती कविता से अलग कर देती है । यद्यपि छायावादी, प्रगतिवादी कविताएँ भी युगीन समस्याओं से प्रभावित हुई, किन्तु उनमें अनुभूति की इतनी गहराई नहीं थी । अज्ञेय और मुक्तिबोध आदि कवियों में युगजीवन के प्रति गहन संसर्ग व यथार्थ के प्रति संपृक्ति परिलक्षित होती है । प्रगतिवादियों के समान नयी कविता वर्ग विशेष पर ध्यान नहीं देती, बल्कि मानव जीवन को समग्र दृष्टि से देखती है । इसलिए इसकी शब्दावली भी अपनी पूर्व काव्यधाराओं से कुछ अलग है । डॉ0 क्रान्ति कुमार नयी कविता की लोक जीवन से गहन संपृक्ति मानते है । उनका कथन है कि - 'नयी कविता पर पाश्चात्य प्रभावों की अतिशयता का अरोप लगाने वाले विचारकों को इस तथ्य की ओर ध्यान देना चाहिए ।

---

1. कुमार विमल, 'नयी कविता : आलोचना और कला' पृष्ठ - 7.
2. अज्ञेय, 'तीसरा सप्तक' (स0) पृष्ठ - 231.

हिन्दी में लोक जीवन के पास पहुंचने की वृत्ति इस शताब्दी में प्रगतिवादी कवियों ने प्रदर्शित की थी, किन्तु प्रगतिवादी कवि एक विशेष दृष्टिकोण से संसार को देखता था अतः उसने भारतीय लोक जीवन को उस पर अपनी दृष्टि की छाप लगा कर ही स्वीकार किया था ।'[1] किन्तु नयी कविता ने लोक जीवन की अनुभूति, सौन्दर्यबोध, प्रकृति और उसके प्रश्नों को एक सहज और उदार मानवीय भूमि पर ग्रहण किया । साथ ही साथ लोक जीवन के बिम्बों, प्रतीकों, शब्दों और उपमानों को लोक जीवन के बीच से चुन कर अपने को अत्यधिक संवेदना पूर्ण और सजीव बनाया ।'[2] नयी कविता का परिवेश भारतीय जीवन है किन्तु कुछ आलोचक उसकी अनास्था, निराशा, कुण्ठा के आधार पर उसे पाश्चात्य प्रभाव से ग्रस्त बताते हैं । यह सत्य है कि नयी कविता में निराशा, कुण्ठा, मरणधर्मिता है, किन्तु नयी कविता की इन विशेषताओं को जन्म देने की शक्ति अपने समाज में ही है । भारतीय सामाजिक परिवेश बड़ा विषम है, इसमें जो संवेदनशील व्यक्ति जी रहा है, उसकी संवेदना को चोट पहुंचती है ।

नयी कविता का कवि यथार्थ की भूमि पर स्थित है । उसे अपनी विशिष्टता और लघुता के परिवेश तथा उसकी प्रतिक्रियाओं का पूर्ण ज्ञान है । अपनी सीमाओं में अति प्रताड़ित, संत्रस्त और कुण्ठित होते हुए भी वह विवेकशील मानव बन कर जीवन के प्रति पूर्ण आस्थावन है । दुष्यन्त, भारत भूषण अग्रवाल, धर्मवीर भारती, गिरिजा कुमार माथुर, नरेश मेहता, मुक्तिबोध, सर्वेश्वर आदि ऐसे ही कवि हैं जो जीवन के प्रति गहरी आस्था रखते हैं । भारती की कविताओं में आस्था के प्रति विशेष लगाव है ।

'रात पर मैं जी रहा हूँ, निडर
जैसे कमल
जैसे पंथ
जैसे सूर्य '[3]

नयी कविता में अभिव्यक्त जीवन के यथार्थ का एक रूप निराशाजन्य आस्था से भी जुड़ा है । जिस परिवेश में आज मानव जी रहा है, उसमें उसका दम घुट रहा है । उसे विषमताओं के कारण सारा समाज रूग्ण दिखाई दे रहा है, प्राचीन मूल्यों के विसर्जन व नये मूल्यों के बीच वह उलझ गया है तथा यह उलझन उसे कहाँ ले जायेगी, पता नहीं है ।

---

1. कान्ति कुमार, 'नयी कविता' पृष्ठ - 233.
2. रामदरश मिश्र, 'हिन्दी कविता तीन दशक', पृष्ठ - 122-123.
3. धर्मवीर भारती, 'सातगीतवर्ष' पृष्ठ - 79

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप ऐसे मूल्यों की स्थापना हुई जो कलाकारों के लिए त्रासद थे । यद्यपि नवोदित सक्रिय सामाजिक चेतना के रूप में आधुनिक कविता का विकास हुआ, तथापि कलाकार जनजीवन से दूर और अलग होते गए । युद्धोत्तर समाज की विसंगतियों के फलस्वरूप पराजित मध्यमवर्गीय मनः स्थिति का अभ्युदय हुआ । नयी कविता ने इन असंगतियों और विद्रुपताओं को अभिव्यक्ति दी । पूंजीवादी घातक प्रभाव के अन्तर्गत विकसित होने वाले देशों में टूटन, टकराव, अव्यवस्था और अश्लीलता का पैदा होना स्वाभाविक था ऐसे समय में कवियों के लिए केन्द्रीय परम्परागत अनुभवों का कोई महत्व नहीं रहा । विज्ञान, उद्योग, सैनिकीकरण और असंस्कृत संस्कृतियाँ के संसार में रहने वाला कवि एक रूग्ण मनोवृति लेकर काव्य में आया । गहरे अवसाद, निराशा और मृत्यु की भावना से आक्रान्त नया कवि स्वयं को जन साधारण से कटा हुआ, निर्वासित समझने लगा । और वैयक्तिकता से सामाजिकता की ओर बढ़ता गया । वैयक्तिक और सामूहिक दोनो दायित्वों का निर्वाह करते हुए वह घबरा उठा । कैलाश वाजपेयी के संकलन 'संक्रान्ति' की 'दमतोड़ती शताब्दी, 'टूटे अक्षरों का विलाप, 'भटका हुआ अकेलापन' ऐसी ही कविताएँ है ।

'नयी कविता का मानव जिस दर्द वेदना और निराशा को भोगता है, उसे उतनी ही ईमानदारी से अभिव्यक्ति भी देता है । उसका दर्द प्रेमजनित न होकर सामाजिक समस्याओं से उद्भुत है । क्योंकि 'विगत युद्ध के कारण मानव मूल्य विघटित हुए सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक संघर्ष तथा वैयक्तिक स्वतंत्रता की माँग और शून्य हृदयों की चीखों और पुकारों ने नये कवि को निराशा और अवसाद के कोहरे से लपेट दिया । विकलता के बन्धन में बंधा कवि छटपटा रहा है, निराशाजन्य अनुभूतियाँ ही उसके पास व्यक्त करने को शेष रही है ।'[1]

वेदना की गहराई अज्ञेय, मुक्तिबोध, भारती, आदि की रचनाओं में परिलक्षित होती है । मुक्तिबोध का विश्वास है कि दर्द संघर्ष करने की शक्ति प्रदान करता है ।'[2] अज्ञेय का मत है कि दर्द से मनुष्य परिष्कृत हो जाता है और इसकी शक्ति का सम्बल पाकर अपना विकास करता है -

दुख सबको माँजता है

और

चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना न जाने

किन्तु जिसको माँजता है

उसे यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखे ।'[3]

---

1. मुक्तिबोध, 'प्रतीक' अंक - 1949 पृष्ठ - 9
2. मुक्तिबोध, 'प्रतीक' अंक 1949 पृष्ठ- 9
3. अज्ञेय, 'हरीघास पर क्षण भर' पृष्ठ- 55

नयी कविता में पहली बार 'लघु मानव' का एक दर्शन निर्मित हुआ । वैसे तो छायावादी कवियों ने भी लघुत्व के सन्दर्भ में काफी कुछ लिखा परन्तु वास्तविक लघुता का दर्शन नयी कविता में ही बना । मानवीय लघुता की मूल्य रूप में स्थापना करने वाले नयी कविता के सुप्रसिद्ध समीक्षक श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा ने लिखा कि -'आज इस मानव और उसके अन्वेषण की आवश्यकता इसलिए है कि इतिहास के 'सुपरमैन' या जनसत्ता के अधिनायक अथवा देवदूत या मसीहा ने अपनी समस्त महानता को लघु मानव की बलि देकर ही अपनाया है .... सारा सामाजिक क्रम आज इस बात से बंधा है कि मानव विशिष्टता को बिना स्वीकार किये ही कुछ ऐसी शक्तियाँ विकसित हो गयी हैं कि जो मानव भविष्य को समूचे यथार्थ से पृथक करके देखने की चेष्टा करती हैं ।'[1] मनुष्य अपूर्ण है, वह निरन्तर पूर्णता को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नरत रहता है । इस प्रकार अपूर्ण रहना और पूर्ण बनने के लिए प्रयत्न करना उसकी नियति है । आज का मानव इस अपूर्णता एवं लघुता को स्वीकार करता है तथा लघुत्व की हीन भावना से निराश नहीं होता । लघु मानव अपनी विशिष्टता के प्रति भी सर्तक है । वह उपेक्षा, तिरस्कार का प्रतीक नहीं अपितु उसके व्यक्तित्व में शक्ति और गरिमा के तत्व विद्यमान है । दयनीय और असहाय स्थिति से ऊपर उठने के लिए लघुमानव में वह शक्ति और सामर्थ्य मिलती है, जो इतिहास को मोड़ देने के विश्वास से मण्डित है । 'भारती' का 'टूटा पहिया' इसी प्रयास में रत है'[2] -

नयी कविता छायावादी और प्रगतिवादी काव्य संस्कारों के प्रति विद्रोह का भाव लेकर उपस्थित हुई, इसलिए उसमें आक्रोश अधिक है । आक्रोश की अभिव्यक्ति व नव-निर्माण नयी कविता की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ मानी गयी हैं । सामाजिक व्यवस्था से असन्तुष्ट कवि का विद्रोह काव्य में फूट पड़ा है । फलस्वरूप पारम्परिक कथ्य एवं शिल्प के प्रति विद्रोह नयी कविता की चेतना बन गया है । क्योंकि 'विद्रोह केवल स्व का प्रकाशन अथवा अहं का विस्फोट मात्र नहीं है और न उसका सम्बन्ध कुछ वक्तव्यों से है, उसे अराजकता का पर्याय भी नहीं बनाया जा सकता । काव्य में विद्रोह भावना मूलतः स्वयं को नये यथार्थ के निकट लाने की प्रक्रिया से प्रारम्भ होती है और उसे सार्थक अभिव्यक्ति देने के लिए नये माध्यमों की तलाश में सक्रिय होती है यही कवि और रचनाकार परम्परा में एक नयी अगली कड़ी जोड़ते हैं, जो देखने पर विगत का निषेध मालूम देती है और वास्तव में परम्परा के जीवन्त तत्वों का ही विकास है ।'[3]

---

1. लक्ष्मीकान्त वर्मा, 'नयी कविता के प्रतिमान' पृष्ठ - 162
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' - पृष्ठ 90
3. प्रेमशंकर, 'राष्ट्रवाणी' अंक सितम्बर-अक्टूबर पृष्ठ - 42

हिन्दी के प्रगतिवादी काव्य में व्यक्तिसत्ता के महत्व को स्वीकृति प्राप्त नहीं हुई थी । भारतीय जीवन दर्शन में व्यक्ति सदा से समाज को समर्पित रहा है । प्रत्यक्ष रूप से उसके अहं व अहमियत की कभी प्रतिष्ठा नहीं हुई । अहं को व्यक्ति की विकृति और उसका स्वार्थ माना गया । प्रयोगवादी काव्य में सर्वप्रथम अज्ञेय ने अहं को प्रतिष्ठा दी । एवं अहं की पुष्टि भी की । वे कहते है कि -'वास्तव में आधुनिक कविता की विशेषता यह है कि वह कवि के व्यक्तित्व के साथ अधिकाधिक बंधी हुई होती जा रही है । आज का कवि कविता की वरंच व्यक्तित्व की व्यक्ति के अहं की प्रखरतर अभिव्यक्ति और उस अहं को पुष्ट करने वाली रचना मानता है ।'[1]

नयी कविता में अहं के स्वस्थ रूप का चित्रण हुआ है । परिस्थितियों से संघर्षकरते हुए भी कवि का आत्म विश्वास नहीं खोया और, वह सचेतन होकर जूझता ही रहा । जहाँ कवि का अहं कुठित हुआ है वहाँ उसकी रचना कुछ कमजोर सी हो गयी है । 'अज्ञेय' का 'यह दीप अकेला' इसी भाव की अभिव्यक्ति है ।'[2]

नयी कविता में समकालीन मूल्यों के विपर्ययों पर तीखे व्यंग्य हुए हैं । जब कवि में भावावेश की स्थिति प्रबल हो जाती है तो वह अपने आवेश को, कभी कभी आक्रोश को साधारण शब्दों में अभिव्यक्ति नहीं दे पाता, तब वह व्यंग्य के माध्यम से अपनी बात कहता है । नये कवि ने जीवन और समाज के हर पहलू को बड़े ध्यान से देखा है, और ऐसी स्थितियाँ भी देखी है जो उसे व्यंग्य की ओर उन्मुख कर गयी हैं । कवि यथार्थवादी है और नयी कविता की यथार्थवादी रूझान की आवश्यक परिणति उसकी व्यंग्य प्रियता है । क्योंकि जिस देश में मात्र पंचवर्षीय योजनाएँ बनाना ही मुख्य कार्य हो, उनका क्रियान्वयन न हो, ऐसे देश के कवियों में व्यंग्य के प्रति रूझान स्वाभाविक है । जिस समाज में मानव केवल कुंठित ही नहीं खोखला भी है, उस समाज के रचित काव्य में व्यंग्यात्मकता आ जाना आवश्यक है । आज सामाजिक विश्वास व कथनी करनी के बीच जो अन्तर है वह भी नयी कविता में व्यंग्य का प्रमुख कारण है ।

नयी कविता के व्यंग्य लिखने में भवानी प्रसाद मिश्र, प्रभाकर माचवे, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और भारत भूषण अग्रवाल प्रमुख हैं । नये कवि ने युगीन संक्रान्ति, विरोधाभास, असंगतियों और विकृतियों को व्यंग्य द्वारा अभिव्यक्ति दी है । आधुनिक शहरी सभ्यता पर कहीं अज्ञेय ने 'साँप' कविता के माध्यम से व्यंग्य किया है तो कहीं प्रान्तीयता की धरा पर पक्षपात करने वालों पर भी मदन वात्स्यायन ने व्यंग्य किया है -

---

1. अज्ञेय, 'आत्मनेपद' पृष्ठ - 34-35.
2. अज्ञेय, 'बावरा अहेरी' पृष्ठ 62

'ओ मेरे अफसर
मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ?
क्या यह इतना बड़ा अपराध है
कि मैं भारतीय तो हूं,
पर तुम्हारे प्रान्त का नहीं ।'[1]

पाश्चात्य अस्तित्ववादी विचारधारा के कारण नयी कविता में क्षण को विशेष महत्व दिया गया है । अस्तित्ववादी काल प्रवाह की अखण्डता में विश्वास न कर जीवन के हर क्षण को जी भर भोगना चाहता है । इस दर्शन के अनुसार प्रत्येक क्षण की स्वतंत्र सत्ता है, इसलिए प्रत्येक क्षण का अपना महत्व है । नयी कविता क्षण की अनुभूतियों को विशेष महत्व देती है । इसलिए नहीं कि वह जीवन की सम्पूर्णता में विश्वास नहीं करती, वरन् एक-एक क्षण के बोध को उसकी अनुभूति को सत्य मान कर जीवन का पूर्ण उपभोग करना चाहती है । डॉ0 जगदीश गुप्त ने लिखा है कि - 'नया कवि क्षण की अनुभूति पर बल इसलिए देता है कि वह अपने को समसामयिक जीवन के प्रति प्रतिक्षण उत्तरदायी समझता है । उससे विरत होकर शाश्वत की गोद में विश्राम करने की कल्पना करना उसके स्वभाव के प्रतिकूल है । जीवन क्रम की स्वाभाविक अखण्डता उसे क्षण की अनुभूति में भी उन तत्वों की यथेष्ट उपलब्धि करा देती है, जो वास्तव में नित्य है ।'[2] इसीलिए नये कवियों की रचनाओं में क्षण बोध को बड़ी गहराई तक देखा जा सकता है । अज्ञेय, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, कीर्ति चौधरी आदि की कविताएँ इसी प्रवृति से प्रभावित हैं । भारती की 'कनुप्रिया राधा' क्षण के सत्य को स्पष्ट करती है ।

नया कवि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खड़ा होकर विश्व की व अपने देश की स्थिति का अवलोकन कर रहा है । वह कर्म व श्रम ही सैद्धान्तिक चर्चा नहीं करता वरन् उसे व्यावहारिक रूप में देखता है । नये कवियों में गिरिजा कुमार माथुर की 'पूरब की किरन, और सर्वेश्वर की 'काफी आउस में मेलोड्राम,' 'पीस पगोड़ा' आदि अन्तर्राष्ट्रीयता की गूंज से अनुप्रमाणित हैं ।

नयी कविता के विकास में विज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका है, अतः वैज्ञानिकता भी इसकी प्रवृत्ति बन गयी है । नयी कविता में वर्णित ईश्वर और धर्म के प्रति अनास्था व क्षणवाद का कारण विज्ञान ही है ।

---

1. अज्ञेय, 'तीसरा सप्तक' (स0) पृष्ठ - 162
2. देवीशंकर अवस्थी, विवेक के रंग (स0) पृष्ठ - 52

विज्ञान ने नये कवि को अनास्थावादी व तर्क प्रधान बना दिया है । एक ओर वैज्ञानिक सभ्यता के प्रसार ने उसकी परिवेश परिधि को विस्तार दिया तो दूसरी ओर उसे शंकालु भी बना दिया । विज्ञान का चरम लक्ष्य, प्रयोगों और नये मार्ग अन्वेषण की प्रवृति प्रायः सभी कवियों में मिलती है । अज्ञेय ने कल्पित अजरता के मोह को छोड़ने के साथ सच्चाई व वास्तविकता की जो बात कहीं है वह उस वैज्ञानिक बोध का ही परिचय देती है।

विज्ञान के प्रसार से युद्ध की आंशका भी बढ़ी है । डॉ0 नरेश मेहता, डा0 भारती, लक्ष्मीकान्त वर्मा और अज्ञेय की कविताएँ युद्ध से प्रभावित हैं । भारती का अंधायुग' युद्ध के दुष्परिणामों से उद्‌भूत व्यक्ति मानस की प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति है । नये कवियों का युद्ध वर्णन युद्ध के समर्थन में न होकर विभीषिका के प्रति ध्यान आकर्षित करने के लिए है । इसलिए शान्ति की खोज में इन कवियों की कविताएँ युद्ध का चित्रण करती हैं ।

नयी कविता में प्रेम, काम और नारी के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण दिखाई देता है । यहाँ प्रेम न तो सिर्फ काम का पर्याय है और न काम रहित । वरन् दोनों का सह अस्तित्व ही नये कवियों को मान्य है । नये कवि प्रेम में समर्पण के पक्षधर हैं । यद्यपि ये अहंवादी है, किन्तु प्रेम के क्षेत्र में अहं को परे रखने की बात कहते है -

'अहं से मेरे बड़ी हो तुम
क्योंकि मेरी शक्तियों की
हर पराजय, जीत की
अन्तिम कड़ी हो तुम ।'[1]

इन कवियों ने प्रेम व काम को अलग नहीं माना है । इनके काव्य में प्रेम का भोग परक व उदात्त दोनो ही दृष्टिकोण मिलते हैं किन्तु अधिकांश कविताओं में भोगपरक दृष्टिकोण ही प्रमुख रहा है । नयी कविता का यह मांसल प्रेम फ्रायड के यौनवाद के पर्याप्त निकट है । यहाँ शरीर का सुख आत्मा का सुख माना गया है । भारती के काव्य संग्रह 'ठण्डालोहा' व 'कनुप्रिया' की कुछ कविताएँ इसी मांसल प्रेम की परिचायक हैं किन्तु बौद्धिकता के प्रभाव से यहाँ भी कहीं कहीं विवेक के दर्शन होते है ।

नयी कविता का विरह वर्णन पूर्ववर्ती कवियों से कहीं आगे है । यहाँ पुरूष प्रेमियों की विरहानुभूति को अधिक अभिव्यक्ति मिली है । वास्तव में नयी कविता में स्त्री-पुरूष का संतुलित विरह परिलक्षित होता है। यहाँ विरहिणी स्त्रियाँ ही नहीं पुरूष भी विरही हैं ।

---

1. अज्ञेय, 'तीसरा सप्तक' (स.) पृष्ठ - 364

नयी कविता की नारी छायावादी नारी के समान न तो पूरी तरह आराधना की मूर्ति है न प्रगतिवादी काव्य की श्रमजीवी मजदूरनी । यहाँ नारी विदेशी व भारतीय संस्कृति के दोराहे पर खड़ी है । सभ्यता और संस्कृति से भरी नारी स्वयं अपना मार्ग निश्चित नहीं कर पा रही है और न ही वातावरण के झोंको से स्वयं को बचा पा रही है। उसमें विवेक जाग गया है और साथ ही जिन्दगी जीने की लालसा भी । 'आज दुर्बलता का नाम नारी नहीं है, वह प्रेमी पर शासन करना चाहती है, तन मन दोनो को तुष्ट करना चाहती है । समर्पित होती है, लुटती है, किन्तु लूटती भी है । 'वह दलित द्राक्षा के समान निचुड़ भले ही जाये किन्तु पुरूष को भी पूर्णतः निचोड़ने में विश्वास करती है ।'[1]

नयी कविता में नारी के आधुनिक चित्र पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं । पाश्चात्य संस्कृति के प्रवेश ने जहाँ उसे बाहरी वेशभूषा से प्रभावित किया वही उसके आंतरिक व्यक्तित्व को भी बदल दिया । आज उसमें सुखवादी, भोगवादी, बुद्धिवादी व अस्तित्ववादी दृष्टिकोण उभर आये हैं । 'आज वह प्रेमी के शासन में रहने की अपेक्षा उसे शासित करने में विश्वास करती है, वास्तव में उसका आदर्श 'सीता' नहीं 'क्लिओपेट्रा' है ।[2] नारी की इस स्थिति के कारण नयी कविता में एक नयी प्रवृति बन गयी है कि नारी को भोगने के पश्चात पुरूष के मन में उसके प्रति असंपृक्त भाव आ गया है । अज्ञेय की निम्न काव्य पंक्तियों में यही प्रवृति स्पष्ट है -

> 'फूल से प्यार करो,
> झरे तो झर जाने दो
> जीवन का रस लो
> देह मन आत्मा की रसना से
> जो मरे उसे, मर जाने दो ।'[3]

नयी कविता का बहुत बड़ा अंश प्रकृति चेतना से पूर्ण है । नया कवि प्रकृति के कठोर व कोमल दोनो रूपों को लेकर चला है । उसने मानवीय संवेदना के साथ प्रकृति को अनुभूत किया है किन्तु पारम्परिक चित्रण भी हुआ है । छायावादी काव्य के समान नयी कविता में भी प्रकृति का आलम्बन, उद्दीपन व

---

1. देशराज दिनेश, 'इतिहास पुरूष' पृष्ठ - 66
2. हरिचरण शर्मा, 'नयी कविता नये धरातल' पृष्ठ 69
3. अज्ञेय, 'बावरा अहेरी' पृष्ठ - 9

मानवीकरण रूप प्रस्तुत हुआ है । संयोग, वियोग दोनों ही स्थितियों में, कवि ने प्रकृति को उद्दीपन रूप में देखा है । किन्तु वियोग चित्रों की अधिकता है । ऐसे उद्दीपक चित्र अज्ञेय, भारती, जगदीश गुप्त, सर्वेश्वर, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ और भारत भूषण अग्रवाल की कविताओं में देखे जा सकते हैं ।

नये कवियों ने प्रेम की गहनता, विवेकशीलता, कहीं-कहीं शिल्प सजगता के कारण नये उपमानों का प्रयोग किया है । छायावादियों की भांति इन कवियों ने भी भोर, सन्ध्या, चांदनी, आदि के सुन्दर मानवीकरण प्रस्तुत किये हैं । किन्तु इनका मानवीकरण कहीं कहीं छायावाद से आगे बढ़ गया है । इनके मानवीकरण रूप के प्रकृति चित्रण में विवेक परिस्थितियाँ, स्वच्छंदता आदि के समाहित होने से कहीं कहीं छायावादी शालीनता खण्डित हो गयी है । इसका कारण है नये कवि का यथार्थोन्मुख होना । वह वर्तमान के प्रति विशेष सचेत है । वैज्ञानिक व औद्योगिक सभ्यता के विकास ने नये कवि की दृष्टि बाग, बगीचों से हटा दी है । वह मशीनी दुनिया से इतना प्रभावित है कि उसे प्रकृति चित्रण में भी आक्रोश व संघर्ष की प्रवृति स्पष्ट परिलक्षित होती है । अज्ञेय, भवानी प्रसाद मिश्र, धर्मवीर भारती, गिरिजा कुमार माथुर, मुक्तिबोध की कविताएँ सुन्दरता व संघर्ष की मिली जुली अनुभूति है ।

नयी कविता के समक्ष एक महत्वपूर्ण समस्या अपने बदलते हुए युगबोध के अनुरूप भाषा, शिल्प व काव्य रूप खोजने की रही है । कवियों को नये भावबोध के अनुरूप काव्य भाषा बिम्ब, प्रतीक और उपमान खोजने पड़े हैं । यद्यपि कवियों ने परम्परा का अनुकरण किया है तथापि मौलिकता ही अधिक है ।

काव्य रूप की दृष्टि से नयी कविता काफी समृद्ध है । इस दौर में कुछ कवियों ने पौराणिक मिथकों को लेकर जो समस्यात्मक काव्य लिखे उनमें 'भारती' की 'कनुप्रिया' , अंधायुग, दुष्यंत का 'एक कण्ठ विषपायी' देवराज का 'इला और अभिताभ' व कुंवर नारायण का 'आत्मजयी' प्रमुख हैं ।

नयी कविता के पूर्व उपमान विधान का रूप पारम्परिक था, किन्तु नये कवि ने उसे सर्वथा अछूते धरातल पर प्रस्तुत किया । इन उपमानों में युगजीवन के ताजे और नये संदर्भ लिये गये । नयी कविता का कथ्य व्यापक और यथार्थ से जुड़ा होने के कारण इसके उपमानों में भी काल्पनिकता की अपेक्षा यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है । इसलिए परम्परागत उपमानों को तोड़कर उन्हें मानने से इन्कार करते हुए नया कवि उपमानों का एक नया व मौलिक रूप प्रस्तुत करता है -

'चांदनी चन्दन सदृश हम क्यों लिखें ?
मुख हमें कमलों सरीखे क्यों दिखे ?
हम लिखेगें -
चांदनी उस रूपये सी है जिसमें
चमक है पर खनक गायब है ।
और मुख वह अजायब घर हैं जहाँ
सैकड़ो जिन्दा और मुर्दा भाव रहते हैं ।'[1]

नयी कविता का विधान मुक्त छन्द में हुआ है । निराला ने सर्वप्रथम छन्द के परम्परावादी बन्धनों को तोड़कर मुक्तछन्द में कविताएँ लिखीं । पहले तो नये कवियों ने लय व गति के आधार पर अतुकांत कविताएँ लिखी, फिर केवल लय पर ही ध्यान केन्द्रित कर लिया । नयी कविता में केवल लय को ही विशिष्ट माना गया है क्योंकि 'आवेग प्रधान होने के नाते कविता का लय मुक्त होना समीचीन है । लय युक्त होकर ही वह याद रखी जा सकती है । अकेले में या समवेत रूप में गायी जा सकती है और इस तरह मौके पर हमारे मन में धंस कर हमें प्रभावित कर सकती है ।'[2]

अधिकांश नयी कविता लय की विविधता लिए हुए है । नये कवि शब्द और अर्थ दोनो को लय मानते हैं -

'बरस रही है चांदनी
फूलों सी तुम पर
खोलो साँवला तन
लगा दूं चांदी का उबटन ।'[3]

नये कवि ने भाषा को छायावादी संस्कारो से मुक्त करने का प्रयास किया है । उसे साधारण स्तर से उठा कर काव्य भाषा के रूप में प्रस्तुत किया है । नये विशेषणों व क्रियापदों को अपना कर साधारण बोलचाल की भाषा का प्रयोग भी किया गया है । यहाँ भाषात्मक संरचना कथ्य मूलक संदर्भो के साथ सीधे

---

1. अजित कुमार, 'अकेले कण्ठ की पुकार' पृष्ठ - 37
2. अज्ञेय, 'तीसरा सप्तक' (स.) पृष्ठ - 73
3. विनोद चन्द्र पाण्डेय, 'वसन्त और पतझर' पृष्ठ - 10

परिवेश से जुड़ी हुई है । इसलिए भाव के कथ्य का संप्रेषण करने में पूर्णतया सक्षम है । 'नयी कविता के कवि - काव्यभाषा को नया कुछ देने के लिए सभी दिशाओं में गये है, बोली से लेकर शब्द कोष तक चक्कर लगाया है । अन्य भाषाओं का आश्रय लिया है । तो शब्दों का निर्माण भी किया है ।'[1]

नयी कविता के अधिकांश कवियों की भाषा अंग्रेजी से प्रभावित है । शब्दों का आंचलिक प्रयोग, प्रादेशिक मुहावरे आदि से भाषा में नवीन अर्थ संवहन की सामर्थ्य उत्पन्न हुई है । नये कवि ने शब्द चयन के प्रति कोई विशेष नीति नहीं अपनायी है । जब जैसी आवश्यकता हुई है, शब्दों का प्रयोग किया गया है । 'नयी कविता भावनाओं को बिना किसी आडम्बर के सीधे शुद्ध रूप मे व्यक्त करने पर आग्रह करती है ।'[2] आज भी नयी कविता की भाषा स्वयं अपनी आंतरिक रचना के सामर्थ्य को बढ़ाने में संलग्न है ।

यद्यपि नया कवि कथ्य व शिल्प के प्रति सजग रहा है । किन्तु पौराणिक प्रतीकों को उसने विशेष महत्व के साथ आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । आज के विघटित मूल्यों में समाज की स्थिति को समझते व अनुभूत करते हुए कवि ने पौराणिक प्रतीकों को आश्रय लेकर अपनी मितव्ययता की प्रवृति को भी स्पष्ट किया है । यहाँ प्रतीक भावों की गहनतम अभिव्यक्ति का माध्यम बन कर आये हैं । अज्ञेय, भारती, राजा दुबे, रमासिंह, कुंवरनारायण आदि के प्रतीक बड़े सटीक और सुन्दर हैं । अज्ञेय तो प्रतीक विधान में सिद्ध हस्त हैं ही ।

नया कवि अनुभूति व अभिव्यक्ति की ईमानदारी का कायल है । उसका भावबोध बड़ा गहन है । यही कारण है कि उसने समकालीन जीवन की जटिलताओं को अपने ढ़ंग से नये बिम्बों सहित प्रस्तुत किया है 'इसीलिए यहाँ बिम्ब छायावाद की काल्पनिक और हवाई सुन्दरता तथा कोमलता त्याग कर ज्यादा ठोस, वास्तविक और जटिल बन सके हैं ।'[3]

निष्कर्षतः नयी कविता ने अपने पूर्ववर्ती काव्य की अपेक्षा कथ्य का विस्तार किया है । यह हिन्दी काव्य की सुदीर्घ परम्परा का अखण्ड स्त्रोत है । 'नयी कविता की सृजनात्मक भूमिका में भारतेन्दु युग की राष्ट्रवादी पुनर्जागरण की कविता, द्विवेदी युग की सुधारवादी आदर्श कविता, छायावादी युग की सौन्दर्य मूलक प्रकृति चेतना की कविता और प्रयोगवादी कविता की समन्वित प्रवृतियाँ क्रियाशील रही हैं ।'[4]

---

1. सियाराम तिवारी, 'नयी कविता' पृष्ठ - 157
2. जगदीश गुप्त, 'नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ' पृष्ठ 189
3. गोविन्द द्विवेदी, 'नयी कविता में बिम्ब का वस्तुगत परिप्रेक्ष्य,' पृष्ठ 112
4. प्रभा खत्री, 'नयी कविता में आँचलिकता बोध', पृष्ठ - 37

नयी कविता के प्रवृत्ति मूलक विस्तार में पूर्ववर्ती काव्य प्रवृत्तियों की छवि सहज ही उभरती दिखाई देती है । किन्तु मौलिकता के साथ । युगबोध के कारण नयी कविता में कुछ ऐसी विशिष्ट प्रवृत्तियाँ समाहित हुई हैं जो उसे पूर्ववर्ती काव्य से किन्हीं मायनों में अलग कर देती है । आलोचक इन प्रवृत्तियों को पाश्चात्य प्रभाव भले ही कहें, किनतु यह प्रभाव कवि को इसी धरती एवं इसी परिवेश से मिला है । वे सारी परिस्थितियाँ भी यहीं की है जिन्होंने नये कवि के कथ्य व शिल्प को पूर्ववर्ती काव्य से भिन्न कर दिया है । यही कारण है कि वह कल्पना व नारेबाजी से अलग जीवन के वास्तविक यथार्थ को देखता है । नयी कविता ने जीवन को देखने की एक दूसरी दृष्टि खोज निकाली है । नये कवि ने जनजीवन को देखा तथा मध्यमवर्गीय जीवन को आधार बनाया है । अन्तर्भेदनी दृष्टि रखते हुए जीवन अन्तर की छवियों को रूपायित किया है । अतः नयी कविता जीवन की गोद में पल रही है । प्रचार व प्रोपेगण्डा से दूर है ।'[1] वस्तुतः नयी कविता किसी काव्यधारा की प्रतिक्रिया न होकर हिन्दी कविता का सहज विकास है । यह अपने समय के प्रभाव व परिस्थितियों को ग्रहण करके विकसित हुई है । इसकी पृष्ठभूमि में देश की सामाजिक, राजनैतिक, व सांस्कृतिक चेतना की अवस्थिति है ।

नयी कविता के विकास में सामाजिक भावभूमि का महत्वपूर्ण योगदान है । बौद्धिकता, कुण्ठा, यथार्थता, संत्रास, विद्रोह, व्यंग्य आदि प्रवृतियाँ इसी पृष्ठभूमि की देन हैं । इन कवियों ने विषयगत परिधि को विस्तार दिया है, परम्परा में मौलिकता का समावेश किया है, अछूते प्रसंगो को काव्य विषय बनाया है, जनमानस में नयी समझ लाने का प्रयास किया है, विषम परिस्थितियों पर चिन्तन किया है एवं भाषा, शिल्प व छन्द को नये आयाम देकर उसे अधिक संप्रेषणीय बनाया है ।

नयी कविता के साथ अनेक काव्य आन्दोलन उठे, जैसे ताजी कविता, अकविता आदि । लेकिन ये सब नयी कविता में ही समाहित हुए । इनसे नयी कविता की ताजगी पर कोई फर्क नहीं पड़ा । न वह पुरानी हुई । क्योकि 'हमारी अनुभूतियाँ नयी है, वास्तविकता यह है कि अकविता भी एक माने में नयी कविता का ही नया लेबिल लेकर आया हुआ ऐसा इंजेक्शन है, जिसका निर्माता भले ही बदल गया हो किन्तु उसका असर वही पहले जैसा है । इसके सारे सिस्टम्स भी वहीं हैं ।'[2]

****

1. हरिचरण शर्मा, 'नयी कविता नये धरातल' - पृष्ठ 40
2. हरिचरण शर्मा, 'नयी कविता नये धरातल' - पृष्ठ 40

अध्याय दो — व्यक्तित्व एवं कृतित्व

अ - व्यक्तित्व

आ - काव्य कृतियाँ

ठण्डालोहा

सात गीत वर्ष

अंधायुग

कनुप्रिया

अध्याय : 2

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

अ. व्यक्तित्व :

हिन्दी के प्रसिद्ध साप्ताहिक 'धर्मयुग' के पूर्व सम्पादक, महान चिन्तक, रचनाकार की स्वतंत्र सत्ता में विश्वास रखने वाले भावुक कवि डॉ0 धर्मवीर भारती से समस्त हिन्दी जगत भली भांति परिचित है । काव्य के अतिरिक्त साहित्य की अन्य विधाओं में भी पारंगत 'भारती' नवीन साहित्य विधा नाट्यकाव्य के सफल नाट्य कवि भी कहे जा सकते हैं । 'नयी कविता' 'नवलेखन' एवं मानवमूल्य सम्बन्धी विभिन्न आन्दोलनों का नेतृत्व करने वाले धर्मवीर ने 'भारतीय' उपनाम राष्ट्रीय आन्दोलनों के समय लिखना प्रारम्भ किया जो कवि की राष्ट्रीय भावना का द्योतक था ।' आगे चल कर य ही 'भारतीय' 'भारती' में रूपान्तरित हो गया।'[1]

डॉ0 धर्मवीर भारती के वंशवृक्ष के बारे में उन्हीं के द्वारा एक स्थान पर संक्षिप्त सा परिचय दिया गया है । "मेरे बाबा ने 'मलका बिकटूरिया' के जमाने में एक मकान बनवाया था, जिसमें सबसे ऊपर लिखवाया था 'ओम सत्यमेव जयते नानृतम' और उसके नीचे लिखवाया था दिल्लीश्वरो वा जगदश्वरो वा ।'[2] इस वाक्य से उनके पूर्वजों की राजभक्ति स्पष्ट होती है । भारती के पिता ने अपनी पुश्तैनी जमींदारी को त्याग कर सर्वप्रथम रूड़की से ओवरसियर की परीक्षा उत्तीर्ण की । इसके बाद कुछ दिन बर्मा में रहकर उन्होंने सरकारी नौकरी और ठेकेदारी की । वहाँ से लौटकर वह पहले मिर्जापुर और बाद में स्थायी रूप से इलाहाबाद में रहने लगे । इलाहाबाद के अतरसुइया मोहल्ले में 25 दिसम्बर 1926 को भारती का जन्म हुआ ।

भारती की माँ श्रीमती चंदा देवी आर्य समाजी थीं । उन्होंने अपने पुत्र पर आर्यसमाजी संस्कार डालने का प्रयत्न अवश्य किया होगा । इस सम्बन्ध में डॉ0 चन्द्रभान सोनवणे ने लिखा है कि - 'इस प्रकार का प्रयत्न जड़ अनुशासन बन कर रह गया होगा । संभवतः इसी कारण भारती का बालक मन 'लालना श्रियिनो

---

1. पुष्पा वास्कर, धर्मवीर भारती व्यक्ति एवं साहित्यकार' पृष्ठ - 17
2. धर्मवीर भारती, 'ठेले पर हिमालय', पृष्ठ - 141

दोष' समझने वाली आर्य समाजी माँ के प्रति लगाव का अनुभव नहीं कर सका । भारती के साहित्य में कहीं भी माँ का भाव भीना स्मरण नहीं दिखाई देता । संभवतः भारती की माँ की थोड़ी सी झलक उनकी 'यह मेरे लिए नहीं' शीर्षक कहानी में विद्यमान है ।'[1]

'भारती के बचपन का कुछ समय पिता के साथ आजमगढ़ व मऊनाथ में बीता । प्रारम्भिक शिक्षा इन्हें घर पर दी गयी एवं स्कूली शिक्षा के लिए वह डी.ए.वी. हाईस्कूल में भेजे गये । अभी वह आठवीं कक्षा में थे कि उनके पिता का देहान्त हो गया, जिससे घर का आर्थिक ढांचा चरमरा उठा । भारती के जीवन की यह बहुत विकट स्थिति थी, इससे यह बहुत निराश और परेशान हो उठे, किन्तु मामा अभयकृष्ण जौहरी का आश्रय, प्रेरणा एवं प्रोत्साहन इन्हें अध्ययन में लगाये रहा । मामा की छत्रछाया में ही सन् 1942 में कायस्थ पाठशाला, इन्टर कालेज से इंटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की ।

भारती की किशोरावस्था में ही द्वितीय महायुद्ध हुआ था, जिसने आगे चल कर इन्हें 'अंधायुग' लिखने की प्रेरणा दी । इसी काल में सन् 1942 का 'भारत छोड़ा आन्दोलन चला । इस आन्दोलन में सहभागी होने के कारण इन्हें अपना अध्ययन एक वर्ष के लिए स्थगित करना पड़ा था । सन् 1943 में इन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया और सन् 1945 में सर्वाधिक अंक प्राप्त कर स्नातक बने तथा चिंतामणि घोष पदक प्राप्त किया । आर्थिक विपन्नता के कारण 'भारती' को प्रारम्भ से ही स्वावलम्बी बनना पड़ा । बी0 ए0 की पढ़ाई के दौरान वह ट्यूशनें करते थे एवं एम0 ए0 में अध्ययन करते समय पदमकांत मालवीय द्वारा सम्पादित दैनिक पत्र 'अभ्युदय' में अंशकालीन पत्रकारिता को अपनाया, ताकि पढ़ाई का खर्च निकल सके । एम0ए0 में अध्ययन के दौरान ही इनका कहानी संकलन 'मुर्दो का गाँव' प्रकाशित हुआ । इस संग्रह की कहानियाँ का लेखन बंगाल के भीषण अकाल से प्रभावित था । भारती की मनोदशा इस संकलन की भूमिका में अभिव्यक्त हुई है - 'यदि हम भूख में अंगारे चबा जाने की शक्ति नहीं रखते तो हम इसी लायक हैं कि हमारी लाशें नाबदानों में सड़ें और उन पर घिनौनी मक्खियाँ भिनभिनाएँ ।'[1]

प्रयाग विश्वविद्यालय में भारती जी डा0 धीरेन्द्र वर्मा के सम्पर्क में आये व उनके निर्देशन में 'सिद्ध साहित्य' पर शोध कार्य आरम्भ किया । सन् 1948 में लीडर प्रेस से प्रकाशित इलाचन्द्र जोशी के पत्र 'संगम' के सह - सम्पादक के रूप में कार्य आरम्भ किया ।

---

1. चन्द्रभान सोनवणे, 'धर्मवीर भारती का साहित्य सृजन के विविध रंग, पृष्ठ - 3
2. धर्मवीर भारती, चाँद और टूटे हुए लोग', पृष्ठ - 262

'संगम' के सह-सम्पादन के साथ यह अपना शोध कार्य भी करते रहे और सन् 1950 में पी-एच0डी0 की उपाधि प्राप्त कर प्रयाग विश्वविद्यालय में प्राध्यापक नियुक्त हो गये ।

भारती सन् 1950 से 1960 तक प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग से सम्बद्ध रहे । इस बीच साहित्यिक आन्दोलनों एवं साहित्यिक पत्रकारिता से बराबर जुड़े रहे । 'आलोचना' 'निकष' 'नयी कविता' आदि के सम्पादन में भारती का महत्वपूर्ण योगदान रहा ।

सन् 1960 में 'भारती' बम्बई से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक धर्मयुग के सम्पादक बन कर बम्बई आ गये । तब से । मई 1988 तक धर्मयुग से सम्बद्ध रहे ।

भारती जी के सम्पादक जीवन की नीरसता व व्यस्तता ने उनकी सृजनशीलता को बहुत कम कर दिया । इस बीच कभी कभार धर्मयुग या इधर उधर की अन्य पत्रिकाओं में उनकी कुछ रचनाएँ पढ़ने को मिलीं। उपेन्द्रनाथ अश्क ने तो यहाँ तक कह डाला कि 'उनके अन्तर की आग एकदम बुझ गयी है और सुख सुविधा की मुलायम राख के नीचे बुझे हुए कोयले की तरह पड़े रहने में ही उन्हें सुख मिलने लगा ।'[1] जो भी हो भारती जी ने एक सम्पादक के उत्तरदायित्व का सजगता से निर्वाह किया । उनकी सृजन गति अवरूद्ध तो हुई, किन्तु समाप्त कभी नहीं हुई ।

भारती का पारिवारिक जीवन काफी संघर्षमय रहा। उनके परम मित्र नाटककार डॉ0 लक्ष्मीनारायण लाल ने एक बार ज्योतिषी परमानन्द शुक्ल से इस सम्बन्ध में पूछा तो शुक्ल जी ने भारती की जन्म पत्रिका देखकर बताया था कि 'भाई इसकी राशि है, कुम्भ, नक्षत्र है धनिष्ठा, सूर्य भाग्येश हो कर इसकी लग्न में बैठा हुआ है । इसे तो राजयोग है । इसे मान, प्रतिष्ठा, धनपद की क्या कमी । सूर्य अग्नि ग्रह है । अतः इसमें एक ओर जहाँ परम उत्साह सक्रियता, नेतृत्व की भावना, सौभाग्य, यश उन्नति है, वहाँ यह सदैव शरीर से रोगी रहेगा । इसका शुक्र मकर का है । मित्रक्षेत्री है । चन्द्रमा से दूसरा, बारहवाँ योग कर रहा है । शुक्र है प्रेम का देवता । चन्द्रमा है काम का देवता । अतः प्रेम और काम में संघर्ष, अशान्ति, बौखलाहट ।'[2] ज्योतिषी की बात पर विश्वास न भी किया जाये तो भी यह सच है कि भारती के जीवन में प्रेम और काम का संघर्ष बहुत तीव्र रहा है जो उनकी रचनाओं से स्पष्ट होता है ।

---

1. उपेन्द्र नाथ, 'अश्क' - 'अन्वेषण की सहयात्रा', पृष्ठ - 16
2. कमलेश्वर, 'मेरा हम दम मेरा दोस्त', (सं.) पृष्ठ - 52.

भारती के साहित्य के आधार पर[1] यह अनुमान लगाया जा सकता है कि युवावस्था में उनका किसी किशोरी से प्रेम हुआ था, किन्तु वह विवाह में परिणत न हो सका । डा0 चन्द्रभानु सोनवणे के शब्दों में 'सम्भावना यही है कि यह पहला रोमांस या प्यार प्रयाग विश्वविद्यालय के अहाते में किसी अबंवा की छाया में पनपा होगा । शायद इसी कारण उनके प्रेम काव्य में अबंवा की डोर सघन रूप से छायी हुई है ।'[2] यह तो निश्चित है कि भारती की युवावस्था में ऐसा प्रेम घटित अवश्य हुआ है किन्तु इसके आधार पर कोई भी क्लिष्ट कल्पना करना कवि के साथ अन्याय होगा ।

जो भी हो भारती का यह प्रेम सामाजिक वर्जनाओं के कारण पल्लवित नहीं हो सका ।

---

1. उक्त अनुमान के कुछ सूत्र निम्न है :-

अ) वह (भारती) अक्सर किसी निर्जन गुलाबी द्वीप शिलाओं से बंधी किसी बंदिनी उदासिनी जल परी की कल्पना किया करता था । जिसे वह तलवारों से, जंजीरे काट कर आजाद कर देगा, फिर फैली-फैली मखमली बालू पर दोनो रंगबिरंगी सीपियों और मूंगे मोतियों से खेलेगें, जिन्दगी भर साथ-साथ जिन्दगी भर ।' दूसरा सप्तक पृष्ठ 177

ख) और रोमांस ! जब उम्र थी भाई जान, तब आज का सा खुला वातावरण और सुविधाएँ न थीं । आज जब वातावरण अनुकूल है, तब उम्र न रही । फिर तब, जब उम्र थी तब जितना हो सकता था, उतना करने की ईमानदारी से कोशिश तो की थी । लेकिन उन दिनों नारी स्वातंत्र्य आन्दोलन जैसे अच्छे अच्छे आन्दोलन कहाँ थे । तब तो ज्यादा से ज्यादा यही कह सकते थे - 'सुनो, इतनी अजीब किस्मत ले के पैदा हुए थे क्यों हम तुम' कादम्बिनी जून 1973, पृष्ठ - 71

ग) देखिये ललित निबन्ध 'शुक्रतारे वाली एक शाम' 'पश्यंती' में संकलित - पृष्ठ - 55, द्वितीय संस्करण फरवरी 1972, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली - 6

2. चन्द्रभानु सोनवणे, - 'धर्मवीर भारती का साहित्य : सृजन के विविध रंग', पृष्ठ - 8

आगे चलकर कांता कोहली नामक पंजाबी किशोरी से आपका विवाह हुआ । कुछ दिनों तक दाम्पत्य जीवन सफलतापूर्वक चला । इसी मध्य कांता भारती ने एक बच्ची को जन्म दिया । धीरे-धीरे दाम्पत्य जीवन में मनमुटाव के कारण दरारें पड़ने लगीं। भारती के प्रणय जीवन में एक अन्य नारी का प्रवेश हुआ - पुष्पा शर्मा का । धर्मयुग के सम्पादक बन कर बम्बई आने पर पति पत्नी के सम्बन्ध अत्यधिक तनाव पूर्ण बन गये और अंततः सम्बन्ध विच्छेद हो गया । भारती का वर्तमान वैवाहिक जीवन पुष्पा भारती के साथ सुखमय है । कांता जी की लड़की भी भारती के ही पास है । कांता भारती का भी दूसरा विवाह हो गया और वे कांता पंत बन चुकी हैं।"[1]

भारती ने अथक प्रयासों व लगन से अध्ययन किया, संकट में दिन गुजारे, आत्म निर्भर बने और आज हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों में गिने जाते हैं । इन्हें अनेक बार उपाधियों व पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। 'धर्मयुग' के सम्पादक बन जाने पर विदेश यात्राएँ भी कीं । सन् 1961 में वह कामनवेल्थ रिलेशंस कमेटी के निमंत्रण पर सर्वप्रथम इंग्लैण्ड और यूरोप की यात्रा पर गये । सन् 1962 में पश्चिमी जर्मनी की सरकार के आमंत्रण पर जर्मनी गये । सन् 1966 में भारतीय दूतावास के अतिथि बन कर इंडोनेशिया और थाईलैण्ड की यात्राएँ कर आये । सन् 1971 में मुक्तिवाहिनी के सहयोग से बंगला देश की गुप्त यात्रा की । उसी वर्ष दिसम्बर में बांगला देश की मुक्ति को लेकर प्रारम्भ भारत पाकिस्तान युद्ध में भारतीय स्थल सेना के साथ, युद्ध के वास्तविक मोर्चे के रामांचक अनुभव भी उन्होंने प्राप्त किए । बांगला देश के अनुभव 'मुक्त क्षेत्रेः युद्ध क्षेत्रे' नामक पुस्तक में संकलित है । सन् 1974 में इन्होंने मारीशस की यात्रा की । सन् 1978 में जनता सरकार द्वारा उन्हें कम्यूनिस्ट चीन जाने का निमंत्रण मिला । भारती जी ने वहाँ से लौट कर अपना रिपोर्ताज 'धर्मयुग' में प्रकाशित करवाया ।[2] जिसमें वहाँ की साम्यवादी व्यवस्था की उपलब्धियाँ एवं अभावों का निष्पक्ष विवेचन है । सन् 1967 में उन्हें संगीत नाटक अकादमी का सदस्य मनोनीत किया गया । सन् 1972 में भारत सरकार ने उन्हें पद्म श्री के अलंकरण से विभूषित किया । डा0 भारती को 1989 में उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा एक लाख रूपये का पुरस्कार, 1990 में डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद शिखर सम्मान एवं 1991 में साधना सम्मान प्रदान किया गया ।

किसी कलाकार के व्यक्तित्व पर विचार करते हुए उसकी कायिक सुन्दरता को आधार मानना निरर्थक है । आकृति व रूप रंग का वर्णन तो एक दाकियानूसी तरीका है । कलाकार का वास्तविक व्यक्तित्व उसके कृतित्व से स्पष्ट होता है । भारती के साहित्य को पढ़कर लगता है कि, वे मन से कोमल, बुद्धि से चिन्तक व उजले भविष्य के स्वप्न दृष्टा कलाकार हैं । 'उनके व्यक्तित्व निर्माण में जहाँ एक ओर उनकी माता के आर्य समाजी संस्कारों एवं डा0 धीरेन्द्र वर्मा के निर्भीक चिंतन का योगदान है, वहीं दूसरी ओर इलाहाबाद

---

1. पुष्पा वास्कर - 'धर्मवीर भारती . व्यक्ति और साहित्यकार', पृष्ठ - 23
2. धर्मवीर भारती, 'धर्मयुग' जुलाई 78 अंक 29

के अतरसुइया मुहल्ले के मध्य एवं निम्न मध्यवर्गीय जीवन की पीड़ाओं ने भी यथेष्ट पूंजी उन्हें दी है ।'[1] उनका व्यक्तित्व कुछ विरोधी विचारों की मिलीजुली अनुभूति देता है । एक ओर तो वे सामाजिक वर्जनाओं को मानने वाले, रूढ़ियों की क्रूर व्यथा सहकर भी मौन रहकर कराहने वाले कलाकार हैं, जो कहते हैं -'हाड़ - हाड़ चटख जाये मगर दर्द न हो'[2] तो दूसरी ओर अपनी धुन के पक्के, सृजन के प्रति आस्थावान, कर्मठ व्यक्ति हैं; इसलिए वह सृजन की थकन में नहीं, सृजन में विश्वास करते हैं -

'अभी तो पड़ी है धरा अधबनी
अधूरी धरा पर नहीं है कहीं
अभी स्वर्ग की नींव का भीपता
सृजन की थकन भूल जा देवता ।'[3]

'भारती' का कवि मन से बड़ा सबल और सक्षम है । यद्यपि कहीं-कहीं वह सामाजिक वर्जनाओं के समक्ष झुक जाता है, किन्तु जहाँ वह स्वयं प्रेरणा है वहाँ इतना कमजोर भी नहीं -

'आदमी इतना नहीं कमजोर
पलक के जल और माथे के पसीने से
सींचता आया सदा जो स्वर्ग की भी नींव ।'[4]

भारती के व्यक्तित्व पर इनकी माँ व पड़ोस की जीजी का विशेष प्रभाव पड़ा है । माँ आर्य समाजी थीं । भारती का भावुक मन आर्यसमाज के वैचारिक कठोर अनुशासन मात्र से तृप्ति न पा सका, इसलिए मेलों-ठेलों का आनन्द उठाने के लिए उन्हे पड़ोस की जीजी का आश्रय लेना पड़ा । भारती ने स्वयं अपनी जीजी के विषय में लिखा है -'उनके ठाकुर के लिए स्कूल के अहाते से कनेर और मधुमालती के फूल लाने से लेकर दोपहर को चिल्ला-चिल्ला कर राधेश्याम जी की रामायण गाना मेरा रोज का कार्यक्रम था । फलस्वरूप हरछठ पर छोटी-छोटी कुल्हियों में भुने चने, मटर भरने के, जन्माष्टमी पर पंजीरी, पंचामृत बनाने में और कार्तिक के मेले से साल भर की खरीद फरोख्त करने में मैं उनका सलाहकार और छोटा सिपाही था ।'[5]

---

1. पुष्पा वास्कर, 'धर्मवीर भारती - व्यक्ति और साहित्यकार' पृष्ठ 24
2. अज्ञेय, 'दूसरा सप्तक (सं0) पृष्ठ 194
3. धर्मवीर भारती, ठंडालोहा पृष्ठ - 181
4. अज्ञेय, 'दूसरा सप्तक' (सं0) पृष्ठ- 202
5. धर्मवीर भारती, 'पश्यन्ती' पृष्ठ - 4

स्पष्ट है कि आर्य समाज का प्रभाव बुद्धि पर था, हृदय पर नहीं । भावनाएँ तो सनातन धर्म की ही थीं, यही कारण है कि जिस भागवत की निन्दा आर्य समाजी करते थे उसी भागवत के प्रभाव स्वरूप आगे चल कर 'भारती' ने अपनी प्रेयसी को जीवन की भागवत कहा ।'[1] इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस भागवत के प्रति उनका व्यवहार मर्यादा से नियंत्रित था, जिसे आर्य समाज का परोक्ष प्रभाव माना जा सकता है ।'[2]

एक ओर जहाँ माँ के आर्यसमाजी संस्कारों ने सनातन धर्म के खोखलेपन को समझाया, वहीं जीजी के प्रभाव ने इन्हें पौराणिक प्रसंगो की ओर आकृष्ट किया । दोनो के प्रभाव के फलस्वरूप भारती अंधभक्त के स्थान पर विवेकशील बने । 'इन्हीं संस्कारों का परिणाम था कि भारती जी ने कृष्ण चरित्र को एक अंधश्रृद्ध आस्तिक की भाँति साधुओं का परित्राण और खलों का निर्दलन करने वाले ईश्वरावतार के रूप में स्वीकार नहीं किया, बल्कि अपने समय को प्रभावित करने वाले एक महान राजनीतिक, और प्रणय के क्षेत्र में की मानव की स्वाभाविक दुर्बलताओं से युक्त चरित्र के रूप में स्वीकार्य समझा ।'[3]

भारती के आत्मकथ्यों से भी उनके व्यक्तित्व को समझा जा सकता है। उन्हें अध्ययन, पर्यटन से बहुत प्यार है । कवि को मुक्त रूप से हँसना व ताजे फूल और देश विदेश के लोकगीत बहुत पसंद हैं । वह लिखते हैं - 'दो चीजों की बेहद प्यास है, एक तो नयी-नयी किताबों की और दूसरी अज्ञात दिशाओं को जाती हुई लम्बी, निर्जन, छायादार सड़कों की । सुविधा मिले तो जिन्दगी भर धरती की परिक्रमा देता जाऊँ । मुक्त हँसी, ताजे फूल और देश विदेश के लोकगीत बहुत पसंद हैं ।'[4] शायद इसीलिए भारती की कई कविताओं में ताजे फूलों का ज़िक्र है व लोकगीतों की धुन भी ।

भारती ने अपनी पर्यटक प्रवृति के बारे में स्वयं कंई वक्तव्य दिये हैं। कभी हिमालय की ऊंचाई पर पहुँच कर वह अनुभव करते हैं कि, 'हिमालय की शीतलता माथे को छू रही है और सारे संघर्ष, सारे अंतर्द्वन्द्व, सारे ताप जैसे नष्ट हो रहे हैं । क्यों पुराने साधकों ने दैहिक, दैविक और भौतिक कष्टकों को ताप कहा था और उसे शमित करने के लिए वे क्यों हिमालय जाते थे, यह पहली बार मेरी समझ में आ रहा था ।'[5] अपनी इसी प्रवृति की ओर उन्होंने फिर संकेत किया है, - 'पता नहीं किन हरियाली घाटियों के वासी हमारे प्राण इन परिचित निमर्म परिस्थितियों की सीमा में बंधे परदेस में भटक से रहे हैं और सुदूर के प्यासे हैं, वह सुदूर हमें बार-बार बुलाता है । हम पूछते हैं, जुहो ? (जाऊँ) और हमारी विवशताएँ, हमारे बंधन, हमारी सीमाएँ कर्कश स्वर में कहती है - 'भोलजाला' (कल सुबह जाना) और हम चुप हो जाते हैं । पर वह प्यास तो चुप नहीं

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठेले पर हिमालय', पृष्ठ - 193
2. चन्द्रभानु सोनवणे, 'धर्मवीर भारती का साहित्य : सृजन के विविध रंग, पृष्ठ - 4
3. सुलभा बाजीराव पाटील, 'कनुप्रिया एक मूल्यांकन' पृ0-60 4. अज्ञेय, 'दूसरा सप्तक' (स0) पृ0-163
5. धर्मवीर भारती, 'ठेले पर हिमालय', पृष्ठ-4

होती, वह तो रटती जाती है - जुहो ! जुहो ! जुहो!'[1]

अध्ययन का शौक भारती को पर्यटन से भी ज्यादा है । इस शौक का कारण उनकी जिज्ञासु प्रवृति है । वह लिखते हैं -'जानने की प्रक्रिया में जीने और जीने की प्रक्रिया में जानने वाला मिजाज जिन लोगों का है, उनमें मैं अपने को पाता हूँ ।'[2] जानने व जीने के इस परस्पर सम्बन्धों के कारण उनके विचार भावुक व भावनाएँ वैचारिक हो गयी हैं । वह आर्थिक दृष्टि से मार्क्स को जितना महत्व देते हैं उतना आंतरिक विकास की दृष्टि से राम, कृष्ण व ईसा को ।

फूल ओर खुशबू उनकी पसंद है ।' जिन्दगी को फूलों से माप कर फेंक देने में कितना सुख है । अगर मेरा वश चले तो मैं एक नया कैलेंडर जारी करूँ, जिसमें दिन, सप्ताह, मास, वर्ष में गिनती न होकर फूलों को बोने, उगने, फूलंने और झरने से महीनों और बरसों की माप की जाया करें ।'[3] उनका मत है कि बीमारी में जड़ी बूटियों से अधिक फूल ही फायदा पहुंचाते हैं । शायद इसीलिए उन्होंने लिखा है -'एक फूल तो मुझे मालूम है जो पास में रहे तो कोई बीमारी आसपास तक नहीं फटक सकती । जानती हो कौन सा फूल ..... ? लालकनरे ।'[4] बेले के फूल भारती की कमजोरी हैं । इनका ज़िक्र उनकी कई कविताओं में है । कहीं-कहीं फूलों के प्रति वह कुछ ज्यादा ही संवेदनशील हो गये हैं, -'सुनो, इस छोटे से फूल बसे घर में मुझे कभी-कभी बड़े अजीब अनुभव हुए हैं । उनमें से एक फूलों की सुगंध के बारे में है । मुझे अक्सर ये लगा कि ये फूल निरन्तर यकसाँ नहीं महकते, रह - रह कर सुगन्ध की लहरें फेंकते हैं । एक जगह खड़े हो जाओं । तेज खुशबू आयेगी फिर मन्द पड़ जायेगी, फिर तेज हो जायेगी । जैसे समुद्र के किनारे खड़े हो न .... एक उत्ताल लहर आयेगी, दूर बालू पर छहरती हुई आयेगी, आपके पाँव भिंगो कर लौट जायेगी; थोड़ी देर बाद फिर आयेगी ।'[5]

भारती को अपनी जन्मभूमि इलाहाबाद बहुत प्रिय है । 'गुनाहों का देवता' में वह लिखते हैं, -'लगता है प्रयाग का नगर देवता स्वर्ग-कुंजो से निर्वासित कोई मनमौजी कलाकार है, जिसके सृजन में हर रंग के डोरे है ।[6]बंगला देश सम्बन्धी रिपोतार्ज में भी वह इलाहाबाद को नहीं भूले हैं ।[7] लेकिन अब उन्हें लगता

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठेले पर हिमालय' पृष्ठ - 18
2. धर्मवीर भारती, 'पश्यन्ती' पृष्ठ - 5
3. धर्मवीर भारती, 'ठेले पर हिमालय' पृष्ठ - 32
4. धर्मवीर भारती, 'ठेले पर हिमालय', पृष्ठ - 42
5. धर्मवीर भारती, 'ठेले पर हिमालय', पृष्ठ - 39
6. धर्मवीर भारती,'गुनाहों का देवता', पृष्ठ - 9
7. धर्मवीर भारती, 'युद्ध यात्रा'

है कि वह इलाहाबाद अब पहले जैसा नहीं रहा -'इक्कीस बरस पहले गंगाजल, दोस्तियों, छायादार लम्बी सड़कों कविताओं, धूप धुले फूलों, बहस मुबाहसों, साइकिलों पर चक्कर लगाते छात्र कवियों और बेलौस गपबाजियों और महकती फिज़ाओं का एक शहर हुआ करता था । 'था' इसलिए लिख रहा हूं कि शहर अब भी है पर वह नहीं है जो हुआ करता था । 'निष्कर्ष' और 'नयी कविता' ने धूम मचा रखी थी । पर उस परिमल मंडली के अलावा एक नया लेखक वर्ग क्षितिज पर उग रहा था - अजित, ओंकार, मार्कण्डेय, जितेन्द्र, कमलेश्वर, दुष्यन्त । तब तक यह नहीं हुआ था कि सैद्धान्तिक मतभेदों के कारण किसी का कृतित्व नकारा जाये या व्यक्तिगत कीचड़ उछाल में मुब्तिला हुआ जाये । लोग अपनी श्रेष्ठता, उत्कृष्ट रचनाओं के आंकाक्षी थे । और सबसे प्यारी बात यह थी कि सारे जोरदार बहस - मुबाहसो के बीच एक आत्मीयता भरे परिहास की, निर्दोष प्यारी-प्यारी शरारतों की बारीक अंतर्धारा जिन्दगी और साहित्य में एक ताजगी बनाये रखती थी । और बिलकुल धर्मयुद्ध की भावना से दोनों पक्षों के शरारतबाज एक दूसरे को शरारत करने के बाद अपनी उपलब्धियाँ बताते थे और विपक्षी मित्र से शाबासी हाँसिल करते थे ।'[1]

भारती बेहद संवेदनशील हैं । अतः कविता में बनावट नहीं असलियत को स्वीकार करते हुए लिखते है -'सबसे प्रिय कविताएँ हैं जो गटर में पड़े हुए शराबियों, हथोड़ा चलाते लोहारों और धूल के खेलते हुए बच्चों की भोली आँखों में झलकती, है लेकिन जिन्हें न अभी किसी ने लिखा न किसी ने छापा ।'[2] लेकिन भारती का कवि इस कथन का स्वयं निर्वाह नहीं कर सका है ।

भारती अंतर्मुखी वृत्ति के रोमांटिक प्रवृति के व्यक्ति हैं, इसलिए उनका काव्य भी इस वृत्ति से अनुप्राणित है । तीन-तीन प्रणय प्रसंगो के दुखदायी अनुभवों एवं, प्रेम और काम के संघर्ष ने उनके व्यक्तित्व को कुण्ठित भी किया है । उनके साहित्य के अध्ययन से ये पर्ते स्वतः हटती चली जाती हैं । क्योंकि भारती का जीवन निम्न मध्यम वर्ग की परिधि से आरम्भ हुआ और लगभग पैंतीस वर्षों तक उसी में घूमता रहा । इसलिए उनके व्यक्तित्व में कुछ प्रवृत्तियों का उतार चढ़ाव भी देखा जा सकता है । 'ठंडालोहा' एवं उसके बाद 'सात गीत-वर्ष' में यह स्पष्ट हो जाता है कि भारती का कवि सदैव एक सी परिस्थितियों, मनः स्थितियों व सिद्धान्तों को लेकर नहीं चल सका है । इनका व्यक्तित्व अपने परिवेश के साथ किये गये संघर्षो और समझौतों से बनता और विकसित होता रहा और व्यक्तित्व के विकास के साथ साथ साहित्य में भी परिष्कृति और निखार आता गया

---

1. धर्मवीर भारती, 'सारिका' अंक मई 1976 पृष्ठ 32
2. अज्ञेय, 'दूसरा सप्तक' (स0) पृष्ठ - 163

भारती ने लगभग तीन दशकों तक 'धर्मयुग' जैसे साप्ताहिक एवं व्यावसायिक पत्र का सम्पादन करते हुए सम्पादन के क्षेत्र में नये आयाम प्रस्तुत किये । इनकी इस उपलब्धि को ध्यान में रखते हुए सुलभा बाजीराव पाटील ने लिखा है कि -'यदि आगामी दशकों में भी गद्य लेखन की साधना करते रहेगें तो कोई आश्चर्य नहीं होगा कि इनका कवि रूप बहुत पीछे छूट जायेगा । आज भी ये गद्य लेखक के रूप मे कम विख्यात नहीं है ।'[1] यद्यपि भारती का गद्यकार भी जागृत है, बहुत उन्नत है लेकिन उनका मूल रूप तो कवि का है । वह कवि पहले हैं गद्यकार बाद में । इसलिए उनका कवि व्यक्तित्व पीछे नहीं छूट सकता । भारती स्वयं कहते है - 'कौन कहता है कि कविता मर गयी ।'[2] कविता की ही तरह उनका कवि व्यक्तित्व भी है जो पीछे नहीं छूटा । हाँ, परिस्थितियों के कारण कुछ थक अवश्य गया है । यों भारती को साहित्य के हर रूप में दिलचस्पी है और हर तरह की चीजें वह लिखते हैं । लेकिन असल में भारती का मन कविता में ही रमता है, क्योकि कविता के माध्यम से ही 'भारती आज के बेहद पिसती हुई, संघर्षपूर्ण, कटु और और कीचड़ में बिलबिलाती हुई जिन्दगी के भी सुन्दरतम अर्थ खोज पाने में समर्थ रहा है । कविता ने उसे अत्याधिक पीड़ा के क्षणों नें दृढ़ता दी है । कविता भारती के लिए शान्ति की छाया और विश्वास की आवाज रही है ।'[3]

आ काव्य कृतियाँ :

1. ठंडालोहा :

डॉ0 'भारती' का प्रथम काव्य संकलन 'ठंडालोहा' है । यह सन् 1952 का प्रकाशन है । इसमें 1946 से 1952 तक की 39 कविताएँ संग्रहीत हैं । इसके पूर्व भारती का कवि इतस्ततः पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी काव्य जगत में पदार्पण कर चुका था ।

संकलन का नामकरण 'ठण्डालोहा' प्रथम कविता के नाम पर किया गया है । इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ भावुकता व रूमानियत से आक्रान्त हैं । इन रचनाओं पर 'भारती के उपन्यास 'गुनाहों का देवता' का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है । स्वयं कवि ने इस ओर संकेत किया है -'यह समय अधिक मानसिक उथल पुथल का रहा अतः इन कविताओं में स्वर, भावभूगि, शिल्प और टोन की विविधता मिलेगी ।'[4] यही कारण है कि संकलन की कुछ कविताएँ आधुनिक युगबोध से परिपूर्ण हैं तो कुछ किशोरावस्था के प्रणय, आकुल निराशा एवं पावन आत्म समर्पण की बात कहती हैं ।

---

1. सुलभा बाजीराव पाटील, 'कनुप्रिया: एक मूल्यांकन, - पृष्ठ 5-6
2. अज्ञेय, 'दूसरा सप्तक' (स0) पृष्ठ - 186
3. अज्ञेय, 'दूसरा सप्तक' (स0) पृष्ठ 165
4. धर्मवीर भारती, 'ठण्डालोहा', (भूमिका)

'जब 'भारती' की काव्य चेतना ने पंख पसारे तब छायावाद का बोलबाला था । उसे लगा कि कल्पना की शहजादी इन अपार्थिव कल्पनाओं, टेढ़े मेढ़े शब्द जालों, अस्पष्ट रूपकों और उलझे हुए जीवन दर्शन की शिलाओं से बंधी उदास जलपरी की तरह कैद है और 'भारती को चाहिए कि वह उसे उन्मुक्त कर सर्वथा मानवीय धरातल पर उतार लाये, ताकि वह फैली-फैली चाँदी की बालू पर आदम की सन्तानों के साथ बेहिचक आँखमिचौनी खेल सके, उनके सीधे-सादे सुख दुख, वासनाओं, कामनाओं को समझ सके, उन्हीं की बोली में बोल सके । इसलिए भारती ने सबसे पहले लिखे सरलतम भाषा में रंगबिरंगी चित्रात्मकता से समन्वित साहसपूर्ण उन्मुक्त रूपोपासना और उद्दाम यौवन के सर्वथा माँसल गीत जो न तो मन की प्यास को झुंठलाये और न उसके प्रति कुण्ठा प्रकट करें ।'[1] और ऐसे गीतों की इस संकलन में कमी नहीं है । इन गीतों में उद्दाम वासना, मांसल प्रेम का सजीव चित्रण है । कवि की प्रेम भावना दो छोरों का स्पर्श करती है । एक ओर कवि 'इन फीरोजी होठों पर बरबाद मेरी जिन्दगी' का गीत गाता है तो दूसरी ओर 'अर्चना की धूप सी तुम गोद में लहरा गयीं' कह कर प्रिया के पावन रूप का भी चित्रण करता है । एक ओर वह मिलन के मादक क्षणों का अनुभव करता है तो दूसरी ओर गहन उदासी में डूब जाता है - प्रणयानुभूति के क्षण की कविताएँ भारती के व्यक्तित्व को पूर्णतः सरूपायित करती है जिनमें 'एक जीवन भोक्ता की जिजीविषा है, एक भावाकुल मन का निर्द्वन्द्व प्रणय है, एक सौन्दर्य खोजी की रूपतृषा है और मिलन विरह समर्पण, नैराश्य जैसी विविध भावभूमियों का संक्रमण करते हुए व्यक्ति' की जीवन सत्य को उपलब्ध करने की ललक है ।'[2] वास्तव में भारती ने प्रेम व काम में जीवन के अर्थ खोजे हैं ।

यद्यपि भारती ने प्रयत्न किया कि प्रेम के बीच काम न आने पाये, किन्तु अन्ततः कवि अपार्थिवता से परे कायिक प्रेम की सुकुमारता, मांसलता वासना को प्रेम का लक्ष्य मानने के लिए बाध्य हो गया । पहले जो चरण 'महज आराधना के वास्ते' थे वे 'मदन के बान' बन गये और वासना की अनिवार्यता बशर्ते वह प्रिया के रूप से आबाद' हो का समर्थन करने लगे । इसी अनिवार्य वासना की स्थिति को कवि ने 'गुनाह के गीत' में अभिव्यक्त किया है, क्योंकि जीवन की सार्थकता वासना के अभाव में पूर्ण नहीं हो सकती और वासना हीन पवित्र प्रेम का यह प्रयत्न मानसिक कुण्ठा का कारण बन सकता है । इसीलिए छायावादी कवियों की भांति सहम कर नहीं - पूरे आत्मविश्वास के साथ कवि ने कहा है -

---

1. अज्ञेय, दूसरा सप्तक (सं0), पृष्ठ - 165.
2. बृजमोहन शर्मा, 'धर्मवीर भारती : कनुप्रिया तथा अन्य कृतियाँ', पृष्ठ - 136

'किसी की गोद में सर धर
घटा घनघोर बिखरा कर
अगर विश्वास सो जाये
न हो यह वासना तो
जिन्दगी की माप कैसे हो ?
किसी के रूप का सम्मान
मुझको पाप कैसे हो ?'[1]

प्रेम के पवित्र एवं वासनात्मक चित्रण के साथ कवि ने उदासी व निराशा के भोगे क्षणों को भी चित्रित किया है । जिसका आभास 'ठण्डालोहा' 'डोले का गीत' कविताओं से होता है । यहाँ समाज की रूढ़ियों से त्रस्त कवि के भोले निश्छल विश्वासों को परम्पराओं ने कुचल डाला है । उसके सपनो, गीतों और आत्मा पर 'ठण्डेलोहे की चादर छा गयी है । भारती का प्रेमी परिस्थितियों के सम्मुख विवश, किंकर्तव्य विमूढ़ सा खड़ा अपने आप को ठण्डे लोहे की तरह बेजान और कठोर पाता है -

'ठण्डा लोहा । ठण्डा लोहा । ठण्डा लोहा ।
मेरी दुखती हुई रगों पर ठण्डा लोहा ।
मेरी स्वप्न भरी पलकों पर
मेरे गीत भरे होंठो पर
मेरी दर्द भरी आत्मा पर
स्वप्न नहीं अब,
गीत नहीं अब
एक पत ठण्डे लोहे की
मै जम कर लोहा बन जाँऊ
हार मान लूं ......
यही शर्त ठण्डे लोहे की ।'[2]

प्रेम व मर्यादा का मानव जीवन से सदा से संघर्ष चला आ रहा है । समाज की रूढ़ियों के कारण प्रेमी बिछोह की स्थिति का चित्र 'डोले का गीत में स्पष्ट होता है ऐसी लगता है कि कवि ने स्थिति को स्वंय भोगा है इसीलिए अनुभूति में ईमानदारी है -

---

1. धर्मवीर भारती 'ठण्डालोहा', पृष्ठ-22 2. धर्मवीर भारती, 'ठण्डालोहा', पृष्ठ- ।

'भोर फूटे, भाभियाँ जब गोद-भर आशीष दे दें,
ले विदा अमराइयों से,
चल पड़े डोला हुमच कर
है कसम तुमको,
तुम्हारे कोपलों से नैन से आँसू न आये
राह में पाकड़ तले,
सुनसान पाकर
प्रीत ही सब कुछ नहीं है,
लोक की मरजाद है सबसे बड़ी
बोलना रूंधते गले से -
'ले चलो । जल्दी चलो । पी के नगर ।'[1]

किन्तु भारती का प्रेमी अपने प्रेम स्वप्नों को भुला न सका इसके विरह का दर्द मौत से ज्यादा भारी हो गया, जीवन कारा' बन गया,। जिससे छुटकारा पाना असम्भव हो गया । कवि बार बार इसे अधकचरे मन की कमजोरी कह कर टालता है, किन्तु उसका मन यह तर्क मान नहीं पाता और यहीं आकर रूकता है -

'इस पहले - पहले आत्म समर्पण को,
कोई भी भूल नहीं पाता ।'[2]

प्रेम के दोनो पक्षों का चित्रण संकलन की रचनाओं में हुआ है किन्तु वियोग पक्ष अधिक सशक्त है । उसमें दर्द का चरम है । इस दर्द की अभिव्यक्ति में पारम्परिकता नहीं नवीनता है ।बातचीत का टुकड़ा' में सम्बन्ध विच्छेद की पीड़ा का मार्मिक चित्रण निम्न पंक्तियों मे हुआ है । पंक्तियों के मध्य रिक्त स्थान से बहुत कुछ यहाँ अनकहा भी स्पष्ट हो रहा है -

'अब मैं पहले से कितना बेहतर हूँ,
तुम मेरी लापरवाही पर सिर धुनती थीं,
अब रहन-सहन में कितनी स्वच्छ व्यवस्था है ।
तरतीब वार इस तरह किताबे सजी हुई
यह एलबम है ....[3]

भारती के कृतित्व का एक उल्लेख्य अंश प्रकृति को समर्पित है । कवि ने प्रकृति के ताजे, मनोरम रूप को रोमानी संस्पर्श देकर सजीव बना दिया है । यहाँ प्रकृति का चित्रण उद्दीपन रूप में ही अधिक हुआ है ।

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठण्डालोहा', पृष्ठ -1 2. धर्मवीर भारती 'ठण्डा लोहा', पृष्ठ - 72
3. धर्मवीर भारती, 'ठण्डा लोहा', पृष्ठा - 74

संयोग व वियोग दोनों ही स्थितियों में प्रकृति के साहचर्य के चित्र मिलते है । मिलन के सुखद क्षणों में कवि प्रकृति को भी प्रफुल्लित देखता है और बेकाबू मन की विकलता का आभास दे देता है ।

'डोल रहा सांसो में कोई इन्द्र धनुष बहका - बहका,
बहुत दिनों बाद खिला बेला मेरा आंगन महका ।'[1]

इसी प्रकार मलय पवन से मन की मुंदी कलियों (स्मृतियों) के काँप कर खुल जाने और दर्द रूपी सुगन्ध बिखर जाने की कल्पना कितनी सुन्दर है -

'ओस से भीगी हुई अमराइयों को चूमता,
झूमता आया मलय का एक झोंका सर्द
कांपती मन की मुंदी मासूम कलियाँ कांपती
और खुशबू सा बिखर जाता हृदय का दर्द ।'[2]

प्रकृति विरह और मिलन के क्षणों की सहचरी ही नहीं अपितु नवनिर्माण की संदेशदात्री के रूप में भी चित्रित है । नयी पीढ़ी की उमंग एवं नव निर्माण में प्रकृति का संगीत गूंज रहा हैं -

'गोरी - गोरी सोंधी धरती - कारे - कारे बीज,
बदरा पानी दे ।
क्यारी-क्यारी गूंज उठा संगीत
बोने वालो नयी फसल में बोओगे क्या चीज ?
बदरा पानी दे ।
मैं बोंऊगी बीर बहूटी - इन्द्रधनुष संतरग,
नये सितारे, नयी पीढ़ियाँ, नये धान का रंग'[3]

यद्यपि भारती का कवि कहीं-कहीं प्रेम, वियोग, निराशा व कुण्ठा से पीड़ित है, फिर भी वह प्रकृति के माध्यम से अपनी बात कहता है । वह जगत के सृजन के प्रति आस्थावान है एवं सजग है । इसलिए कलाकार से भी वह यही अपेक्षा करता है और उसे नव निर्माण की ओर प्रेरित करता है -

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठण्डा लोहा', पृष्ठ - 16
2. धर्मवीर भारती, 'ठंडा लोहा' पृष्ठ-33
3. धर्मवीर भारती, 'ठण्डा लोहा', पृष्ठ - 34

'सृजन की थकान भूल जा देवता,
अभी तो पड़ी है धरा अनबनी
अधूरी धरा पर नहीं है कहीं
अभी स्वर्ग की नींव का भी पता ।'[1]

मानव भावना की अधिष्ठात्री, सर्वव्यापी, चिरकाल से मानव की सहचरी, सुख-दुख को आत्मसात करने वाली कविता का जीवन अब समाप्त हो गया है, क्योंकि कवि स्वयं मजबूर है । आवश्यकताओं की पूर्ति के अभाव में वह कविता को नव जीवन नहीं दे सकता और इसलिए आज कविता का अस्तित्व बनाये रखना चिंता का विषय बन गया है -

'भूख ने उसकी जवानी तोड़ दी
उस अभागिन की अधूती माँग का सिन्दूर
मर गया बन कर तपेदिक का मरीज
और सितारों से कहीं मासूम सन्तानें,
माँगने को भीख हैं मजबूर ।'[2]

निराशा, टूटन एवं घुटन की स्थिति होते हुए भी सृजन की, सत्यान्वेषण प्रक्रिया को रोकना अनर्थ होगा, यह बात कवि भूलता नहीं और इसलिए वह पुनः कविता की ओर लौट आता है -

'और कविता सृजन की आवाज है ।
क्या हुआ दुनिया अगर मरघट बनी
अभी मेरी आखिरी आवाज बाकी है
लो तुम्हें मैं फिर नया विश्वास देती हूँ
नया इतिहास देती हूँ
कौन कहता है कि कविता मर गयी ।'[3]

आधुनिक जीवन के जागृत आत्मबोध की अभिव्यक्ति के द्वारा कवि ने युग के गतिरोध को स्पष्ट कर जीवन की यथार्थ स्थिति का अंकन किया है । भावुकता से हट कर जब वह यथार्थ के धरातल पर आता है तो स्वयं को भी एक छल सा महसूस करता है -

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडा लोहा' पृष्ठ - 53
2. धर्मवीर भारती, 'ठण्डा लोहा' - 44
3. धर्मवीर भारती, 'ठण्डा लोहा' पृष्ठ - 46

'वैसे मेरी कोमलताएँ मेरी वाणी का रस
मेरी कला, कल्पना, दर्शन यह सब केवल धोखा
खूब समझ कर जीवन में आओ वैसे मुझको क्या
मैनें तो हर एक खिलौने को स्वीकार किया ।'[1]

कभी कभी प्रेम की कडुवाहट से कुंठित होकर भारती का कवि नारी के व्यक्तित्वको इस विराट सत्य से परे मानता है और अनुभव करता है कि वह जीवन की गहरी बातों को नहीं समझ सकती -

'नारी की आत्मा इस विराट को
बहुत देर तक नहीं ग्रहण कर पाती
यह आत्मा की पावनता मन की ऊंचाई
ये रेशम के सपने
अनजान गुफाओं में खो जाते हैं ।'[2]

भारती के काव्य में नारी विषयक ऐसी भावना अन्यत्र कहीं नहीं है । संभवत: अत्याधिक मानसिक उथल पुथल व असफल प्रेम इसका कारण है ।

रोमानी स्वप्नों का आकाश छोड़ कर जीवन के तिक्त व कटु अनुभवों की अभिव्यक्ति भी संकलन की कुछ कविताओं में हुई है । दैनिक जीवन की नीरसता, ऊब, घुटन, उदासी भी कहीं-कहीं दिखाई देती है । यथार्थ संगत आत्मबोध से पूर्ण इन कविताओं में कवि के काव्य विकास का अगला चरण स्पष्ट होता है । ये ही कविताएँ 'अंधायुग' की भावभूमि को स्पष्ट करती हैं -

'कुछ प्रेत लोक की छायाएँ तो अक्सर मिल जाती हैं,
एक छांह है
जिसके केवल
दो भूखी प्यासी बांहे है,
हृदय नहीं है, कदम नहीं हैं, होंठ नहीं है
इन सुनसान हवाओं में वह डोल रही है
केवल दो भूखी प्यासी बांहे फैलाये ।'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठण्डा लोहा' पृष्ठ - 60
2. धर्मवीर भारती, 'ठण्डा लोहा' पृष्ठ-68
3. धर्मवीर भारती, 'ठण्डा लोहा', पृष्ठ - 81

'घिनौना, भयावह पर छांह भरा यह जंगल भारती की प्राथमिक कविताओं में नहीं मिलता है । उन कविताओं में मस्ती थी, प्रणय था, विरह और मिलन के गीतों की लय थी । किन्तु इन कविताओं में अकेलापन है, भय है, भीषणता है और युग चक्र के नीचे पिसता हुआ मनुष्य है, हृदयपिण्ड है, कुचला हुआ मनुष्यत्व है ।'[1] उपर्युक्त अनुभूति कवि को आशा और आस्था की ओर उन्मुख करती है और वह अनास्था, हताशा के बीच आस्था और विश्वास के मूल्यों की खोज करता है ।

'ठण्डा लोहा' की कुल नौ कविताएँ जनवादी दृष्टिकोण की कही जा सकती हैं । यद्यपि काल्पनिकता का किंचित आग्रह इनमें भी है । 'सुभाष की मृत्यु पर', 'बोआई का गीत', 'कविता की मौत' व 'निराला के प्रति' ऐसी ही रचनाएँ है । इस तरह की कविताएँ संकलन की अन्य रचनाओं से कुछ अलग भावभूमि को लेकर लिखी गयी है इनकी भावभूमि बदली हुई है और इनमें नयी आहट है जो कवि के मन में जन्म लेने वाली मोती सी उपमाओं पर विवेक की चादर तान देती है । पलको के स्वप्न हवा हो जाते हैं और उनमें मकड़ी का भूरा जाला छा जाता है -

'मेरी पलकों पर स्वप्न नहीं
मकड़ी का भूरा जाला है
सबसे बढ़कर मुझको यह दंशन होता है
अक्सर जीवन का सत्य द्वार मेरे आया औ 'लौट गया'[2]

संक्षेप में 'ठण्डा लोहा' की कविताएँ मुख्यतः दो दिशाओं में गतिशील हैं । प्रथमतः कवि का रूख रोमानी, प्रेम विषयक, विरही का रहा है, इसलिए वह व्यष्टिगत है और दूसरे मोड़ पर उसका बदला हुआ स्वर अनास्था और कुंठा भरे युग यथार्थ से आ जुड़ता है, जिसमें वह अविश्वास, अनास्था एवं हताशा के बीच विश्वास, आस्था और आशा के मूल्यों की खोज करता है ।'[3]

ठण्डालोहा के रोमानी कथ्य के समान उसका शिल्प भी नाजुक एवं भावुकता भरा है । संकलन की भाषा, जिसके लिए कवि ने स्वयं कहा है -'ताजे वन फूलों सी बेदाग नयी वाणी'[4] कुछ ऐसी ही है । उसमें कही भी किसी प्रकार का पूर्वाग्रह नहीं है । कवि को उर्दू, अंग्रेज़ी आदि के शब्दों से परहेज भी नहीं है । लोक प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग है । 'भारती भाषा की अर्थवत्ता के कट्टर समर्थक है इसलिए उनकी भाषा

---

1. हरिचरण शर्मा, 'नयी कविता नये धरातल', पृष्ठ - 191
2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 56
3. पुष्पा वास्कर, 'धर्मवीर भारती व्यक्ति और साहित्यकार', पृष्ठ - 70
4. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 55

लोक व्यवहार में प्रचलित भाषा है । सभी प्रकार के शब्दों को अपना कर भारती ने उसे सम्पन्न किया है ।'[1] इसलिए ऐसे शब्दों की इनके काव्य में कमी नहीं है तो दूसरी ओर कमसिन, नाज़ुक, गुनाह, बशर्ते, शहज़ादी, फ़ीरोज़ी इकरार, खुमार, ज़िक्र, आमादा आदि औरभी बहुत से उर्दू फारसी के शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है ।

भारती की इन कविताओं में अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग भी प्रसंगानुरूप मिलता है । ये शब्द विदेशी होते हुए भी चिरपरिचित होने के कारण पराये नहीं लगते । शर्ट, कॉलर, फाइल, चैकबुक, प्लेटफार्म, स्टेशन आदि शब्द 'ठण्डालोहा' की कविताओं में मिलते हैं ।

संकलन की भाषा में बातचीत की सहजता बड़ी भली लगती है । यह सहजता 'सुनो, है कसम तुमको, पर यह क्या ।' 'लो यह' आदि शब्दों के प्रयोग से और बढ़ गयी है । कहीं कहीं पुनरूक्ति भी है, किन्तु वह अभिव्यक्ति की सहजता हेतु प्रयुक्त हुई है ।

संकलन में अलंकारों का सार्थक प्रयोग किया गया है । सौन्दर्य चित्रण में कवि ने एक से एक नये उपमानो को प्रस्तुत किया है । कहीं 'प्रिया का 'कली सा तन' 'किरन सा मन' है तो कहीं 'पानफूल सा मृदुल बदन' कह कर सुन्दर उपमाएँ प्रस्तुत की है । गंगाजमुनी वय वाली नायिका की उड़ती नजरों के लिए कितना नया उपमान प्रस्तुत किया है -

'धुआं धुआँ सी उड़ती नजरें
जो घिर आये, मेघदूत वाले बादल कचनार '[2]

वियोग के प्रसंग में ये उपमाएँ बदल गयी है । कवि ने समय व परिस्थिति के अनुकूल उपमाओं का प्रयोग किया है -

'मैं चली जा रही हूं, जैसे
लहरों पर विवश लाश बहती जाये ।'[3]

संकलन की भाषा माधुर्य गुण प्रधान है । किन्तु उन कविताओं में जहाँ कवि का जनवादी स्वर मुखरित है, भाषा ओजपूर्ण हो गयी है -

---

1. पुष्पा वास्कर, 'धर्मवीर भारती व्यक्ति और साहित्यकार' पृष्ठ - 70
2. धर्मवीर भारती, 'ठण्डा लोहा', पृष्ठ - 26
3. धर्मवीर भारती, 'ठण्डालोहा', पृष्ठ - 41

'भूख, ख़ूरेजी, गरीबी हो मगर
आदमी के सृजन की ताकत
इन सबों की शक्ति के ऊपर
और कविता सृजन की आवाज है
हो चुकी हैवानियत की इन्तेहा ।'[1]

संकलन की मुख्य शैली गीतात्मक है । प्रारम्भिक सभी गीतों में लय योजना का व्यवस्थित रूप मिलता है । उर्दू की प्रभावोत्पादकता एवं नाजुक ख्याली ने इन्हें और भी सुन्दर बना दिया है ।

भावात्मक एवं मानसिक स्थिति को परिवर्तित कर अनेक संदर्भो से उसे जोड़ कर पाठक पर स्थायी प्रभाव डालने के लिए नवीन एवं पौराणिक बिम्बों का प्रयोग कवि ने बड़े सुन्दर ढंग से किया है । 'चुम्बन', 'जाड़े की शाम', 'प्रार्थना की कड़ी', 'मेरी परछाहीं' में सुन्दर पौराणिक बिम्ब योजना की गयी है ।

निष्कर्षतः ठंडालोहा की रचनाओं में कवि की मूल रोमानी वृत्ति ही सर्वत्र व्याप्त है । कैशोर्य भावुकता युक्त मांसल चित्रण ही इस संकलन में अधिक हुआ है । 'जहाँ तक विचारों का सम्बन्ध है, कवि इस कृति में प्रायः अनिश्चय और संशय की स्थिति में पाया जाता है । कहीं वह परिस्थितियों के चैलेंज को स्वीकार करता दिखाई देता है तो कहीं लगता है परिस्थितियों ने उसे कुचल दिया है । कहीं नारी पर जीवन का मोती न्योछावर करने को उतावला हो उठता है कहीं घोषित करता है कि नारी का व्यक्तित्व बड़ा सीमित होता है।'[2]

ठंडालोहा की कविताएँ कवि की मानसिक उथल-पुथल व भावुक मन के आकर्षण की मिली जुली अभिव्यक्ति हैं । क्योंकि 'गुनाहों का देवता' व 'ठंडालोहा' का रचना काल लगभग एक है । 'ठण्डालोहा की कविताएँ 'गुनाहों का देवता' का रूपान्तर प्रतीत होती हैं । लगता है उपन्यास की नायिका सुधा निरन्तर प्रणय व्यथा के भार से इतनी दब गयी है कि कवि भी उसकी वेदना से अभिभूत होकर 'ठंडालोहा' तक उसे भुला नहीं पाया है ।'[3] संकलन की प्रारम्भिक कविताओं में कवि संशय की स्थिति में नहीं है । वहाँ तो वह रोमानी सौन्दर्यानभूति का समर्थन करता है । वासना की अनिवार्यता को स्वीकारता है ।' ठंडालोहा में भारती की उन्हीं रचनाओं में कवित्त निखरा है । जिनमें रोमानियत या 'रंमणेच्छा' अधिक व्यक्त हुई है । प्रेम का मादक रूप ही भारती को अधिक प्रिय है ।'[4]

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 46
2. विश्म्भर मानव, 'नई कविता नये कवि', पृष्ठ - 263
3. हरिचरण शर्मा, 'नयी कविता नये धरातल', पृष्ठ - 188
4. विश्म्भर नाथ उपाध्याय - 'आधुनिक हिन्दी कविता - सिद्धांत और समीक्षा' पृष्ठ - 529

2. सात गीत वर्ष :

'सात गीत वर्ष' डॉ0 'भारती का दूसरा काव्य संकलन है । 1959 में प्रकाशित इस काव्य संग्रह में कुल 51 कविताएँ संकलित है । जिनका रचनाकाल 1952 के बाद और 1959 के पहले के सात वर्षो का है । 'सात गीत वर्ष' की भूमि 'ठण्डालोहा' से आगे की मंजिल का रास्ता बताती है, आज दुनिया कितनी बदल गयी है, कहीं आराम नहीं कहीं चैन नहीं । सभी जगह थकान ही थकान, विवशता ही विवशता, टूटन ही टूटन और इन सब के ऊपर कहीं कोई आशा की किरण नहीं दिखाई देती है । इस संग्रह में कवि आस्था और विश्वास का दीप जला कर सभी पराजितों को आशा और विश्वास की छाँह में जीवन बिताने के लिए 'न्योतता' प्रतीत होता है ।'[1] यद्यपि इस संकलन की अधिकांश कविताएँ वैयक्तिक चेतना से परिपूर्ण हैं तथापि उनकी दृष्टि समष्टिगत रही है । 'एक ओर यदि वे अपनी रचनाओं में युग की समस्याओं को उभारते हैं, जिसे यौन कुण्ठाओं से अभिहित किया गया है । इसी में अनास्था, अविश्वास, संत्रास जैसी स्थितियाँ भी आती है वहाँ परम्परा के प्रति भी उनकी दृष्टि सजग रही है । वस्तुतः कवि भारती के चिन्तन में सदैव सन्तुलन रहा है । उनकी रचनाओं में जहाँ वैयक्तिक चेतना का स्वर गूंजता है, वहाँ परम्परागत समष्टि भाव भी उपलब्ध होता है । पर उनका व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक व्यंजित हो पाया है ।'[2] इस संकलन तक आते-आते भारती के कवि की निराशा व उदासी कुछ कम अवश्य हुई है, पूरी तरह समाप्त नहीं । यहाँ भी कवि कई कविताओं में विपरीत भावों के द्वंद्व से पीड़ित है ।

'सात गीत वर्ष' की कविताओं में प्रणय भावना का प्राधान्य है । लगभग दो तिहाई रचनाएँ प्रणय सम्बन्धी हैं । लेकिन 'ठण्डालोहा' के प्रेम की माँसलता यहाँ जटिल व चिन्तनशील हो गयी है । कवि ने भावुकता का त्याग कर विचारों की गहराई को पा लिया है । उस का चिन्तन शील व्यक्तित्व प्रेम के मादक क्षणों की अनुभूति में भी तृषित रहता है । अतः रस की पूर्ण अनुभूति नहीं होती । मन में जहरीले अजगर जैसे प्रश्न चिन्ह है -

'तन पिघले फूलों की आग पिया करता हैं -
पर मन में कई प्रश्न चिह्न उभर आते हैं
चुम्बन आलिंगन का जादू, मन को जैसे
ऊपर ही ऊपर छूकर रह जाता है ।[3]

---

1. हरिचरण शर्मा, 'नयी कविता नये धरातल', पृष्ठ - 191
2. हुकुमचन्द्र राजपाल, 'धर्मवीर भारतीः साहित्य के विविध आयाम' पृष्ठ - 39
3. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 25

तृष्णा और स्मृति इन कविताओं में मुखर है । अतीत की स्मृति व असफल प्रेम का चित्रण 'सात गीत-वर्ष' की अनेक कविताओं में हुआ है । इन कविताओं में 'ठण्डालोहा' के समान कैशोर्य सुलभ भावुकता न हो कर गहन अनुभूतियाँ है, जिनमें गम्भीरता अधिक है-

'बरसों के बाद उसी सूने से आँगन में
जाकर चुपचाप खड़े होना -
रिसती सी यादों से पिरा पिरा उठना
मन का कोना - कोना ।'[1]

यहाँ कवि तन के रिश्ते से ऊपर उठ कर मन के स्तर पर प्रेम को स्थापित करने की बात कहता है और श्रृंगारिक माँसलता की स्वस्थ मानसिक रिश्ते में परिणति स्वीकारता है -

'तन का
केवल तन का रिश्ता भी
माँसलता से कितना ऊपर उठ जाता है ।'[2]

प्रथम प्रणय की असफलता से टूटा कवि का मन प्रेम के प्रति सूक्ष्म चिंतन करने लगा है । प्रेमी सभी सुखों के बाद भी निर्वासन का अनुभव करता है । उसे अपना परिचित प्यारा शहर अनजान लगने लगता है । अपनी उपलब्धियों का मूल्यांकन करते हुए वह सोचता है -

'जिसकी लय पर
साधे हमने आत्मा के स्वर
वे अकस्मात् मुड़ जिस दिन पथ गह लें दूजा
अंतर में घुटती रह जाये टूटी पूजा '[3]

ऐसी स्थिति में अब जीवन में शेष क्या रहा । जीवन तो अब खाली प्याले सा हो गया -

'मैं क्या जिया ?
मुझको जीवन ने जिया
बूँद - बूँद कर पिया, मुझको
पीकर पथ पर खाली प्याले - सा छोड़ दिया ।'[4]

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ-58
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 30
3. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 22
4. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 38

किन्तु इस दुख व निराशा में भी कवि जीवन के प्रति आस्थावान है । उसका विश्वास है कि आज के अधूरे व्यक्तित्व कल पूर्ण बनेगें और जिन्दगी नये सिरे से संवरेगी । यहाँ कवि न तो पलायन में विश्वास करता है, और न पूरी तरह निराश होकर जीवन से उदासीन होता है, बल्कि वह स्थिति की जटिलता और जीवन की वास्तविकता को सही रूप में देखने में भोगने का पक्षधर हो जाता है और जीवन के यथार्थ व सामयिक संघर्ष को भोगते हुए कमल, पंथ व सूर्य की सी आस्था लिये हुए आगे बढ़ता है -

'रात
पर मैं जी रहा हूं निडर
जैसे कमल
जैसे पंथ
जैसे सूर्य ।'[1]

भारती का कवि कर्मवादी है । उसका मत है कि मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है जीवन में यदि कहीं सफलता है, मंजिल तक पहुंचने की धुन है, तो वह व्यक्ति की शक्ति में निहित है । उसकी पौरूषमय चेतना ही उसे मंतव्य तक ले जाती है । पहुंचने में वह टूटता भी है, हारता भी है, किन्तु इसी हारने, टूटने, बिखरने से वह बनता भी है । उसे अपनी ही आस्था का सम्बल मिलता है । यही आत्मशक्ति 'भारती' के काव्य की आस्था है और नयीं पीढ़ी के लिए रोशनी । यदि आस्था की पूर्णता में कोई कमी न हो तो रथ का 'टूटा पहिया' भी ब्रह्मास्त्रों से लोहा ले सकता है । यदि प्रभु पथ पर चलना है तो आस्था की शक्ति संचित करना होगी, क्योंकि प्रभु तो पथ है चलना मनुष्य को ही पड़ेगा -

'प्रभु तुम तो केवल पथ हो
चलना तो हमको ही होगा
आखिर होंगे ये वही चरण
जिनसे इस लक्ष्य भ्रष्ट मन को
मिल जायेगी अन्त में शरण ।'[2]

आत्मशक्ति के प्रबल समर्थक भारती के काव्य में अनास्था की अभिव्यक्ति भी हुई है यह अनास्था ईश्वर के प्रति भी प्रकट हुई है । इस संकलन में कवि ईश्वर के आराध्य रूप के प्रति विमुख है । पूजा के फूलों को वह शीशें के टुकड़ों के समान कष्ट प्रद मानता है और उन्हें देखकर क्षुब्ध होता है । कितना अंतर

---

1. धर्मवीर भारती, 'सातगीत वर्ष' पृष्ठ - 43
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 23

हैं - 'ठंडा लोहा' में उसे प्रेमिका का रूप पूजा सा लगता है, लेकिन यहाँ आकर तो वह पूजा के प्रति विरक्त हो गया है -

'पाँवो में गड़ेगे जब
सामने पड़ेंगे जब
तुमको दिखायेंगे
कुछ टूटी शकलें
प्रभुताई मसीहाई की भौंडी नकलें ।'[1]

कहीं-कहीं कवि आस्था अनास्था के मध्य द्वंद्वात्मक स्थिति में यही प्रश्न करता है -

'मेरे ये स्वर गूंजेगे,
या रव में खो जायेंगे ?'[2]

रूढ़ियो के प्रति आक्रोश एवं नव निर्माण की भावना इस संग्रह में व्यक्त हुई है । सामाजिक विषमता को नष्ट कर समाज के एकता, समानता एवं समता के सूत्रों को विकास हो, यह स्वप्न हमारे देश के महान नेताओं ने देखा था । भारती भी इसी स्वप्न को यथार्थ देखने के पक्षधर हैं । पुरातन काल से चली आ रही घृणा की भावना ने मनुष्य के विचारों को दूषित कर दिया है । अतः कवि घृणा की नदी को नवीन विचारों से बांधना चाहता है -

'बांधो नदी यह घृणा की है,
काली चट्टानो की सीने से निकली है
इसको छूते ही
हरे वृक्ष सड़ जायेगें ।'[3]

अतः आवश्यकता है आज घृणा की नदी पर बांध बनाने की । धरती को फिर से संवारना है, नये बीज डाल कर प्यार की फसल उगानी है और सामाजिक पार्थक्य की नीति को समाप्त करना है, क्योंकि सभी का दर्द एक सा है । अतः मेंडें बांधना व्यर्थ है । कवि के ये विचार उसकी मानवतावादी दृष्टि को स्पष्ट करते हैं -

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ-19
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 22
3. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 44

बिना किसी बाधा के

श्रम के पसीने से

सींची हुई फसलों को

खेतों से आंतो तक

जाने की सुविधा दो ।'[1]

संग्रह की 'वाणभट्ट' कविता उच्च वर्ग द्वारा फैलाये गये मायाजाल में उलझे बुद्धिजीवियों पर व्यंग्य के साथ साथ साहित्यकार के सामाजिक एवं परिवेशगत दायित्व पर भी प्रकाश डालती है । आज के साहित्यकार की स्वार्थी वृत्ति निम्न पंक्तियों में स्पष्ट है -

'सत्य है एक मणिजटित दुपट्टा,

एक मुद्रा मंजूषा, एक पालकी ।

सत्य है आत्मा पर थोपी हुई सीमाएँ

सोने के जाल की

सत्य है राजा हर्षवर्धन के हाथों से मिला हुआ

पान का सुगन्धित एक लघु बीड़ा

चाहे वह जूठा हो,

पर उस पर लगा हुआ वर्कदार सोना था ।

हाय वाण भट्ट । हाय ।

तुमको भी, तुमको भी, आख़िर यही होना था ।'[2]

पूंजीवादी एवं साम्यवादी किसी स्वतंत्र देश की निर्धनता को किस प्रकार जीविका का लालच देकर परतन्त्र बनाते हैं, भारती के शब्दों में -

आधे हैं जिनके हाथों में हैं कैमरे

थैलियाँ टूअरिस्ट पासपोर्ट

रंग बिरंगी फिल्में

आधे हैं, जिनके पास

रंग बिरंगे चेहरे

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 45

2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृष्ठ - 50

[जिनको वे हुक्म के मुताबिक बदल सकते हैं]

दो दो आने वाले

दूर किसी नगरी में छपे हुए

पैम्फ्लैट के ढ़ेरों में ढंक - ढंक कर आयी हैं

दूर किसी नगरी में ढली हुई जंजीरें ।'[1]

कवि इन गुलाम बनाने वालों की कड़े शब्दों में भर्त्सना करता है । वह जानता है कि नैतिकता और आदर्शों को मानने वाला व्यक्ति भूखों मरता है और आदमी की भूख का फ़ायदा आदमी ही उठाता है । अतः वह स्पष्ट शब्दों में कहता है -

'कह दो उनसे

जो खरीदने आयें हो तुम्हें

हर भूखा आदमी बिकाऊ नहीं होता ।'[2]

संकलन में आधुनिक युग की समस्याओं, मनुष्य के प्रच्छन्न रूप एवं कथनी करनी में अन्तर रखने वाले नेताओं और मंत्रियों पर भी कवि ने व्यंग्य किये है -

वे सब बीमार हैं

जो उन्माद ग्रस्त रोगी से

मंचों पर जाकर चिल्लाते हैं

वे वात, पित्त, कफ के बाद

चौथे दोष अहम् से पीड़ित है ।'[3]

युग जीवन में प्रकाश के आकांक्षियों को चाहिये कि दण्ड का भय छोड़ कर दासता, कायरता आदि के अन्धकार को दूर करने के लिए अपने अन्तर्मन के प्रमथ्यु को जगायें, बिना उसे जगाये मानवता की जीवन ज्योति को नहीं पाया जा सकता । 'प्रमथ्यु गाथा' यही सन्देश देती है । पीड़ा, वेदना और यातना से गुजरते हुए महान सत्य प्राप्ति की जो ललक प्रमथ्यु में थी वह अन्यों के पास न थी और इसीलिए अग्नि की प्राप्ति के उपरान्त भी प्रमथ्यु को यह विश्वास एवं अहसास हो जाता है कि -

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृष्ठ - 48
2. धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 49
3. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृष्ठ - 46

'जिसमें नहीं है साहस प्रमथ्यु बनने का

उसको बिना पीड़ा के मिल जाने वाली अग्नि

माँजती नहीं है,

और पशु ही बनाती है ।'[1]

किन्तु प्रमथ्यु की यातना यात्रा का विकास उस स्थान पर आ कर रूकता है, जहाँ वह प्रत्येक मनुष्य को अग्नि को प्रति उत्साही पाता है । यहीं वह आस्था का संकेत देता है -

'कोई तो ऐसा दिन होगा

जब मेरे ये पीड़ा सिक्त स्वर

उसके मन को बेध मूर्च्छित प्रमथ्यु को जगायेंगे ।'[2]

'पराजित पीढ़ी का गीत' एवं 'टूटा पहिया' 'प्रमुथ्यु गाथा' के आगे का चरण है। किन्तु भय, आशंका, अंधकार और अनास्था की विषमतापूर्ण स्थिति इन कविताओं में भी विद्यमान है । आम आदमी का पराजित स्वर इन पंक्तियों में अभिव्यक्त हुआ है -

'हम सबके दामन पर दाग

हम सबकी आत्मा में झूठ

हम सबके माथे पर शर्म

हम सब के हाथो में टूटी तलवारों की मूठ

हम सब सैनिक अपराजेय ।'[3]

किन्तु यह आम आदमी जो लघु मानव है, अपनी लघुता के प्रति आत्म विश्वास से पूर्ण है और अपने अस्तित्व की सुरक्षा हेतु प्रतिबद्ध भी -

'मैं रथ का टूटा पहिया हूँ

लेकिन मुझे फेंको मत

इतिहास की सामूहिक गति

सहसा झूठी पड़ जाने पर

क्या जाने

सच्चाई टूटे हुए पहियों का आश्रय ले ।'[4]

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ- 8
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृष्ठ- 10
3. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ- 20
4. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ- 5।

'सात गीत वर्ष' का कुछ अंश प्रकृति को भी समर्पित है । सामान्यतः प्रकृति चित्रण की कविताओं में काम या प्रेम की भावना का संसर्ग है । 'नबम्बर की दोपहर', 'मेघ दुपहरी' 'घाटी का बादल' आदि ऐसी ही कविताएँ हैं जिनमें विगत स्मृतियों की पीड़ा मुखर हो उठी है -

'छू गयी मुझको न जाने
कौन बिसरी बात
जिस तरह छू जाये नागिन
फूल को खिलते पहर ।'[1]

इसी प्रकार 'घाटी का बादल' कवि मानस की श्रृंगारिक भावनाओं की माँसल अभिव्यक्ति है -

'नितान्त कुमारी घाटी
इस कामातुर मेघघूम के
औचक आलिंगन में पिसकर
रतिश्रांता सी मलिन हो गयी ।'[2]

प्रेम की स्मृतियों पर आधारित छोटी-छोटी किन्तु प्रभावोत्पादक मार्मिक कविताएँ इस संकलन में मिलती हैं । इन प्रकृति-परक कविताओं में श्रृंगार के दोनों पक्षों की अभिव्यक्ति हुई है - एक ओर यदि -

'आज कल तमाम रात
चांदनी जगाती है
ठण्डी ठण्डी छत पर
लिपट लिपट जाती है'[3]

तो दूसरी ओर 'नबम्बर' की दोपहर अतीत की स्मृतियों में विह्वल कर वियोग की सृष्टि करती है -

आयी गयीं रितुएँ
पर वर्षों से ऐसी दोपहर नहीं आयी
जो क्वारे पन के कच्चे छल्ले सी
इस मन की उंगुली पर कस जाये
और फिर कसी रहे ।'[4]

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ-31
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 81
3. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ- 69
4. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ- 13

निष्कर्षतः 'सात गीत वर्ष' में भारती का कवि वैयक्तिक व सामाजिक दोनो ही स्थितियों में स्पष्ट रूप से सामने आया है । 'प्रमथ्यु गाथा' के माध्यम से जहाँ लोकवादी स्वर प्रस्फुटित हुआ है, वहीं दूसरी ओर प्रकृति चित्रण से पूर्ण कविताओं में उसका प्रेमी रूप स्पष्ट हुआ है । इस संकलन की कविताओं में 'ठंडालोहा' का प्रणय-स्वर सामाजिक समस्याओं व चिंतन की ओर उन्मुख हो गया है । यद्यपि प्रणय सम्बन्धी कविताएँ इस में भी है, किन्तु उनका स्वर भिन्न है ।

जिस प्रकार 'सात गीत वर्ष' का कथ्य आत्म ज्ञान की प्रौढ़ता को पहुँचा है, उसी प्रकार उसका शिल्प भी सशक्त एवं परिमार्जित हुआ है । यहाँ भारती की भाषा 'ठंडालोहा' की अपेक्षा सहज है । भारती का मत है कि 'भाषा भाव की पूर्ण अनुगामिनी रहनी चाहिये । न तो पत्थर का ढोंका बन कर कविता के गले में लटक जाये और न रेशम का जाल बन कर उसकी पांखो में उलझ जाये ।' इसलिए यहाँ उर्दू के अप्रचलित शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम हुआ है, लेकिन तत्सम शब्दों का प्रयोग कुछ अधिक मात्रा में । कहीं-कहीं अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भी किया गया है ।

'सात गीत वर्ष' में संवादों की सहजता बतियाने की भाषा अपनाने के कारण बढ़ गयी है । 'चैत का एक दिन' इस शैली का सुन्दर उदाहरण है -

'सुनो
सच बतलाना
क्या तुमको कभी भी
किसी ने भी
इतना उजला, कोमल, पारदर्शी प्यार दिया ?'[1]

अलंकारों के प्रयोग की दृष्टि से संकलन में विकास दिखाई देता है । कवि ने अनेक नयी-नयी उपमाएँ प्रयुक्त की हैं । कहीं 'नबम्बर की दोपहर 'जार्जट के पीले पल्ले सी है' तो कहीं नायिका का तन 'जुही के फूलों सा, कहीं पीले गुलाब सा उदास चेहरा है ।' इसी प्रकार रूपक, मानवीकरण आदि अलंकारों का प्रयोग भी हुआ है । कृति में प्रतीकों का अत्यन्त व्यंजक प्रयोग है । 'टूटा पहिया' अटूट आस्था का प्रतीक है तो 'प्रमुथ्यु जनमन की सुप्त इच्छाओं को जगाने का ।

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 75

निष्कर्षतः 'सात गीत वर्ष' की कविताएँ माँसलता से ऊपर उठ गयी हैं । कवि ने विभिन्न पहलुओं पर कविताएँ लिखी है । 'इस संकलन में कहीं व्यंग्य है तो कही 'वृहन्नला' के माध्यम से आज के क्लीवी शौर्य का पोस्टमार्टम है । कही जीवन की रिक्तता है तो कहीं घुटन का धुआँ भी है । किन्तु इन सबके ऊपर यादों की मीनार खड़ी है, फूलों की गधभरा आँगन है और हैं--प्रकृति के ताजे-ताजे अनाघ्रात और अचुम्बित चित्र जिन्हें देखकर लगता है कि कवि नये स्वरों को साधते हुए भी अपने प्रारम्भिक मनोभावों को पूरी तरह भुला नहीं पाया है ।'[1] लेकिन कविताओं के विषय व भाव-भूमि बदली हुई है । 'सात गीत वर्ष' तक आते-आते भारती की काव्य चेतना संभवतः अपनी वास्तविक राह खोज लेती है और उसे आत्मज्ञान की यह प्रौढ़ता प्राप्त हो जाती है कि मुग्ध सौन्दर्य, उद्दाम आकर्षण, माँसलता और रूपोपासना इन सबके पीछे आवश्यक है - आत्म संस्कार ।'[2] इसलिए यहाँ कवि आत्म संस्कारों को ग्रहण करते हुए चिन्तनशील बन गया है। इस संकलन में प्रणय संवेदना है अवश्य लेकिन माँसल भूख न होकर तन मन से एक होने की चाह है । यहाँ संघर्ष, आस्था और विश्वास कवि शक्ति बन कर आये हैं । 'कवि की वाणी गैरिक वसना' होकर गोरे अंगो को फूलों में कसना भूल जाती है । निराशा, पराजय एवं अनास्था का कुहासा ' अंजुरी भर धूप' से दूर हो जाता है । अतः इस संकलन में प्रणय राग के अतिरिक्त संक्रान्ति वेला में गाये गये 'पराजित पीढ़ी के गीत' के दर्द को भी कवि ने उभारा है और 'धूल भरी आंधी का भी साक्षात्कार किया है । कवि के मन की प्यास मुर्दा होकर पिघले फूलों की आग बन कर एक नया प्रश्न चिह्न लगाती है । युगीन परिस्थितियों का दंश और अभिशाप फूट पड़ता है और कवि यथार्थ के धरातल पर उतर कर सांस्कृतिक एवँ राजनैतिक विसंगतियों के प्रति कटुता एवं व्यंग्य से भर उठता है ।'[3]

वस्तुतः यहाँ कवि की वाणी में नयी चाह है, नया सन्देश है, वह आशान्वित है और उसने अपने अन्तर को प्रकट करके भावों के साथ शिल्प संधान में भी अपनी सामर्थ्य का परिचय दिया है ।

---

1. हरिचरण शर्मा, 'नयी कविता नये धरातल' पृष्ठ - 194
2. श्री निवास शर्मा, 'हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, पृष्ठ - 226
3. श्री निवास शर्मा, 'हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, पृष्ठ - 229

3. अंधायुग :

भारती की किशोरावस्था का समय राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारी उथल-पुथल का था एक ओर द्वितीय विश्वयुद्ध तथा राष्ट्रीय स्थिति का प्रभाव दूसरी ओर पितृ वियोग । ये दोनो ही कवि को अंतर्मुखी बना गये और कच्ची उम्र में ही युगबोध को उभार गये । इसी युगबोध की प्रखर अभिव्यक्ति 'अंधायुग' है । यहाँ आकर 'ठंडालोहा के कवि को 'अनजान पगध्वनियाँ' अभिशापों से मुक्त करने का आश्वासन देती है।'[1] 'अंधायुग' में कवि जीवन के व्यापक सत्य की उपलब्धि में सफल हुआ है ।

सन् 1954 में लिखी गयी यह नाट्यकृति हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट महत्व एवं अस्तित्व रखती है । प्रथम एवं द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त मानव, मानव जीवन, उसकी आस्थाएँ, मर्यादाएँ - सब के टूटने का युग अवतरित हुआ । 'कृष्ण, अर्जुन और दुर्योधन के द्वारा लड़े गये महाभारत के रण ने भी यही परिणाम अपने युग को प्रदान किये थे । जिन अनास्थाओं की पर्तें हमारे युगीन जीवन भर आज छायी हैं, उन्हीं अनास्थाओं के वस्त्र महाभारत काल के राजाओं, नेताओं, सैनिकों एंव रानियों को पहनने, ओढ़ने एवं बिछाने पड़े थे । दो युगों की समानताओं का इस कृति में अच्छा दर्शन मिलता है ।'[2] मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति का लक्ष्य व्यक्ति की सर्जनात्मक स्वतंत्रता को परिपुष्ट करना है । मानव सभ्यता और संस्कृति का विकास स्वतंत्रता की खोज का इतिहास है । आज मानव इसी खोज के लिए प्रयत्नशील है । जब प्रयत्नों में स्वार्थ समाहित होता है, तब विलासी संस्कृति का विकास होता है । इससे उत्पन्न राजनीति समाज को रोगी बना देती है । परिणाम स्वरूप युद्ध होते हैं और युद्ध के बाद मर्यादाहीनता का युग जन्म लेता है । इसी का चित्रण 'अंधायुग' का उद्देश्य है । कवि ने इस ज्योति कथा को अंधो के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है -

'यह कथा ज्योति की है अन्धों के माध्यम से,
यह कथा आज की है अतीत के माध्यम से ।'[3]

'अंधायुग' का कथानक पौराणिकता एवं काल्पनिकता का समायोजन बनाये रखते हुए गौण रूप में प्रस्तुत किया गया है । इस दृश्य काव्य में जिन समस्याओं को उठाया गया है, उनके सफल निर्वाह के लिए महाभारत के उत्तरार्ध की घटनाओं का आश्रय लिया गया है । अधिकतर कथावस्तु प्रख्यात है, केवल कुछ तत्व ही उत्पाद्य है । कुछ स्वकल्पित पात्र और स्वकल्पित घटनाएँ ।'[4]

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृ0-56
2. पुष्पा वास्कर, 'धर्मवीर भारती:व्यक्ति और साहित्यकार' पृ0-206
3. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृ0-12
4. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 6

'अंधायुग' महाभारत के अठारहवें दिन के युद्ध व उसके परिणाम से सम्बद्ध है । इसमें कवि ने पौराणिक विषय का आश्रय ले कर समसामयिक बोध को प्रस्तुत किया है । इसकी कथावस्तु एक ओर पौराणिकता के सहारे आधुनिक संवेदना को व्यक्त करती है तो दूसरी ओर जीवन मूल्यों के विघटन, संक्रमण, क्षोभ और अनेकानेक संत्रस्त विसंगतियों को ।

कृति का सम्पूर्ण कथानक पाँच अंको में विभाजित है । स्थापना से कृति का प्रारम्भ होता है । प्रथम अंक में कौरवों की नगरी का वर्णन है । वहाँ महल में घूमते हुए प्रहरियों के वार्तालाप से स्पष्ट होता है कि कौरव कुल नष्ट हो गया है । यही धृतराष्ट्र को कृष्ण का मर्यादा सम्बन्धी वक्तव्य याद आता है और वह पहली बार स्वीकारते हैं कि सामाजिक मर्यादाओं का निर्वाह उनसे भली भांति नहीं हो सका । यहीं गांधारी एक कर्तव्य परायण महिला के रूप में चित्रित है । इसी अंक में प्रवेश होता है याचक का और वह सन्देश देता है-

'जब कोई भी मनुष्य
अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को
उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है ।'[1]

द्वितीय अंक में संजय का प्रवेश होता है । उसकी भेंट कृपाचार्य से होती है । वह दुर्योधन की पराजय स्वीकार करने का दृश्य नहीं देख सके, अतः अपना धनुष तोड़ कर वन को प्रस्थान कर जाते हैं । इधर अश्वत्थामा आत्म हत्या की बात सोचता है, परन्तु अंत में जीवित रह कर प्रतिशोध की योजना बनाता है । इसी समय संजय का आगमन होता है । अश्वत्थामा उसे पांडवपुत्र समझ कर वध करने हेतु तत्पर हो जाता है ।

तृतीय अंक का प्रारम्भ कथा गायन से होता है इसमें कौरवों की पराजय व उनकी कष्टप्रद स्थिति का वर्णन है । इसी अंक में संजय द्वारा दुर्योधन की पराजय की सूचना प्राप्त होती है, युद्ध की समापित के बाद दोपहर तक कौरवों की सेना के टूटे रथ, बचे हुए ब्राह्मण, स्त्रियाँ, चिकित्सक, बूढ़े युद्ध क्षेत्र से लौट आये थे । उसकी सूचना पाकर धृतराष्ट्र अत्यन्त दुखी होते हैं । विदुर उन्हें सांत्वना देते हैं । तभी एक लंगड़े, गूंगे सैनिक और इसके बाद युयुत्सु का प्रवेश होता है । पांडवों की सेना में धृतराष्ट्र का पुत्र युयुत्सु भी सम्मिलित हुआ था, क्योंकि वह दुर्योधन के पक्ष को असत्य का पक्ष और युधिष्ठिर के पक्ष को सत्य का पक्ष समझता था ।

तृतीय अंक के दूसरे फलक के अंतराल में प्रेतलोक की तरह का वातावरण उपस्थित होता है । अश्वत्थामा द्वारा मारे गये वृद्ध याचक की आत्मा अवतीर्ण होकर सारे युग के अंधेपन को देखती है । इसके

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 26.

पश्चात युयुत्सु स्वयं को पहिया, संजय अपने को कर्मलोक से बहिष्कृत दो बड़े पहियों के बीच लगा एक छोटे सा निरर्थक शोभाचक्र तथा विदुर स्वयं को कृष्ण का अनुगामी भक्त और साधारण नीतिज्ञ स्वीकारते हैं । याचक आत्मा युयुत्सु, विदुर और संजय की छायाओं को मंत्र शक्ति से आहूत कर उन्हें उनकी असंगतियों से अवगत कराना चाहती है । छाया लोक में वही आत्मा अन्त में अश्वत्थामा के पांडव शिविर तक जाने और शिव द्वारा रोके जाने की सूचना देती है ।

चतुर्थ अंक में गंधारी का शाप विशेष रूप से उल्लेख्य है । यह अंक अत्यन्त भयावह है । दिव्यास्त्रों का प्रयोग करने पर भी अश्वत्थामा पराजय का मुंह देखता है । जब वह शिव की वन्दना करता है तो प्रसन्न होकर शिव कहते है -

'अश्वत्थामा तुम विजयी होगे निश्चय
हो चुका पाण्डवों के पुण्यों का अब क्षय
मैं कृष्ण प्रेम वश
अब तक इनकी रक्षा करता था
मैं विजय दिलाता
इनमें नया पराक्रम भरता था
पर अब अधर्म वध
द्वार उन्होंने स्वतः मृत्यु के खोले ।'[1]

इसी आशीर्वाद के फलस्वरूप अश्वत्थामा, धृष्टद्युम्न शिखण्डी एवं अन्य योद्धाओं का वध करता है । कृतवर्मा एवं कृपाचार्य, पाण्डव शिविर में आग लगा देते हैं । गांधारी इस वृतान्त को सुनकर प्रसन्न होती है । वह संजय की दिव्य दृष्टि से अश्वत्थामा के दर्शन करती है । यहीं अश्वत्थामा उत्तरा के गर्भ में ब्रह्मास्त्र फेंक कर दुर्योधन के प्रतिशोध का बदला लेता है, लेकिन विदुर धृतराष्ट्र को सूचना देते हैं कि कृष्ण ने उत्तरा के गर्भ की रक्षा कर ली है । यहाँ कृष्ण अश्वत्थामा को भ्रूण हत्या का शाप देते हैं । फलस्वरूप उसके सारे शरीर में कोढ़ हो जाता है । अश्वत्थामा की इस करूणाजन्य स्थिति को देख गांधारी क्रोधित हो कृष्ण को शाप देती है ।

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 80

पाँचवा अंक भी कथा गायन से प्रारम्भ होता है इसमें अंधो की परम्परा में महायुद्ध के ध्वंस के बाद राज्य के सिंहासन पर बैठे हुए युधिष्ठिर अत्यन्त चिंतित है और स्वयं को पराजित मानते हैं । भीम मन्दबुद्धि हैं । उसकी कटूक्तियों से मर्माहत होकर धृतराष्ट्र वन को प्रस्थान करते हैं । वन में आग लगने से गांधारी एवं धृतराष्ट्र मर जाते हैं तथा युयुत्सु आत्महत्या कर लेते हैं । प्रहरियों के वार्तालाप से उनके परिवर्तित जीवन का आभास मिलता है । कृपाचार्य युधिष्ठर की आत्मघात करने वाली संस्कृति में न रहने की प्रतिज्ञा करते हैं । युधिष्ठित की शंका है कि राज्य में अराजकता व्याप रही है । प्रहरियों के वार्तालाप से यह अंक समाप्त होता है ।

समापन उपशीर्षक में वन्दना, कथागायन के उपरान्त यादव वंश में बढ़ी कलह एवं कृष्ण द्वारा बन्धु बान्धवों को मार डालने की कथा है । इसके उपरान्त कृष्ण के पैर को मृगमुख समझ कर याचक की प्रेतात्मा वाण चलाती है और गांधारी का शाप सत्य हो जाता है । इससे स्पष्ट होता है कि अंधायुग वस्तुतः द्वितीय महायुद्ध के बाद पनपे मानवीय संकट की कथा है -

> 'यद्धोपरांत यह अंधायुग अवतरित हुआ
> जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्माएँ सब विकृत हैं ।'[1]

इस महायुद्ध के बाद मूल्यांधता व्यापक स्तर पर फैल गयी । जो हारे वे भी निराश और जो जीते उन्हें भी जीत की खुशी नहीं हुई । इस तथ्य को 'गीतिनाट्य' में युधिष्ठिर के माध्यम से अभिव्यक्ति दी गयी है-

> 'और विजय क्या है ?
> एक लम्बा और धीमा
> और तिल-तिल कर फलीभूत
> होने वाला आत्मघात ।'[2]

भारती ने इसी आत्मघाती विजय के स्वरूप को पहचाना है और उसके मूल कारणों की खोज करके जीवन की ओर मोड़ने का प्रयत्न इस कृति के माध्यम से किया है । 'अंधायुग' की सबसे बड़ी सफलता आत्मघाती अनास्था के कारणों की सही पहचान है । इस पहचान के लिए उन्हें अन्धकार के गरजते महासागर की चुनौती को स्वीकार करना पड़ा है ।

---

1. धर्मवीर भारती 'अंधायुग' पृष्ठ - 90   2. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 117

कवि ने जीवन सत्य एवं मर्यादा की प्रतिष्ठा, असत्य अविश्वास, कुण्ठा एवं प्रतिशोध की अत्यधिक यथार्थता को व्यंजित किया है । यद्यपि मनुष्य अपने स्वार्थों के लिए प्रतिशोध, असत्य आदि कुप्रवृतियों को भी जीवन मूल्य मान लेता है, किन्तु ये सब उसके जीवन में स्थायित्व नहीं ला सकते । इसके लिए जीवन में मर्यादा एवं सत्य अपेक्षित है । अश्वत्थामा का चरित्र अमर्यादित व्यक्तित्व को स्पष्ट करता है । ऐसी स्थिति में अमर्यादित चरित्र अनुचित को ही उचित मानता है और अपने स्वार्थो के निर्वाह के लिए मर्यादा का उल्लंघन करता है । यह मर्यादा उल्लंघन केवल महाभारत के युद्ध में ही नहीं आज भी होता है -

'टुकड़े -टुकड़े हो बिखर चुकी मर्यादा
उसको दोनो ही पक्षों ने तोड़ा है,
पांडव ने कुछ कम, कौरव ने कुछ ज्यादा ।'[1]

मर्यादा के साथ सत्य की महत्ता का प्रश्न भी इस कृति में उठाया गया है । सत्य की उपेक्षा व अर्धसत्य के सहारे रक्तपात द्वारा जीता गया युद्ध भी हारने जैसा ही प्रतीत होता है । इस जीवन मूल्य की व्यापकता एवं महत्ता कवि ने युधिष्ठिर के अर्धसत्य भाषण को आधार बनाकर प्रतिपादित की है और संजय के माध्यम से सत्य की महत्ता इस तरह प्रस्तुत की है -

'सत्य कितना कटु हो
कटु से यदि कटुतर हो
कटुतर से कटुतम हो
फिर भी कहूंगा मैं ।'[2]

युयुत्सु तो कौरव वंश की अपेक्षा सत्य की व्यापकता को मानता है । आज की भी परिस्थितियाँ इतनी विषम हैं कि व्यक्ति सत्य पर दृढ़ रह कर असफल हो जाता है । इस विडम्बना को भी युयुत्सु के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है -

'मेरा अपराध सिर्फ इतना है,
सत्य पर रहा मैं दृढ़ ।'[3]

इस प्रकार की पंक्तियाँ पौराणिक धरातल के द्वारा कवि की यथार्थ अभिव्यक्ति की पुष्टि करती हैं ।

---

1. धर्मवीरभारती,'अंधायुग' पृ0- 11, 2. धर्मवीरभारती,'अंधायुग' पृ0-37 3. धर्मवीरभारती,'अंधायुग' पृ0-53

'अंधायुग' में भारती अस्तित्व बोध से प्रभावित प्रतीत होते हैं । अश्वत्थामा युधिष्ठिर के अर्धसत्य एवं कृष्ण के अन्यायपूर्ण कार्यो के प्रति अपने में विद्यमान मनोग्रन्थि के कारण युद्ध से आत्म संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है । उसके उपचेतन में युद्ध की विभीषिका के कारण प्रतिशोधात्मक वृत्ति तीव्र हो उठती है । वह इस मानसिक कुण्ठा से छुटकारा पाने के लिए युद्ध को अनिवार्य समझता है और प्रतिशोध स्वरूप उत्तरा के गर्भ पर ब्रह्मास्त्र तक छोड़ देता है । यह ब्रह्मास्त्र ही आज के अणु विस्फोट का प्रतीक है । आधुनिक मानव किस तरह अनास्था, कुण्ठा, विघटन व अविश्वास में पल रहा है, यह अंधायुग में अभिव्यक्त हुआ है । प्रहरी के माध्यम से कही गयी ये पंक्तियाँ इन समस्याओं को उजागर करती है -

'अनास्था का साहस का
श्रम का अस्तित्व का
हमारे कुछ अर्थ नही था
कुछ भी अर्थ नहीं था ।'[1]

आज मानव का अस्तित्व नियति से अधिक है । वह नियति द्वारा संचालित नहीं होता अपितु नियति को बदल देता है -

'नियति नहीं है पूर्व निर्धारित
उसको हर क्षण मानव निर्णय बनाता, मिटाता है ।'[2]

नियति की अपेक्षा मानव की वैचारिक शक्ति प्रमुख है वैचारिक होकर ही वह कर्मरत हो सकता है । वह अपने समय व भाग्य को कर्म के द्वारा बदल सकता है । 'अंधायुग' में संजय ने इसे स्वीकारा है -

'पर मैं तो हूँ निष्क्रिय निरपेक्ष
सत्य
मार नहीं पाता हूँ
कर्म से पृथक
खोता जाता हूं क्रमशः
अर्थ अपने अस्तित्व का ।'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 15
2. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 26
3. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 127

अंधायुग में कवि युग विशेष को चित्रित करना चाहता है । इसीलिए कथा के माध्यम से उसने अनेक आधुनिक समस्याओं और प्रश्नों को उठाया है । कुछ ऐसे प्रश्न और समस्याएँ भी कथा में आ गयी हैं जो आधुनिक बोध को वाणी देती हैं । कवि ने आधुनिक जीवन मूल्यों के विघटन, संक्रमण, क्षोभ और अनेकानेक संत्रस्त विसंगतियों को विविध सन्दर्भों में अभिव्यक्त किया है । निम्न पंक्तियाँ आधुनिक संवेदना की अभिव्यक्ति हैं -

'यह युग एक अंधा समुद्र है,
चारों ओर से पहाड़ों से घिरा हुआ
और दर्रों से
और गुफाओं से
उमड़ते हुए भ्यानक तूफान चारों ओर से
उसे मथ रहे हैं ।'[1]

'अंधायुग' का अश्वत्थामा सही अर्थों में आधुनिक मानवता का प्रतीक है । वह त्रास, घुटन, पीड़ा सहन करते हुए असाधारण सा हो गया है । वध उसके लिए मनोग्रन्थि नहीं नीति बन गया है । उसके मानसिक तनाव ने उसे पाशविक बना दिया है । प्रतिहिंसा व प्रतिशोध से वशीभूत होकर उसने मर्यादा, नैतिक मूल्य व सदाचार को भुला दिया है । आज का व्यक्ति भी ठीक ऐसा ही है । वह मानवता को त्याग पशुता की ओर आकर्षित हो रहा है । वह अश्वत्थागा की भांति बाहर से अहं, अमर्यादा, अनीति का समर्थन करता हुआ भीतर से बिलकुल खोखला हो गया है । आज देश इसी संकट से गुजर रहा है, सारा परिवेश दूषित है, तथा भ्रष्टाचार ही नैतिक मूल्य बन चुका है । यही कारण है कि वर्तमान परिवेश से असंतुष्ट मनुष्य हिंसक पशु बनता जा रहा है ।

गांधारी के व्यक्तित्व अंकन में कवि के नारी विषयक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति होती है । गांधारी के मातृत्व व पत्नीत्व की मार्मिक अभिव्यक्ति 'अंधायुग' में हुई है । पति का अनुकरण कर दृष्टिसुख से वंचित होते हुए भी वह दूरदर्शिनी एंव रूढ़ियों से मुक्त है । वह बुद्धिप्रधान नारी के रूप में प्रस्तुत हुई है और इसीलिए कथानक में कई स्थानों पर उसकी हृदय हीनता स्पष्ट होती है ।

धृतराष्ट्र की जन्मान्धता भी स्वयं में एक प्रतीक है । वह जगत की यथार्थ स्थिति से कटे हुए हैं, सत्य असत्य, सुख-दुख का निर्णय करने की उनकी कुछ अपनी सीमाएँ हैं और उससे बाहर का वह सोच भी नहीं पाते। । आज का मनुष्य भी अपने स्वार्थो के आसपास सुख-दुख, सत्य-असत्य ढूंढता है । वह इसे व्यक्तिगत स्तर पर प्रतिष्ठित करता है, व्यापक स्तर पर नहीं । धृतराष्ट्र की वैयक्तिकता ही आधुनिक मानव की वैयक्ति भावना है।

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 75

संजय की अंतर्मुखी प्रवृत्ति और उसका चिंतन आज के व्यक्ति की आत्मकेन्द्रित स्थिति को अभिव्यक्ति देता है । संजय की स्थिति, उसके सोचने समझने का ढंग ही आज के व्यक्ति का चिन्तन है । आज व्यक्ति यह महसूस करता है कि सामाजिक नैतिक मूल्यों के मानदण्ड बदल गये हैं और प्राचीन सामाजिक मूल्य पिछड़ापन कहे जाने लगे हैं ।

प्रहरियों के रूप में आज के जन-साधारण की वीतरागी स्थिति, उसकी राज्य व समाज के प्रति उपेक्षा की भावना भी एक तरह का अंधापन ही है । समाज का सामान्य व्यक्ति परिस्थितियों से जूझने की अपेक्षा तटस्थ रहना पसन्द करता है । जैसा कि प्रहरी का कथन है -

'झुक जाओं ढ़ालो के नीचे,
छिप जाओ,
नरभक्षी हैं
ये गिद्ध भूखे हैं ।'[1]

महाभारत के युद्ध का परिणाम भी निराशा, कुण्ठा, पश्चाताप व अकेलेपन के रूप में व्यक्त हुआ है । बिना समझे लड़े गये युद्ध अंततः निराशाजनक व त्रासदायी होते हैं । यहाँ युधिष्ठिर जीत कर भी हारे हुए व निराश हैं । वे ऐसे व्यक्ति की तरह हैं जो आज की इस भौतिक संस्कृति की चहल-पहल, औपचारिकताओं व भीड़ में भी नितान्त अकेला है । उसकी संवेदनाएँ किसी को भी अपना साझीदार नहीं महसूस करतीं । 'महाभारत के युद्ध में मनुष्य मर गये, मनुष्यता नहीं मरी । आज भी मनुष्य मर रहे है और मनुष्यता कहीं न कहीं जीवित है । ऐसा प्रतीत होता है कि भारती ने 'अंधायुग में महाभारत के अठारहवें दिन के बाद की यद्धोत्तर घटनाओं का सहारा लेकर जो कथावृत्त प्रस्तुत किया है वह आधुनिक जीवन के पर्याप्त निकट है ।'[2]

'अंधायुग' में आधुनिक युगबोध की सृष्टि में उसका शिल्प विशेष सहायक हुआ है । कवि ने आधुनिक संकट बोध की अभिव्यंजना के लिए पुराणकथा को माध्यम बनाया है । 'पौराणिक कथानक को लेकर अपने युग के प्रति इतना गहरा 'कन्सर्न' किसी अन्य रचना में कठिनाई से मिलेगा ।'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ - 16
2. महावीर सिंह चौहान, 'नयी कविता की प्रबन्ध चेतना' (स0) पृष्ठ - 38
3. रामस्वरूप चतुर्वेदी, 'हिन्दी नव लेखन' - पृष्ठ - 85

अंधायुग की भाषा, मुक्त छन्द का प्रयोग और प्रतीकों का उल्लेख भी इस कृति की आधुनिकता स्पष्ट करता है । कृति की भाषा कहीं भी औपचारिक नहीं है । पात्रों की मानसिक अवस्था अथवा उनके विचारों के परि-वर्तन के साथ टोन भी बदल जाता है । शब्द प्रयोग भी आवश्यकतानुसार किये गये हैं । अनावश्यक शब्दों से बचा गया है । विचारों की गहनता के कारण कहीं-कहीं भाषा अति गद्यमय हो गयी है । यह गद्यमयता पात्रों की अतिशय वैचारिकता के कारण है । सूक्तियों का भी बहुत सुन्दर संयोजन किया गया है । ये सूक्तियाँ प्रभावोत्पादन में सक्षम सिद्ध हुई हैं । इनके द्वारा पात्रों की वैचारिकता का आभास मिलता है -

'जब कोई भी मनुष्य
अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को,
उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है ।'[1]

एवं इसी प्रकार -

'हर क्षण इतिहास बदलने का क्षण होता है ।'[2]

इस दृश्यकाव्य में अलंकारों का प्रयोग भी सार्थक हुआ है । उपमा और रूपक के अनेक प्रयोग हुए है । कुछ उपमाएँ तो एकदम नयी व अनूठी हैं -

'कौरवों की वधुएँ
सुरभित पवन तरंगो सी ।'[3]

एक अन्य प्रयोग -

'तोड़ी हुई मर्यादा,
कुचले हुए अजगर सी
गुंजलिका से कौरव वंश को लपेटकर
सूखी लकड़ी सा तोड़ डालेगी ।'[4]

कृति में तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है । दृश्यकाव्य का मंगलाचरण तो संस्कृत भाषा से ही है । उर्दू के शब्द भी कहीं-कहीं प्रयुक्त हुए हैं । भाषा प्रतीकात्मक अधिक है ।

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ - 26
2. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ-26
2. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 26
4. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ - 26

कृति का नाम भी प्रतीकात्मक है । 'अंधायुग अतीत के पृष्ठ पर वर्तमान का लेख है । पौराणिक कथानक से युक्त होकर भी वर्तमान जीवन के समसामयिक प्रश्नों व समस्याओं की अनुगूंज से युक्त है । '[1]

अंधायुग का नवीन भावबोध की दृष्टि से विशेष महत्व है । कवि ने युगीन मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा करभावी पीढ़ी का मार्ग निर्देशन किया है । अंधायुग की गणना उन अत्यन्त विरल और सशक्त कृतियों में की जा सकती है : जिनकी शक्ति और संवेदना एक ऐसे संपृक्त रूप में उभरती है, जहाँ भावपक्ष और कलापक्ष जैसे विभाजन कृत्रिम लगते हैं ।'[2]

4. **कनुप्रिया :**

द्वितीय महायुद्ध के अनन्तर भारतीय सामाजिक जीवन में विघटनकारी परिवर्तनों से जनसाधारण की मनोवृतियाँ ह्रासोन्मुखी हुई । इस पतन की प्रतिक्रिया समूची भारतीय संस्कृति में हुई । ऐसी स्थिति में विश्वास, संघर्ष एवं नैतिकता के समक्ष कई प्रश्न चिह्न लग गये और जीवन कुंठित होकर निराशा के कगार तक पहुंच गया । इस भयावह स्थिति ने व्यक्ति की संवेदनाओं को आन्दोलित किया । साहित्यकार भी इस स्थिति से अछूता न रह सका और परिणामस्वरूप समसामयिक परिस्थितियों से संपृक्त कविता में दुख, निराशा, उत्पीड़न, अनास्था आदि की अभिव्यक्ति होने लगी । ऐसे परिवेश के प्रभाव में लिखी गयी 'कनुप्रिया' भारती की एक महान उपलब्धि है । राधा-कृष्ण की चिर पुरातन एवं चिर नवीन कथा के सन्दर्भों से युक्त 'कनुप्रिया' एक भाव प्रधान काव्य है। इसमें कनुप्रिया की भावाकुल स्थितियों का चित्रण है । 'समस्त काव्य रचना में सीधे तथा प्रत्यक्ष रूप में केवल राधा है, जिसके विविध गीतों, भावों, अनुभूतियों, स्मृतियों, मनःस्थितियों, कल्पनाओं से कथानक को यथा-सम्भव विस्तार मिला है ।'[3]

राधा और कृष्ण के प्रणय, विरह एवं मिलन की कथा बहुत पुरानी है । इस कथा में अधिकांश कवियों ने मात्र राधा के विरह को महत्व दिया है । संस्कृत के जयदेव, बंगला के चंडीदास, हिन्दी के सूर, नन्द, बिहारी, रत्नाकर, हरिऔध से लेकर नये कवियों में 'भारती' तक यह श्रृंखला चली आयी है । प्राचीन ग्रन्थों में राधा के व्यक्तित्व को रासेश्वरी तथा रस स्वरूपा माना गया है । भागवत के अनुसार 'राधस शब्द से आशय है, भगवान की अनिर्वचनीय स्वरूप सिद्धि । सिद्धि का अर्थ है - रूपान्तर प्राप्ति । वह रस स्वरूप तत्व अपने रस का आस्वाद लेने के लिए स्वयं ही अपने को रसनीय अथवा आस्वाद्य रूप में परिणत कर देता है । अतः इस स्वरूप की रसनीय रूप प्राप्ति ही सिद्धि राधा है ।'[4]

---

1. डा0 महावीर सिंह, 'नयी कविता की प्रबंध चेतना' (स0) पृष्ठ - 39
2. कमला प्रसाद पाण्डेय, 'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि' पृष्ठ-342
3. ब्रजमोहन शर्मा, 'धर्मवीर भारती कनुप्रिया तथा अन्य कृतियाँ', पृष्ठ -27
4. ब्रजमोहन शर्मा, 'धर्मवीर भारती कनुप्रिया तथा अन्य कृतियाँ', पृष्ठ - 61

राधा की रस शक्ति के रूप की परिकल्पना का परमोत्कर्ष राधा वल्लभ सम्प्रदाय में हुआ । इसी भाव को लोक जीवन में प्रसारित प्रवाहित किया जयदेव, सूर, विद्यापति, नन्द आदि ने । इन कवियों ने भक्ति के आवरण में राधा की विरह व्यथा व कामपीड़ा को चित्रित किया । एक ओर जयदेव एवं विद्यापति ने राधा ने माँसल रूप का वर्णन किया तो दूसरी ओर सूर ने राधा को सामाजिक दायित्व से परिपूर्ण चित्रित किया ।

'भारती' की राधा इन कवियों से अलग युग सापेक्ष महत्व रखती है । अज्ञेय के शब्दों में - 'कनुप्रिया' में धर्मवीर भारती ने कृष्ण के प्रति राधा के प्रेम को जिस नये रूप में देखा या दिखाना चाहा है, उसका आधार केवल पुरानी बात को नये मुहावरे में ढालने का प्रयत्न भर नहीं है । भारती का उद्देश्य इससे बड़ा है, क्योंकि वह राधा कृष्ण के प्रेम को भी एक वृहत्तर रूप में देखते हैं - ऐसा रूप, जिसे देश कालातीत कहा जा सकता है, क्योंकि वह सार्वदेशिक और सार्वकालिक है ।'[1]

'भारती' का कहना है कि 'अंधायुग की समस्या के ही कुछ विशिष्ट संदर्भ 'कनुप्रिया' में उद्घाटित हुए हैं - 'लेखक के पिछले दृश्य काव्य में एक बिन्दु से इस समस्या पर दृष्टिपात किया जा चुका है, गांधारी, युयुत्सु और अश्वत्थामा के माध्यम से । कनुप्रिया उनसे सर्वथा पृथक बिलकुल दूसरे बिन्दु से चल कर उसी समस्या तक पहुंचती है । उसी प्रक्रिया को दूसरे भाव स्तर से देखती है और अपने अनजाने में ही प्रश्न के ऐसे सन्दर्भ उद्घाटित करती है जो पूरक सिद्ध होते हैं । पर यह सब उसके अनजाने में होता है, क्योंकि उसकी मूलवृत्ति संशय या जिज्ञासा नहीं भावाकुल तन्मयता है ।'[2]

'कनुप्रिया' 'पूर्वराग' 'मंजरी परिणय', 'सृष्टि संकल्प', इतिहास एंव 'समापन शीर्षकों में विभाजित है । इन पाँच खण्डों की योजना होते हुए भी कृतिकार ने इसके तीन चरण माने हैं । कृति की भूमिका में भारती ने लिखा है - 'पूर्वराग' और मंजरी परिणय' उस विकास का प्रथम चरण, 'सृष्टि संकल्प' द्वितीय चरण तथा महाभारत काल से जीवन के अन्त तक शासक, कूटनीतिज्ञ, व्याख्याकार कृष्ण के इतिहास तथा समापन इस विकास के तृतीय चरण को चित्रित करते है ।'[3] इस तरह विषय वस्तु की दृष्टि से राधा की मनः स्थितियों का विकास पाँच खण्डों की अपेक्षा तीन चरणों में हुआ है । ये तीन चरण भी दो पहलुओं के द्योतक हैं । एक है - राधा के पूर्व-राग, मंजरी परिणय और सृष्टि संकल्प के रूप में राधा का संयोग श्रृंगार सम्बन्धी पक्ष और दूसरा है--इतिहास व समापन के अंतर्गत राधा के विरह और कृष्ण के प्रति उसकी भावानुभूतियों का विरही पक्ष। इस कृति में कथा तो नाम मात्र है, विभिन्न परिस्थितियों से उत्पन्न प्रतिक्रियाएँ ही प्रमुख हैं । भावाकुल स्थिति में राधा द्वारा उठाये गए प्रश्न जीवन की विकट समस्याओं को स्पर्श करते हैं ।

---

1. देवीशंकर अवस्थी,'विवेक के रंग', (सं०) पृ०- 109 2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ- 7
3. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 7

'कनुप्रिया' में आधुनिक नारी के अन्तर्मन की उधेड़बुन, शंका विवशता और घुटन के साथ-साथ तर्क-वितर्क एवं स्वातंत्र्य की भावना का सूक्ष्म निरूपण किया गया है । डॉ0 भारती की मान्यता है कि बीसवीं शताब्दी के मशीनी युग में निस्संदेह प्राचीन मूल्य परिवर्तित हो चुके हैं, पाश्चात्य सम्पर्क से नारी अधिकारों के प्रति पूर्ण जागरूक है और नवीन सांस्कृतिक जागरण के फलस्वरूप नारी ने विधवा विवाह, निलम्बित विवाह, मुक्तभोग, विवाह मुक्त जैसी प्रणालियों को सहर्ष स्वीकारा है, पर नारी का हृदय यथावत है । आज भी वह पुरूष की अपेक्षा उदार, त्यागी और सदाशया है ।'[1]

कनुप्रिया की राधा नारी के सदाशयी, भावाकुल रूप को उजागर करती है । नारी सुलभ सहजता की कसौटी पर वह समस्त को कसना चाहती है । उसका यह कथन है, 'लेकिन वह क्या करे जिसने अपने सहज मन से जीवन जिया है, तन्मयता के क्षणों में डूब कर सार्थकता पायी है और जो अब उद्घोषित महानताओं से अभिभूत और आतंकित नहीं होता बल्कि आग्रह करता है कि वह उसी सहज की कसौटी पर समस्त को कसेगा ।'[2]

कृष्ण महाभारत के प्रणेता बन कर चले गये और राधा अकेली रह गयी । ऐसी स्थिति में आज की निराश, व्यथित एवं भ्रमित नारी राधा के रूप में साकार हो उठी है -

'अब सिफ मैं हूं, यह तन है -
- और संशय हैं
बुझी हुई राख में छिपी चिनगारी सा
रीते हुए पात्र की आखिरी बूंद सा
पाकर खो देने की व्यथा भरी गूँज सा ....।'[3]

आधुनिक कविता नारी स्वातंत्र्य की कविता है । यह नारी पूर्ववर्ती नारी से सबल एवं सक्षम व्यक्तित्व की स्वामिनी है । वह मात्र कोमलता की मूर्ति न होकर संघर्षो से जूझती नारी है । वह पुरूष के उत्थान और पतन दोनो ही स्थितियों की सहभागिनी है तथा विवेकशीला है, अतः वह पुरूषों की समता में खड़ी है । उसे तो केवल दुख यही है कि पुरूष की दृष्टि में नारी नितान्त केलिसखी एवं सुखभोगिनी ही क्यों स्वीकारी गयी । उसे मानसिक व बौद्धिक रूप से कुंठित क्यों माना गया ? 'कनुप्रिया' में राधा की स्थिति आधुनिक नारी के ऐसे ही प्रश्नों को उजागर करती है -

---

1. बृजमोहन शर्मा, 'धर्मवीर भारती, कनुप्रिया तथा अन्य कृतियाँ', पृष्ठ - 39
2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 7
3. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 7

'सुनो मेरे प्यार ।

प्रगाढ़ केलिक्षणों में अपनी अन्तरंग

सखी को तुमने बाहों में गूंथा

पर उसे इतिहास में गूथने से हिचक क्यों गये प्रभु ?'[1]

पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क से आधुनिक नारी की प्रेम सम्बन्धी मान्यताओं में अप्रत्याशित परिवर्तन आया है । वह भोगपूर्ण जीवन को हेय नहीं समझती, वासना उसके जीवन का सत्य है । उसने वासनामय प्रेम को जीवन के महत्वपूर्ण अंश के रूप में स्वीकार किया है । अपने अतीत के शोषण, विघटन व बिखराव ने उसे क्षण भोगी बना दिया है ।' कनुप्रिया में भी नारी की इसी क्षण भोगी वृत्ति का संकेत मिलता है । कनुप्रिया केलिसखी, सृजनसंगिनी और सृष्टि संकल्प के प्रसंगो में आधुनिक नारी की कामजन्य प्रवृतियों की तस्वीरे हैं -

'और यह मेरा कसाव निमर्म हैं

और अन्धा, और उन्मादभरा; और मेरी बाहें

नाग-वधू की गुंजलक की भाँति

कसती जा रही हैं

और तुम्हारे कंधो पर, बाहों पर, होठों पर

नागवधू की शुभ्रदंत - पंक्तियों के -

नीले-नीले चिह्न उभर आये हैं ।'[2]

आधुनिक जीवन के बिखराव, व्यवस्थित क्रम के अभाव व स्वार्थ लिप्सा के कारण प्राचीन मान्यताएँ एवं धारणाएँ परिवर्तित हुई हैं और इस परिवर्तन में नारी स्वयं को असुरक्षित, निरर्थक व निर्जीव सा अनुभव करती है । अपने प्रति पुरूष के व्यवहार से वह भविष्य के लिए चिंतित भी है । कनुप्रिया की राधा जिस कृष्ण की चन्दनबाहों में समाजाने को हर क्षण आतुर रही, वही कृष्ण कालान्तर में उसे थके, हारे व कमजोर प्रतीत हुए । पुरूष की इसी परिवर्तित स्थिति का संकेत राधा के माध्यम से किया गया है -

---

1. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 79
2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 51

'अक्सर आकाश गंगा के

सुनसान किनारे पर खड़े होकर

जब मैंने अथाह शून्य में

अनन्त प्रदीप्त सूर्यों को

कोहरे की गुफाओं में पंख टूटे -

जुगनुओं की तरह रेंगते देखा है

तो मैं भयभीत होकर

लौट आयी हूं ।'[1]

आधुनिक युग में व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों में बदलाव आया है । प्राचीन आदर्श, मान्यताएँ एवं नैतिक मूल्य जीवन की समस्याओं के समाधान खोजने में असफल सिद्ध हुए हैं । ऐसे वातावरण में इतिहास के क्षण सार्थक हैं या भावाकुल तन्मयता के क्षण ? यह प्रश्न व्यक्ति के मन में दुविधा उत्पन्न करता है । कवि ने राधा के माध्यम से इसी समस्या की ओर इंगित किया है -

'अर्जुन की तरह कभी

मुझे भी समझा दो

सार्थकता क्या है बन्धु ?

मान लो मेरी तन्मयता के गहरे क्षण

रंगे हुए अर्थहीन, आकर्षक शब्द थे

तो सार्थक फिर क्या है कनु ?'[2]

भारती ने 'कनुप्रिया' के माध्यम से अस्तित्व के प्रश्न को भी उठाया है । आधुनिक मानवीय मूल्यों के विघटन के कारण अमानवीय प्रक्रिया की विभीषिकाओं को व्यक्ति न चाहते हुए भी भोग रहा है । उसकी इस पीड़ा का कारण युद्धजन्य दुष्परिणाम हैं । कनुप्रिया की राधा को जो भावाकुल तन्मयता के सहज क्षणों को भोगने वाली है, युद्ध के कारण सब कुछ थका-हारा दिखाई देता है । इतना ही नहीं युद्ध संचालक कृष्ण भी उसे प्रभावहीन एवं शक्तिहीन प्रतीत होते हैं :-

---

1. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 46
2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 69

'आज उस समुद्र को मैंने स्वप्न में देखा कनु !
विष भरे फेन, निर्जीव सूर्य, निष्फल सीपियाँ, निर्जीव मछलियाँ . . .
लहरें नियंत्रण खोती जा रही हैं
और तुम तट पर बांह उठा-उठा कर कुछ कह रहे हो । .
पर तुम्हारी कोई नहीं सुनता, कोई नहीं सुनता ।'[1]

युद्धोपरान्त जो पश्चाताप पूर्ण स्थिति कृष्ण की है, वही प्रत्येक सैन्य संचालक की होती है । युद्धजन्य उपलब्धियाँ विनाश के समक्ष नगण्य लगती हैं । 'कनुप्रिया' राधा का मन भी ध्वंस और विनाश को देखकर प्रश्नाकुल हो उठता है । वह अनुभव करती है कि उसके समर्पण एवं उसकी तन्मयता का महत्व इस संघर्ष में कुछ है ही नहीं । उसे लगता है कि सार्थकता शायद उसकी नहीं, इस युद्धायोजन की है ।

'हारी हुई सेनाएँ, जीती हुई सेनाएँ,
नभ को कंपाते हुए, युद्ध-घोष, क्रन्दन - स्वर,
भागे हुए सैनिकों से सुनी हुई
अकल्पनीय, अमानुषिक घटनाएँ युद्ध की
क्या ये सब सार्थक हैं ?'[2]

कनुप्रिया में भारती का मुख्य उद्देश्य भावानुभूतियों का प्रकाशन है, किन्तु राधा की प्रश्नाकुल स्थिति के माध्यम से कवि ने जीवन की कुछ समस्याओं को चित्रित किया है एवं राधा के प्राचीन रूप को नये धरातल पर उतारा है । दार्शनिकों ने राधा के तात्विक रूप की तो महान धारणा बना ली थी व उसे कृष्ण की परब्रह्म शक्ति मान लिया था, किन्तु कृष्ण के कुरूक्षेत्र जाने के पश्चात राधा की स्थिति पर विचार नहीं किया गया था । राधा के माध्यम से कवि ने प्रश्न किया है, कि इतिहास बड़ा है या व्यक्ति की आकांक्षा ? रूढ़ि अधिक महत्वपूर्ण है या सहजमन ?

प्रारम्भिक तीन खण्डों में कवि राधा के सहजमन की दशा चित्रित करता है । राधा सहजमन से चरम तन्मयता की स्थिति मे ही जीना चाहती है । समस्त भूत, वर्तमान एवं भविष्य उसमें सिमट गया है । इतिहास व समापन खण्ड में कनुप्रिया सूर की राधा के समान अश्रुविगलित नेत्र नहीं पोंछती, अपितु युद्ध के आयोजन की आलोचना करती है । वह कनु से प्रश्न करती है -

---

1. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया', पृष्ठ - 74

2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 68

'सुनो । कनु सुनो
क्या मैं सिर्फ सेतु थी तुम्हारे लिये
लीलाभूमि और युद्ध क्षेत्र के अलंध्य अंतराल में ।'[1]

यहाँ राधा के माध्यम से व्यक्ति के प्रश्न को उठाया गया है । व्यक्तिगत स्तर पर कृष्ण के सानिध्य से राधा ने जो पाया वही इतिहास के अंतराल में उसे छूटता दिखाई देता है । वह प्रश्न करती है -

'कौन था वह ?
जिसने तुम्हारी बांहो के आवर्त में
गरिमा से तन कर समय को ललकारा था
कौन था वह ?
जिसकी अलकों में जगत की समस्त गति पराजित थी ।'[2]

राधा युद्ध के प्रति वितृष्णा व्यक्त करती है एवं युद्ध की कटु आलोचना करती है । युद्ध की संवेदना ही कनुप्रिया की मुख्य वेदना है - 'यह जटिल संवेदना है - व्यक्ति और इतिहास के पारस्परिक सम्बन्ध की । महायुद्ध के समक्ष एकाकी मनुष्य की अवशता की । महायुद्ध से टूटते हुए व्यक्तियों की कथा कनुप्रिया की मुख्य संवेदना है ।'[3]

कनुप्रिया में राधा के माध्यम से उठाई गयी समस्याएँ युगचेतना से संपृक्त हैं । अंतर और बाह्य के सामन्जस्य को कवि ने प्रस्तुत किया है । राधा अंतर्मन की तन्मयता के साथ अन्त में इतिहास निर्माण हेतु प्रस्तुत होती है ।[4]

---

1. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया', पृष्ठ - 79
2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 60
3. डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी, 'कविता यात्रा' पृष्ठ - 72
4. डा0 हरिचरण शर्मा, 'नयी कविता नये धरातल', पृष्ठ - 208

'सुनो मेरे प्यार

तुम्हें मेरी जरूरत थी न ?

लो मै सब छोड़ कर आ गयी हूँ

ताकि कोई यह न कहे कि तुम्हारी अंतरंगकेलि सखी

केवल तुम्हारे साँवरे तन के, नशीले संगीत की

लय बन कर रह गयी ।'[1]

इस प्रकार राधा आधुनिक नारी के गौरव की प्रतिष्ठा करती है । उसके माध्यम से कवि ने युग चेतना से संपृक्त समस्याओं को उठाया है । 'कनुप्रिया' में नारी के आधुनिक मन की तस्वीरे हैं, उसमें नारी के मन की जिज्ञासाएँ सन्निहित हैं । भारती ने यथार्थ को सचेतन बना कर नये भावबोध से जोड़ दिया है 'क्योंकि आज जीवन के मूल विपर्यय का कोई हल निरी बुद्धि से, निरे ऐतिहासिक चिन्तन से नहीं निकल सकता । मानवता की समस्याएँ मानव की जिस अखण्डता के स्तर पर हल की जा सकती है - वह विज्ञान अथवा तर्क का स्वर नहीं बल्कि सहज रागात्मक सम्बन्ध का स्वर है ।'[2]

कृतिकार ने स्पष्ट किया है कि विस्तृत कालखण्ड एवं संघर्षमय वातावरण में भी मनुष्य तभी विजयी होता है जबकि वह रागात्मकता व चरम तन्मयता के क्षणों में भी जीना सीखे । मात्र विवेक एवं युद्ध के द्वारा ही व्यक्ति विकास नहीं कर सकता ।

वस्तुतः कनुप्रिया का कथ्य मानव जीवन के तन्मयता के क्षणों की गरिमा स्थापित करने के दायित्व को वहन करने वाले कवि का उद्देश्य वाहक है । जिसमें राधा का व्यक्तित्व समकालीन सन्दर्भों से जुड़ा होते हुए भी अपने आप में स्वतंत्र है ।' कनुप्रिया की राधा हिन्दी - संस्कृत कवियों से अपने आप को अलग स्थापित करती है । संस्कृत में राधा की श्रृंगार लीला का उन्मुक्त वर्णन करने वाले जयदेव और भारती की प्रकृति भी एक सी नहीं है, क्योंकि पूर्व प्रचलित परम्परा प्राप्त पात्रों को भारती ने मानवीय भूमिका पर ही रहने दिया है ।'[3] इसी भूमिका का निर्वाह 'कनुप्रिया' की राधा भी करती है । वह आधुनिक स्वावलम्बी नारी का प्रतिनिधित्व करती है जो पुरूष के प्रति समर्पणशील होते हुए भी उसकी प्रवृत्तियों के प्रति शंकित है । 'भारती के 'अश्वत्थामा' की तरह ही 'कनुप्रिया' की राधा भी युगीन सवालों को उठाती है । इसलिए 'अंधायुग' के बाहर घटित इतिहास का आंतरिक साक्षात्कार 'कनुप्रिया' में है ।'[4]

---

1. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया', पृष्ठ - 79   2. डा0 हरिचरण शर्मा,'नयी कविता नये धरातल' पृ0-208

2. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, 'नयी कविता', पृष्ठ - 52

3. डॉ0 जगदीश कुमार, 'नयी कविता विलायती सन्दर्भ', पृष्ठ - 92

'अंधायुग' की तरह आस्था-अनास्था का संघर्ष 'कनुप्रिया' में भी मिलता है, क्योंकि कृष्ण के प्रति असमर्पित रहने के उपरान्त भी राधा के व्यक्तित्व में आस्था है जो उसे विचलित नहीं होने देती -

'अब मुझे याद नहीं
पर इतना जरूर जानती हूँ,
कि इस आम की डाली के नीचे
जहाँ खड़े होकर तुमने मुझे बुलाया था
अब भी मुझे आकर बड़ी शान्ति मिलती है ।'[1]

कनु के युद्धायोजन से खिन्न, विचलित राधा के मन में कृष्ण के प्रति विशेष लगाव है, अपने कर्तव्य के प्रति गहरी समझ है और इसलिए वह युद्धोपरान्त थके हारे कनु को पुनः आस्था एवं सम्बल प्रदान करती है -

निष्कर्षतः भारती की कृति 'कनुप्रिया' कैशोर्य सुलभ भावुकता की परिपक्वता को स्पष्ट करती है । राधा की भावाकुल तन्मयता और सामयिक सन्दर्भों के प्रति उसकी चेतना कृति का मूल स्वर है । वह मात्र कनुप्रिया न होकर कवि की विचारधारा की स्पष्ट अभिव्यक्ति है । जो नारी चरित्र के माध्यम से ही इतनी मार्मिक व प्रभावोत्पादक बन सकती थी । 'कनुप्रिया' का वैचारिक पक्ष कवि की चिंतनशीलता का परिचायक है और भावपक्ष उनकी भावुकता का । चिंतन व भावनाओं के मेल से लिखी यह कृति अस्तित्व का प्रश्न बार-बार उठाती है। क्योंकि जिन दिनों कवि कनुप्रिया का सृजन कर रहा था, उन दिनों कवि का चिंतक व्यक्तित्व निम्न दायित्व का निर्वाह करने में लीन था -

'सृजन का क्षण वस्तुतः इस रिक्तता, विघटन और विच्छिन्नता के क्षण से बिलकुल पृथक होता है । उसमें हम क्षण को एक संगति, एक अर्थ, एक क्रम प्रदान करते हैं । झूठी शाश्वतता और निश्चयात्मकता के अंधविश्वासपूर्ण आश्वासनों का तिरस्कार कर हम मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा और मानव मूल्यों की खोज और उन्हें आत्मसात करने की प्रक्रिया द्वारा क्षण को अर्थवान बनाते हैं । वे जो ये सोच लेते हैं कि मानव मूल्यों की खोज एक बार हो चुकी, वे प्रतिष्ठित हो चुके हैं, अब हमें क्या करना है । वे अंतरात्मा को भुला देना ही सुविधाजनक मान लेते हैं । फलस्वरूप वे कभी भी सृजन के क्षणों का साक्षात्कार नहीं कर पाते । वे जो यह सोच लेते हैं कि मानव मूल्यों की वास्तविक प्रतिष्ठा आज हो ही नहीं सकती वह तो भविष्य की किसी और समाज व्यवस्था में होगी । अतः आप, हम जो कुछ भी मानव विरोधी करें वह सर्वथा उचित है, संगत है - वे भी अंतरात्मा को आगे के लिए स्थगित कर देते हैं । दोनों ही वर्तमान के प्रति अपने दायित्व से भागते हैं ।

1. डा0 धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया', पृष्ठ - 6।

वस्तुतः मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा प्रत्येक क्षण हो सके यही हमारा दायित्व है ।'[1] 'कनुप्रिया' में कवि ने इसी दायित्व का निर्वाह किया है ।

'कनुप्रिया' की संवेदना कवि की निजी संवेदना है । फिर भी शिल्प पक्ष उतना ही सबल है, जितना कि भावपक्ष। 'अंधायुग' की तरह कनुप्रिया भी डा0 भारती की पकी हुई प्रौढ़ रचना है, जिसमें वस्तु एवं शिल्प दोनो के लावण्य का चरमोत्कर्ष है । मूलतः गीतात्मक तन्मयता युक्त एवं भावाकुल मनः स्थिति की रचना होने के कारण उसका कथा विन्यास अत्यन्त लघु है, किन्तु भाव दशाओं की सीमा नहीं है ।

बिम्बात्मकता भारती की भाषा का प्राण है । कनुप्रियाा में कलात्मक बिम्ब स्थान-स्थान पर मिलते हैं । प्रेम की तन्मयता का भाव निम्न पंक्तियों में सुन्दर बिम्ब सृष्टि कर रहा है -

'यमुना के नीले जल में
मेरा यह वेतसलता - सा कांपता तन - बिम्ब, और उसके
चारो ओर सांवरी गहराई का अथाह प्रसार - जानते हो
कैसा लगता है ?
मानो यह यमुना की सांवरी गहराई नहीं है
यह तुम हो जो सारे आवरण दूर कर
मुझे चारों ओर से कण कण रोम रोम
अपने श्यामल प्रगाढ़ अथाह आलिंगन में पोर-पोर
कसे हुए हो ।'[2]

राधा और कृष्ण के सम्बन्धों की मसृणता भी एक सुन्दर बिम्ब द्वारा साकार होती है । और सामने बिम्ब बनता है छौने से कृष्ण की घुंघराली अलकें पोंछती राधा का -

'गाँव की सीमा पर
छितवन की छाँह में खड़े हो कर
ममता से मैंने अपने वक्ष में
उस छौने का ठण्डा माथा दुबका कर
अपने आँचल में उसके घने घुंघराले बाल पोंछ दिये ।'[3]

---

1. डा0 धर्मवीर भारती, 'मानव मूल्य और साहित्य' पृष्ठ - 34 - 35
2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ- 16
3. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ- 35

इसी प्रकार वियोगिनी राधा के शरीर के लिए यह बिम्ब -

'बुझी हुई राख, टूटे हुए गीत, डूबे हुए चाँद
रीते हुए पात्र, बीते हुए क्षण सा -
मेरा यह जिस्म ।'[1]

'कनुप्रिया' में अलंकारों की योजना भी उसकी कलात्मकता के स्वर को उर्वर रखती है । कवि ने अलंकारो का प्रयोग सहज एवं स्वाभाविक रूप से किया है । रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास इस कृति की भावात्मक सौन्दर्य वृद्धि में सहायक हुए हैं -

तुम्हारे चन्दन कसाव के बिना, मेरी देहलता के
बड़े-बड़े गुलाब, धीरे-धीरे टीस रहे हैं ।'[2]

मन्त्र पढे वाण से छूट गये तुम तो कनु
शेष रही मैं केवल
काँपती प्रत्यंचा सी ।'[3]

भारती की इस प्रकार की उपमाएँ इतनी मार्मिक हैं कि राधा की वेदना स्पष्ट करने के लिए बिम्ब का कार्य करती हैं -

'मैं तो वह हूँ जिसे दिग्वधू कहते हैं, कालवधू -
समय और दिशाओं की सीमाहीन पगडंडियों पर
अनन्त काल से
अनन्त दिशाओं में
तुम्हारे साथ-साथ चलती चली आ रही हूँ, चलती
चली जाऊंगी ....'[4]

---

1. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 57
2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 30
3. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 28, 29
4. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 37

'भरे हुए घड़े में
अपनी चंचल आँखो की छाया देख कर
उन्हें कुलेल करती चट्टुल मछलियाँ समझ कर
बार-बार सारा पानी ढरका देती है ।'[1]

..... वह जिसे भी रिक्त करना चाहता है
उसे सम्पूर्णता से भर देता है ।'[2]

इस प्रकार कनुप्रिया में अनेक अलंकारों का सफल प्रयोग किया गया है ।

कनुप्रिया में प्रतीकों के माध्यम से भी भावाभिव्यक्ति हुई है । 'इतिहास' और 'समुद्रस्वप्न' तो प्रतीक शैली में ही रचे गये हैं । 'आम्रबौर के गीत' में कृष्ण का आम्रबौर तोड़कर चूर-चूर करना और उजली पगडण्डी पर बिखेरना भी प्रतीक है । इसी प्रकार 'कृष्ण का अर्धोन्मीलित कमल भेजना मिलन का प्रतीक है ।

कनुप्रिया की कई पंक्तियों में पुनरूक्ति का प्रयोग हुआ है, किन्तु कृति में यह गद्यगीतों के सौन्दर्य निखार में सहायक सिद्ध हुई है -

'करूंगी ।
बार-बार नादानी करूंगी ।'[3]

एवं

'हाय में सच कहती हूं
मैं इसे समझी नहीं; नहीं समझी, बिलकुल नहीं समझी ।'[4]

'कनुप्रिया' में विविध सम्बोधनों से और भी सजीवता आ गयी है -

'सुनो मेरे प्यार,[5]

एवं

'मेरे सांवले समुद्र '[6]

---

1. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ- 28, 29
2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 28
3. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 29
4. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ- 31
5. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 41
6. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 38

'कनुप्रिया' की भाषा अत्यन्त सरल होते हुए भी सशक्त, मार्मिक एवं प्रवाहपूर्ण है । कृति में तदभव तत्सम एवं देशज शब्दों का प्रयोग हुआ है । इसमें एक ओर, सप्तवर्णी, सीमन्त, सृजन, निरावृत, प्रत्यंञ्चा, जीर्णवसन जावक आदि तत्सम शब्द हैं, तो दूसरी ओर पच्छिम, अंजुरी, रतनारे, सांवरे, अंधियारा, अनबोला, छितवन आदि तद्भव व देशज शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं ।

राधा कृष्ण के प्रणय संदर्भ प्रायः पारम्परिक रूप में चित्रित हुए हैं । ऐसे सन्दर्भों में कवि ने पर्याप्त कवि समयों का प्रयोग किया है । ऐसा लगता है कि निम्न पंक्तियाँ में कवि भक्ति एवं रीतिकालीन सन्दर्भों से प्रभावित है -

यहाँ सूरदास की पंक्तियाँ -

'गोरस को निज नाम भुलायो
श्याम लेहु कोऊ श्याम लेहु
गलिन गलिन यह सोर मचायो ।'

का भाव निम्न पंक्तियों में इस प्रकार है -

'श्याम लेलो, श्याम लेलो,
पुकारती हुई हाटबाट में
हँसी कराती घूमती हूँ ।'[1]

कहीं -कहीं भारती ने कवि समयों में नवीनता का समावेश भी किया है । 'पूर्वराग' के पहले गीत में प्राचीन रूढ़ि की मौलिक रूप में प्रस्तुति हुई है ।

निष्कर्षतः भावुक भारती की 'कनुप्रिया' में एक ओर पारम्परिक संदर्भ हैं तो दूसरी ओर आधुनिक बोध के आयाम । 'कनुप्रिया' पुरूष और स्त्री के मानवीय सम्बन्ध सूत्रों को रूपायित करने में पूर्णतः सफल है, और इस आरोप के बाबजूद कि भारती की राधा में वैष्णव, सिद्ध अस्तित्ववादी एवं छायावादी रंग दृष्टव्य है, हम इस तथ्य को नकार नहीं सकते कि 'कनुप्रिया' का अपना अलग, स्वतंत्र एवं महत्वपूर्ण स्थान हिन्दी साहित्य में है । परम्परा का पालन करते हुए राधा के व्यक्तित्व को अपने परिवेश के अनुसार ढाल देने का तन्मयता और दायित्व बोध का 'कनुप्रिया' एक महत्वपूर्ण उदाहरण है, प्रमाण है ।'[2]

****

1. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृ0-31   2. पुष्पा वास्कर 'धर्मवीर भारती व्यक्ति और साहित्यकार' पृ0-108

अध्याय तीन - समकालीन युग चेतना (द्वितीय समरोत्तर प्रभाव)

मोहभंग

आस्था एवं अनास्था

लघुता

अस्तित्ववाद

वैयक्तिकता

कुण्ठा

संशय एवं द्वंद्वग्रस्तता

अलगाव एवं निर्वासन

यथार्थ एवं कल्पना

प्रेम एवं सौन्दर्यबोध

परम्परा एवं नवनिर्माण

व्यंग्यात्मकता

क्षण की महत्ता

जनवादी दृष्टि

अध्याय : 3

समकालीन युग चेतना (द्वितीय समरोत्तर प्रभाव)

किसी भी संवेदनशील कृतिकार के लिए अपने समय, काल और युग के बहुविध संस्पर्शो से वंचित रह जाना सम्भव नहीं होता । उसकी अनुभूति प्रवणता न केवल युगीन विशिष्टताओं को छूती है, अपितु उसका भावुक मन एक ऐसे धरातल पर समासीन हो जाता है, जहाँ कई बार वह युग-युगीन तथ्यों को आलेड़ित करता प्रतीत होता है । अत्यधिक ऊहापोह और उथल-पुथल वाली बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक के सजग, चिन्तनशील, अनुभूति प्रवण, भावुक कवि के लिए यह सहज सम्भाव्य था कि वह अपने युग की चतुर्दिक भाव और चिन्तन धाराओं को जाने, समझे और रूपायित करे । इसी चिन्तनशील और बौद्धिक दशक के कवि 'भारती' ने समसामयिक चेतना से प्रभावित होकर मानव समाज की विभिन्न स्थितियों, उसकी नियति और परम्पराओं को नये परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश की ।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात भारतीय जन जीवन के विघटनकारी परिवर्तन ने भावुक एवं सजग कवि को विशेष रूप से प्रभावित किया है । युद्धोपरान्त समसामयिक स्थितियाँ तो बदली हीं, साथ ही जन साधारण की मनोवृत्तियाँ भी ह्रासोन्मुखी होती गयीं । यह पतन की प्रक्रिया समूची भारतीय संस्कृति में व्याप्त हो गयी । परिणामस्वरूप मानव जीवन की प्रत्येक सद्‌वृत्तियों के समक्ष संशय के प्रश्न चिह्न लग गये और मानव जीवन गतिशीलता से दूर निराश, हताश ठहर सा गया । इस संक्रान्ति काल की परिस्थितियों, जन मानस की भावनाओं व सामाजिक प्रतिक्रिया को 'भारती' ने गहराई से समझा और उसे सामयिक वातावरण में ढाल कर व्यक्ति को सोचने, समझने व व्यवहार के लिए एक नयी दिशा प्रदान की है । कवि ने आधुनिक यथार्थ की गतिशीलता के साथ ही युगीन कटुता, उग्रता व परिवर्तन को सौन्दर्य दृष्टि के साथ ही यथार्थ दृष्टि से देखने का प्रयास किया । 'भारती का समस्त काव्य नये भाव बोध पर आश्रित आधुनिकता का पोषक है । वह आधुनिकता केवल कालगत भाव में नहीं वरन् चिन्तन विधि में है, दृष्टिकोण और विवेक में है, जीवन की स्पष्ट व्याख्या तथा ऐतिहासिक दायित्व में है, बल्कि इससे भी आगे आधुनिक इसलिये है कि आज के जीवन सत्य को आज के ही सन्दर्भ में देखने का प्रयोग करता है । उसमें तर्क संगत अवलोकन है । उसके आधार पर परीक्षण करके किसी समुचित निष्कर्ष पर पहुँचने की अदम्य लालसा है ।'[1]

---

1. आलोचना, दिसम्बर 1966 पृष्ठ 64

भारती का कवि मानव मूल्यों के प्रति अपने दायित्वों को भली प्रकार समझता है । यह दायित्व ही कविता की प्रमुखतम उपलब्धि है । इस दायित्व बोध के कारण कवि एकाकी रहते हुए भी प्रत्येक को अपनी भाव स्थिति से सम्बद्ध कर लेता है । भारती की भावस्थिति की सहजता उन्हीं के शब्दों में, 'जो अपने को रचनाकार मानते हुए भी रोजमर्रा की जिन्दगी में अपने को परदेशी नहीं मानते, ऐसे लोग असाधारणता का बाना नहीं ओढ़ते, सहज रूप में जीवन को सम्पूर्णता में जीने के हामी हैं, व्यक्तित्व को हारते नहीं, जीवन को अस्वीकारते नहीं ।'[1] सहज जीवन जीते हुए चिन्तन प्रधान यथार्थ अंकित करना कवि की विशेषता है । इसीलिये इनके सम्पूर्ण काव्य में सामयिकता एवं द्वितीय समरोत्तर प्रभाव से उत्पन्न विचारों, मनस्थिति, प्रवृत्तियाँ का यथार्थ अंकन हुआ है ।

द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त जनमानस तेजी से विघटन की ओर बढ़ता गया । स्वतंत्रता के पूर्व देखे गये भारतीय नवयुवकों के सपने टूटने लगे । वे द्वंद्वग्रस्त स्थिति में आस्था - अनास्था के बीच जीते रहे । अणुबम की विनाश कारी वृत्ति ने उन्हें क्षण भोगी बना दिया । उनका विश्वास, आस्था और सहृदयता कुण्ठा व लघुता में परिवर्तित हो गये । इस प्रकार युद्धोपरान्त पनपी प्रवृत्तियों का गहन प्रभाव 'भारती' की रचनाओं में पड़ा जो निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट है -

मोह भंग :

किसी भी साहित्यकार की साहित्यिक प्रवृति के विवेचन में पृष्ठभूमि की अहम् भूमिका होती है । प्रत्येक साहित्यकार के साहित्य के मूल में ऐसी अनेक परिस्थितियाँ होती हैं जो उसे व उसके साहित्य को प्रभावित करती रहती हैं और कवि जाने-अनजाने उनसे प्रभाव ग्रहण करता रहता है । नयी कविता भी अपनी पृष्ठभूमि व परिस्थितियों की उपज है । अतः नयी कविता के प्रमुख कवि 'भारती' का काव्य भी परिस्थितियों से पूर्णतः प्रभावित हुआ है ।

'भारती' के काव्य सृजन का काल अंग्रेज़ो के शासन का अन्तिम चरण माना जा सकता है । इस समय देश व्यापी आन्दोलन व क्रान्तियाँ हुईं । इधर आन्दोलन व उधर बंगाल में पड़ने वाला अकाल । यही 'तारसप्तक' के प्रकाशन का समय भी है । अतः 'तारसप्तक' के कवियों पर इस भयावह स्थिति का पूरा प्रभाव परिलक्षित होता है । बंगाल के अकाल व इंग्लैंड में मजदूर दल की विजय ने भारत के पक्ष में एक विशेष वातावरण तैयार करने में सहयोग दिया और जैसे - तैसे देश को स्वतंत्रता मिली । स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व देश

---

1. धर्मवीर भारती, 'सातगीत वर्ष' पृष्ठ - 6

के नागरिकों, नवयुवकों व बुद्धिजीवियों ने बड़े सपने संजोये थे । लेकिन स्वतंत्रता मिलते ही देश शरणार्थियों की समस्या, गाँधी की मृत्यु, पाकिस्तान का बंटवारा जैसी समस्याओं से घिर गया । इन घटनाओं का दर्द हर एक के दिल का दर्द था । आजादी के आरम्भिक तीन चार वर्षों की उथल-पुथल के बाद वातावरण में कुछ स्थिरता आयी । जवाहर लाल नेहरू ने देश को नया युग देने का प्रयास किया, किन्तु इनके प्रयासों के उपरान्त भी देश की आर्थिक स्थिति में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ । सारे के सारे लम्बे वादे झूठे साबित हुए । भारतीय राजनीति का वह बंधा हुआ ढांचा टूट गया जो सन् 1947 से चला आ रहा था । टूटते राजनैतिक ढांचे ने युवा वर्ग की आँखें खोल दीं । 'यह मोहभंग भारत के युवा मानस का था क्योकि पुरानी पीढ़ी के लोग राजनीति, सरकारी तंत्र और बड़े बड़े प्रतिष्ठानो से जुड़ गये थे । किन्तु विश्वविद्यालयों से ऊंची डिग्रियाँ लेकर निकलने वाले नौजवान जिन्दगी के चौराहे पर निराश खड़े थे । पहली बार उनकी आँखों में देश का मानचित्र धुंधला पड़ गया । भूख, बेरोजगारी और शोषण के दमघोटू माहौल में वे बेगाना हो गये, अपने ही घर में अजनबी ।'[1]

ऐसी स्थिति में नवयुवकों के मन में देश के प्रति बनी हुई सुखद कल्पना टूट गयी, उनके सारे सपने बिखर गये और स्वतंत्रत देश में खुशहाल जीवन जीने का उनका मोह टूट गया । यही टूटता हुआ मोह नयी कविता का प्रमुख स्वर बना । चूकिं 'भारती' नयी कविता के समर्थ हस्ताक्षर हैं, अतः उनकी कविता में मोहभंग बड़ी कटुता लेकर उभरा । यद्यपि कवि प्रारम्भिक रचनाओं में स्वप्निल एवं काल्पनिक जीवन जिया, किन्तु उसने देश की इस बदलती तस्वीर के दोनो रूखों को देखा, समझा और जाना तथा अपने काव्य में साकार किया । 'भारती' की कविता में 'मोहभंग' तेजी से उभरा और उन्होंने सामाजिक दायित्व का निर्वाह करते हुए इस स्थिति को स्पष्ट किया । कवि ने अपनी रचनाओं में सामान्यजन की मुक्ति का प्रसंग उठाया । प्रजातंत्र की दुर्दशा को कवि ने महसूस किया और लिखा - 'भारत के जनतंत्र में तंत्र विशिष्ट लोगों के हाथ में है और जन ज्यों का त्यों दास बना हुआ है ।'[2] कवि ने सामयिक स्थिति से क्षुब्ध होकर लिखा कि -'मनुष्य के बहुआयाम वाले विराट जीवन को केवल राजनीति के छोटे से पैमाने से मापने की कोशिश की जाती है ।'[3] कवि नहीं चाहता कि राजनीति व्यक्तित्व का मापदण्ड बने । वह व्यक्ति को प्रमुखता देता है, राजनीति को नहीं । उसका मत है - 'प्रगति की कसौटी मनुष्य है । मनुष्य अपनी आन्तरिक मर्यादाओं सहित ।'[4] और जब उसकी स्वतंत्रता उसकी होती हुई उसे नहीं मिलती एवं वह अपने गौरव से वंचित रह जाता है, तब उसका मोहभंग होता है । उसे यह अनुभव होता है -

---

1. रामवचन राय, 'नयी कविता उद्‌भव और विकास', पृष्ठ - 21
2. धर्मवीर भारती, 'मानव मूल्य और साहित्य', पृष्ठ - 74
3. धर्मवीर भारती, 'मानव मूल्य और साहित्य', पृष्ठ - 74
4. धर्मवीर भारती, 'मानव मूल्य और साहित्य', पृष्ठ - 74

'वह विजय और खोखली निकलती आती
विश्वास सभी घन तम में खोते जाते ।'[1]

यहाँ कवि ने स्पष्ट किया है कि विजय प्रसन्नता न होकर आत्म हत्या है । महायुद्ध के बाद की जीत हो या स्वतंत्रता प्राप्ति, जब तक मानव का अंतर्मन खोखला है, जीत कर भी वह जीत नहीं सकता । ऐसी जीत आत्मघात के अतिरिक्त कुछ भी नहीं -

'और विजय क्या है ?
एक लम्बा और धीमा
और तिल - तिलकर फलीभूत
होने वाला आत्मघात ।'[2]

आधुनिक युग की परिवर्तित परिस्थितियों में आज का मानव यह अनुभव करता है कि जीवन मूल्य बदल चुके हैं, धर्म-कर्म नीति, न्याय व सत्य की परिभाषाएँ भी बदल चुकी हैं तथा ये परिवर्तित परिभाषाएँ ही व्यक्ति को मूल्यांधता की ओर ले जा रही हैं । ऐसी स्थिति में नैतिक मूल्यों से प्रभावित व्यक्ति का मोहभंग होना स्वाभाविक है । अंधायुग का युयुत्सु इसी मोहभंग की स्थिति से गुजर रहा है -

'अन्तिम परिणति में
दोनो जर्जर करते हैं
पक्ष चाहे सत्य का हो
अथवा असत्य का ।'[3]

वर्तमान की विषगताओं में जीता हुआ व्यक्ति सत्य, नीति, न्याय न कह पाने के कारण कुंठित हो रहा है, एवं उसका व्यक्तित्व अंतर्मुखी हो रहा है । ठीक वही स्थिति 'अंधायुग' के प्रायः सभी चरित्रों की है । युद्ध के बाद की स्थिति की भयावहता के कारण अंधायुग का प्रत्येक पात्र टूटा हुआ, निराश व पश्चाताप से भरा हुआ है ।

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ - 115
2. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ 119
3. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ - 59

मनुष्य अपने विकास व उन्नति के अनेक रंगीन सपने संजोता है । इन सपनों को पूरा करने में वह अपने देश का, उसकी नीतियों का सहयोग चाहता है । जब उसे ये सब नहीं प्राप्त होते तो वह अन्याय, असत्य, अनैतिकता, युद्ध आदि विकृत विचारधाराओं का आश्रय लेता है जो वर्तमान में रंगीन दिखने के उपरान्त भविष्य के लिये घातक होती हैं । इन सबका एक नशा होता है और इस नशे में डूबा व्यक्ति वह सब कुछ करता जाता है जो उसे नहीं करना चाहिये । लेकिन जब उसका मोह टूटता है तो निराशा व अकेलेपन के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं आता । 'अंधायुग' के युधिष्ठर ख़ाली बैठे घुटनों में सिर दबाये अकेलेपन व मोहभंग के प्रतीक हैं -

'ऐसे भयानक महायुद्ध को
अर्धसत्य, रक्त पात, हिंसा से जीतकर
अपने को बिल्कुल हारा हुआ अनुभव करना
यह भी यातना ही है ।'[1]

भारती के कवि ने परतंत्रता के दर्द को भोगा, स्वतंत्र भारत में विघटित होते मूल्यों को देखा तथा मानव की आस्था को, उसके भोले - निश्छल विश्वासों को टूटते भी देखा । इसीलिये उनकी कविताओं में टूटती हुई आस्था, विश्वास और सपनों का चित्रण है। युद्ध में मानव मूल्यों का हनन होना आवश्यक है । घृणा, हिंसा व प्रतिहिंसा की भावनाएँ ही मूल्यों का हनन करती हैं । अश्वत्थामा के माध्यम से इसी मूल्यांधता की अभिव्यक्ति हुई है -

'सुन लो कृष्ण
यह अचूक अस्त्र अश्वत्थामा का
निश्चित गिरे जाकर
उत्तरा के गर्भ पर
वापस नहीं होगा ।'[2]

स्वतंत्रता के पूर्व संजोये गये सपनों में एक सपना यह भी था कि प्रजातंत्र में प्रत्येक व्यक्ति का देश होगा, वह अपने देश के लिए बलिदान देगा और स्वतंत्र भारत का नागरिक बनकर गौरवान्वित होगा । लेकिन स्वतंत्रता के बाद नेहरू युग आया और वह सब नहीं हुआ जिसे नवयुवकों नयी पीढ़ी ने चाहा।वह सब भी नहीं

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ -106
2. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ - 96

हुआ जो श्रेष्ठ था, उचित था, बल्कि वह सब हुआ, जिसे राजनैतिक दावपेंच जानने वालों ने चाहा । देश में पूंजीपति अल्पसंख्यक होने के उपरान्त भी छाया रहा । सत्ता जनता के हाथों में न होकर पूंजीवादी ताकतों के पास चली गयी । जिसने देश की आजादी में कुर्बानी दी, उसे कुछ भी न मिला । वैसे तो 'कुछ और' की स्वतंत्रता सेनानियों को आकांक्षा भी न थी । वे तो देश को उन्नत देखना चाहते थे, लेकिन सत्ता का दुरूपयोग व देश की दुर्दशा ही हुई । इस कटु सत्य को 'अंधायुग' की निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है -

'सत्ता होगी उनकी
जिनकी पूंजी होगी ।'[1]

स्वतंत्रता के बाद मानवता से व्यक्ति का विश्वास उठने लगा और हर व्यक्ति छद्मवेशी बन कर दूसरे को कष्ट देने लगा । वास्तविकता को ठुकराया गया, सत्य, न्याय, विश्वास एवं आस्था की हार हुई एवं असत्य, अन्याय, अविवेक जीतने लगे -

'जिनके नकली चेहरे होंगे
केवल उन्हें महत्व मिलेगा ।'[2]

स्वतंत्रता के लिये किए जाने वाले प्रयत्न बलिदान, सत्याग्रह आदि का कोई अर्थ नहीं निकला । श्रम, साहस, अस्तित्व निरर्थक हो गये, तथा स्वार्थी व धनलोलुप छोटे से समुदाय ने सारे देश को अपने अधीन कर लिया। ब्रिटिश हुकूमत से मुक्त होने के बाद देश स्वतंत्रता के भ्रम में डूबा परतंत्र ही बना रहा । उसे अपनी अस्तित्वहीनता का बोध हुआ -

'मेहनत हमारी निरर्थक थी
आस्था का
साहस का
श्रम का
अस्तित्व का हमारे
कुछ अर्थ नहीं था
कुछ भी अर्थ नहीं था ।'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ - 12
2. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 12
3. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ - 15

'अंधायुग' में प्रहरी द्वारा कहे गये उपर्युक्त संवाद एक प्रहरी की ही स्थिति नहीं, देश के हर एक व्यक्ति की मनः स्थिति का चित्रण करते हैं । स्वतंत्रता के पूर्व के निराश जीवन को स्वतंत्रता के बाद नया अर्थ, नया क्षितिज मिलेगा, इसी आशा में देशवासी जी रहे थे । लेकिन शीघ्र ही उनका मोहभंग हो गया और जीवन का गलियारा अर्थहीन एवं सूना हो गया व आशाओं पर जीता मनुष्य चुका हुआ -

'कुछ भी अर्थ नहीं था
जीवन के अर्थहीन
सूने गलियारे में
पहरा दे देकर
अब थके हुए है हम
अब चुके हुए हैं हम ।'[1]

जब विरोधी विचारधाराओं से उत्पन्न मानव स्वार्थ परस्पर टकराते हैं, तब युद्ध होते हैं और दोनों ही पक्ष अपने-अपने स्वार्थो में अन्धे हो जाते हैं । एक दूसरे को अत्यधिक कष्ट पहुँचाना ही उनका ध्येय बन जाता है । अंततः मारकाट, विध्वंस के बाद जीत भी होती है लेकिन वह जीत हार जैसी होती है । क्योंकि भयंकर नर संहार के उपरान्त विरोधी पक्ष के पास इतना कुछ बचता ही नहीं, जिस पर शासन किया जा सके । तब व्यक्ति का युद्ध, जीत शासन के प्रति पलता हुआ मोह टूट जाता है और वह दुख व पश्चाताप में डूबने लगता है । अंधायुग में वर्णित महाभारत युद्ध की विजय इसी रूप में अभिव्यक्त हुई है -

सब विजयी थे, लेकिन सब थे विश्वास ध्वस्त,
थे सूत्रधार खुद कृष्ण, किन्तु थे शापग्रस्त ।'[2]

संक्रान्ति काल की घुटन, अनिश्चय की स्थिति व गंतव्य हीनता को नयी पीढ़ी ने भोगा परिणामस्वरूप उसका अपने पौरूष साहस व देशप्रेम के प्रति विश्वास टूटता गया । देश के लिए सब कुछ कर सकने वाली उसकी मुट्ठियाँ जेबों में बन्द हैं अतः नया दौर आने की अब उम्मीद भी छूट गयी है -

'सूनी सड़कों पर ये आवारा पाँव
माथे पर टूटे नक्षत्रों की छाँव
लड़ने वाली मुट्ठी जेबों में बन्द
नया दौर लाने में असफल हरछन्द
कब तक आखिर कब तक ?'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 15
2. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 105
3. धर्मवीर भारती, 'सातगीत वर्ष', पृष्ठ - 19

भारती की रचनाएँ बाहरी और भीतरी उथल - पुथल का दर्पण हैं । स्वयं कवि के शब्दों में -'जो खरा काव्य है उसकी रचना प्रक्रिया में, कितने ही अप्रत्यक्ष रूप में हो, किन्तु जीवन प्रक्रिया अनिवार्यतः उलझी रहती है ।'[1]

आस्था एवं अनास्था :

नयी कविता का सामाजिक परिवेश यथार्थ संपृक्त है । यथार्थ सदैव आस्था व अनास्था के बीच पलता है । नया कवि यथार्थवादी होने के कारण आस्था की ओर उन्मुख हुआ किन्तु निराशा की स्थिति में अनास्था के अंधकार में भटक गया ।

'भारती' का काव्य भी युगीन परिस्थितियों व परिवेश के प्रभाव से आस्था - अनास्था दोनों को समेटे हुए आगे बढ़ा है ।

'भारती' का प्रथम काव्य संकलन 'ठंडालोहा' छायावादोत्तर भावभूमि पर आधारित होने के कारण कैशोर्य भावुकता एवं रूमानियत से पूर्ण है, इसलिए यहाँ आस्था-अनास्था की अपेक्षा कवि प्रेम, विरह एवं निराशा में डूबा रहा, फिर भी इस संकलन की कुछ कविताएँ आस्था की अभिव्यक्ति में सहायक हुई हैं । यहाँ कवि के मन में उमंग एवं उत्साह है । वह सामाजिक जीवन को केन्द्र बना कर आस्थावान रहते हुए भविष्य की मंगल कामना बड़े दृढ़ स्वरों में करता है -

'क्या हुआ दुनिया अगर मरघट बनी,
अभी मेरी आखिरी आवाज़ बाकी है,
हो चुकी हैवानियत की इन्तेहा
आदमीयत का अभी आगाज़ बाकी है
लो तुम्हें मैं फिर नया विश्वास देती हूँ
नया इतिहास देती हूँ ।'[1]

विघटित मानव मूल्यों एवं ह्रासशील व्यक्ति चेतना का साक्षात्कार करता हुआ कवि अनुभव करता है कि मानव मन की चेतना लुप्त हो गयी है । फिर भी वह आस्था के पथ से विचलित नहीं होता । उसे विश्वास है कि -

---

1. धर्मवीर भारती 'सात गीत-वर्ष', पृष्ठ -9   2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 95

मेरे ही कदमों से

जिन्दा सूर्य उगेगा ।'[1]

'भारती' के कवि को जीवन के प्रति तथा अपने उज्जवल भविष्य के प्रति पूर्ण आस्था है । इसीलिए निराशा के अंधियारे में भी वह आशा के सूर्य की कामना करता है -

'रात

पर मैं जी रहा हूँ निडर

जैसे कमल

जैसे पंथ

जैसे सूर्य

क्योंकि कल भी हम खिलेंगे

हम चलेगें

हम उगेंगे ।'[2]

यहाँ कवि अपनी आस्था की अनुभूति अकेले न करके उसे समष्टि के साथ बाँटता है । वह हर गंतव्यहीन को आस्था के द्वारा राह दिखाता है । उसका विश्वास है कि वह अकेला नहीं है । वे सब भी उसके साथ है, जिन्हें परिस्थितियों ने भटका दिया है -

'हम चलेंगे

और वे सब साथ होंगे

आज जिसको रात ने भटका दिया है ।'[3]

कवि भाग्यवादी नहीं कर्मवादी है । उसका मत है कि मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है । जीवन में यदि कहीं उसे सफलता व सार्थकता मिल सकती है तो वह अपनी ही शक्ति से । उसकी पौरुषमय चेतना ही उसे सफल बना सकती है । 'प्रमथ्युगाथा' में साम्राज्यवादी सामंती, कुत्सित रूप में उपजे भय, आतंक व दासता, जन साधारण की साहस हीनता को अभिव्यक्ति देकर कवि ने हर व्यक्ति में 'प्रमथ्यु' होने की बात कह कर अपनी आस्था स्पष्ट की है -

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 85,

2. धर्मवीर भारती, 'सातगीत-वर्ष' पृष्ठ - 43

3. धर्मवीर भारती, 'सात गीत-वर्ष', पृष्ठ - 43

'अकेला मैं रहूंगा नहीं
सबके हृदयोंमें मैं जाँगूगा ।'[1]

यही 'प्रमुथ्यु' भविष्य निर्माण की सर्जनात्मक प्रक्रिया का प्रेरक है और उसकी प्रेरणा से कवि आस्थावान है -

'कोई तो ऐसा दिन होगा
जब मेरे ये पीड़ा सिक्त स्वर
उसके मन को बेध
मूर्च्छित प्रमुथ्यु को जगायेंगे ।'[2]

व्यक्ति सफलता के गंतव्य तक पहुंचने के पूर्व मिली असफलता से हारता है, टूटता है, किन्तु इसी हारने, टूटने, खीझने और बिखरने से वह बनता भी है । ये सब उसके पौरूष को सम्बल देते हैं । अतः व्यक्ति कितना ही निराश हो, अंततः उसें आत्मशक्ति का आश्रय लेना पड़ता है । मानव की यही आत्मशक्ति कवि की आस्था है और नयी पीढ़ी की प्रेरणा भी । टूटी हुई आशा के क्षणों में एकमात्र आत्मशक्ति ही बचती है और इसी आत्मशक्ति के प्रति आस्थावान होकर कवि प्रभु से कहता है -

'प्रभु
तुम तो केवल केवल पथ हो
चलना तो हमको ही होगा
हिम की ठंडी चट्टानों पर
गलना तो हमको ही होगा
आखिर वे होंगे यही चरण
जिनसे इस लक्ष्य भ्रष्ट मन को
मिल पायेगी अन्त में शरण ।'[3]

'जिन परिस्थितियों एवं प्रेरणाओं ने प्रयोगवादी कवि को व्यक्तिवादी तथा अहंवादी बनाया उन्हींने उसे युग जीवन के प्रति एक अनास्थामय दृष्टिकोण से भी अभिभूत कर दिया । अनास्था से आक्रान्त प्रयोगवादी कवि ने न केवल साहित्य के परम्परागत मूल्यों का तिरस्कार किया वरन् समाज और जीवन के परम्परागत और

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत-वर्ष', पृष्ठ-28 2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत-वर्ष' पृष्ठ - 24
3. धर्मवीर भारती, 'सात गीत-वर्ष' पृष्ठ-42

वर्तमान मूल्य भी उसकी उपेक्षा के पात्र बने ।'[1] उसे चारों ओर एक अपर्याप्तता दीख पड़ी । फलतः उसने एक साथ सबके प्रति अविश्वास की घोषणा की व अपनी अनास्था की प्रवृत्ति का औचित्य भी प्रमाणित किया । 'भारती' का भी परवर्ती काव्य इसका अपवाद नहीं है। जब कवि का मोहभंग हुआ तो अनास्था की प्रवृत्ति काव्य में उभर कर सामने आयी । वह सामाजिक परिवेश के प्रति शंकालु हो गया । इसी शंकालु प्रवृत्ति के कारण सामाजिक पथ पर बढ़ते कवि के कदम बार-बार ठिठकते हैं । मन पर एक प्रश्न चिहन लगा रहता है - अपने अस्तित्व के प्रति -

'कूड़े सा हमको तज कर तट के पास
मंथर गति से बढ़ जायेगा इतिहास
सामूहिकता भी केवल
साबित होगी जिस दिन छल
अपनी वैयक्तिकता हार
क्या पायेंगे प्रभु ?
हम क्या पायेंगे ?'[2]

'भारती' का कवि समय के कठिन दौर से गुजरा है । उसने चतुर्दिक वातावरण में निराशा का गहन कुहासा देखा है, स्वयं को असहाय, एकाकी अनुभव किया है एवं सामाजिक रूढ़ियों में आबद्ध होकर भी वह संघर्षरत रहा है । फलतः रूढ़ियों व संघर्ष के इस द्वन्द्व में कवि अनास्था की ओर उन्मुख हुआ। विभिन्न क्षेत्रों से प्रभावित कवि की अनास्था कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त हुई है -

'मैं हूँ नदी तल की रेत
लेकिन किसी भी क्षण पांवो तले से बह जाऊंगा ।'[3]

वर्तमान में आधुनिकता के नाम पर नया संदर्भ पल रहा है । जिसमें भावनागत नवीनता है । महायुद्ध के बाद के परिणामों ने सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं नैतिक जीवन की तमाम पुरानी मान्यताओं को तोड़ डाला है । हर ओर अव्यवस्था व गंतव्यहीनता का अंधकार छा गया है । निराशा बढ़ी है । फलतः साहित्य में भी निराशा के कारण अनास्था बढ़ी है । यहाँ कवि ईश्वर के प्रति आस्थावान नहीं है । पूजा के फूलों को वह शीशे के टुकड़ों के समान कष्टदायी मानता है ।

---

1. शिवकुमार मिश्र, 'नया हिन्दी काव्य', पृष्ठ - 225
3. धर्मवीर भारती 'सातगीतवर्ष', पृष्ठ - 18
3. धर्मवीर भारती, 'सात गीत-वर्ष', पृष्ठ- 71

'पांवो में गड़ेंगे जब

सामने पड़ेंगे जब

तुमको दिखायेंगे

कुछ टूटी शकलें

प्रभुताई, मसीहाई की भौंडी नकलें ।'[1]

इतना ही नहीं, आधुनिक आचरण के विभ्रमों का प्रतीक 'अंधायुग' के 'युयुत्सु के चरित्र में आस्था के प्रति गहन असंतोष अभिव्यक्त हुआ है । वह आस्था को घिसे हुए सिक्के की उपमा देकर अट्टहास करता है। जिस प्रकार घिसा हुआ सिक्का अनुपयोगी होता है, हर जगह असफल होता है, उसकी प्रकार आस्था पर आश्रित व्यक्ति भी समाज के लिए अनुपयोगी है -

'आस्था नामक यह घिसा हुआ सिक्का

अब मिला अश्वत्थामा को

जिसे नकली और खोटा समझ कर मैं

कूड़े पर फेंक चुका हूं वर्षों पहले ।'[2]

निष्कर्षत: 'भारती न तो पूर्ण रूपेण आस्था की अभिव्यक्ति कर सके हैं और न अनास्था की । समय परिस्थितियों व परिवेशगत प्रभावों के कारण इनके काव्य में दोनों ही प्रवृत्तियाँ साथ चली हैं । एक ओर यदि 'ठंडालोहा' में भावुकता, प्रेम में निराशा के कारण अनास्था की अभिव्यक्ति हुई है तो 'सात गीत वर्ष' में प्रौढ़ चिन्तन, जनवादी दृष्टि एवं सामाजिक परिवेश व समस्याओं से प्रभावित होने के कारण आस्था का चित्रण हुआ है ।

'सात गीत वर्ष' में कवि जीवन के प्रति आस्थावान है । उनका विश्वास है कि आज के अधूरे व्यक्तित्व कल पूर्ण बनेगें और टूटती हुई जिन्दगी के सूत्र जुड़ेंगे । यहाँ कवि न तो पलायन में विश्वास करता है और न निराश होकर जिन्दगी से मुख मोड़ता है अपितु वह स्थिति की जटिलता व जीवन की वास्तविकता को अपनी आस्था के सहारे भोगने का पक्षधर है ।

द्वितीय महायुद्ध के परिवेश जन्म प्रभाव के कारण नये कवियों में आस्था की अपेक्षा अनास्था का स्वर अधिक मुखर हुआ है, किन्तु 'भारती' के कवि ने अनास्था में जीते हुए भी आस्था के प्रति लगाव व सजगता की अभिव्यक्ति की है, क्योंकि अवतारवाद, भाग्यवाद आदि पर आस्था रखकर ही वे आधुनिक युग की विसंगतियों

---

1. धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष', पृ0-84   2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृ0 - 126

पर प्रकाश डाल सके हैं । यही कारण है कि उन्होंने अनास्था के माध्यम से भी आस्था को अभिव्यक्त कियाहै । ये पंक्तियाँ कवि की इसी प्रवृति की ओर संकेत करती है -'मुझे यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं कि अंधो के माध्यम से ज्योति की कथा कहने का उपक्रम, अनास्था के माध्यम से आस्था की अभिव्यक्ति का यह प्रयास केवल भारती का नहीं, आज के अधिकांश कवियों का है ।'[1]

भारती का कवि हर एक लघुतम रूप के प्रति आस्थावान है, क्योंकि हर व्यक्ति एक छोटी सी इकाई है । चाहे वह 'वामन अवतार' का बौना स्वरूप हो या 'रथ का टूटा पहिया' । 'वामन अवतार' के द्वारा जब तीन पग में सारी धरती नापी जा सकती है तो फिर मनुष्य की कर्मण्यता के प्रति अनास्था, अविश्वास क्यों ? -

'हर मनुष्य बौना है लेकिन
मैं बौनों में बौना ही बन कर रहता हूँ ।
हारो मत साहस मत छोड़ो
इससे भी अथाह शून्य में
बौनों ने ही तीन पगों में धरती नापी ।'[2]

'भारती' का कवि अपनी विशिष्टता के प्रति भी सतर्क है व लघुता का भी उसे ध्यान है । वह महान बन कर मूर्ति के समान निष्क्रिय हो जाना नहीं चाहता, बल्कि अपने परिवेश व अनुभूति के प्रति पूर्णतः ईमानदार बने रहना, उसकी आंतरिक अभिलाषा है । वह संघर्षरत रहकर संशय व कुण्ठा के अंधेरे में आस्था का दीप जलाये बढ़ता है । उसकी यह आस्था वर्तमान के प्रति ही नहीं अपितु भविष्य के लिए भी है । हर आने वाले कल को वह अपनी कर्मठता से बदल देगा, उसे यह विश्वास है ।

आस्था के क्षणों में 'भारती' का विद्रोही मन मानवीय सौन्दर्य को उद्घाटित करता है । जब उसके भीतर का खालीपन, उसकी लक्ष्यहीनता उसे कुण्ठाजन्य घुटन देने लगती है तब 'अनजान पगध्वनियाँ' उसे गति, चेतना और असीम आस्था प्रदान करती हैं एवं उसके निराश मन को विश्वास देती हैं कि जब तक गतिमय मानव सन्तानें है तब तक आस्था के छन्द कवि वाणी से निसृत होते रहेंगे -

'ठहरो । ठहरो । ठहरो । हम आते हैं,
नयी चेतना के बढ़ते अविराम चरण
हम मिट्टी की अपराजित गतिमय सन्तानें
हम अभिशापों से मुक्त करेंगे कवि का मन ।'[3]

---

1. सुन्दर लाल कथूरिया, 'साहित्य आधुनिक : अत्याधुनिक', पृष्ठ - 12
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृ0- 85
3. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृ0-56

यहाँ कवि का मन वास्तव में अनास्था के अभिशाप से मुक्त हो चुका है । उसकी घायल आत्मा मूक, दलितों के माध्यम से जीवन सत्य की तलाश करती है, क्योंकि इन्ही पराजित पथहीनों की गहरी आत्मीयता उसकी आस्था को सवाँरती है -

'पथहीनों से मिली प्रेरणा उसे पंथ की
पराजितों के विश्वासों से विजय मिलेगी।
कौन जानता है । वह शायद
इस संबल का आश्रय पाकर
महाकाल के जबड़ों में से सत्य जीत कर
गरज पान कर । अमृत लाये । वापस आये? '[1]

इस प्रकार समय व परिस्थितियों के प्रभाव से 'भारती' के काव्य में अनेक विरोधी विचार धाराओं की अभिव्यक्ति हुई है, क्योंकि हर क्षण का महत्व स्वीकारने वाले भारती जी से किसी शाश्वत धारणा की आशा नहीं की जा सकती । इसलिए इनके काव्य में एक ओर युग सापेक्ष मान्यताएँ हैं, नवीनताएँ है तो दूसरी ओर पारम्परिकता का निर्वाह भी । दोनों ही प्रकार की विचारधाराओं के द्वंद्व से काव्य में आस्था एवं अनास्था का मिश्रित स्वर सुनाई देता है ।

लघुता :

भारतीय चिन्तन परम्परा प्रारम्भ से ही लघुता के प्रतिजागरूक व संवेदनशील रही है । भारतीय दर्शन मानव जीवन को लघुता नश्वर मानता है । संत साहित्य की दास्य भक्ति के अंतर्गत तो उपासक की क्षुद्रता और लघुता का ही उल्लेख है । किन्तु वहाँ अस्तित्व लुप्त सा है । आगे चलकर मानवीय अस्तित्व के प्रति संवेदनात्मक दृष्टिकोण का विकास हुआ और यह महसूस किया जाने लगा कि लघुता का भी अपना मूल्य है । सामाजिक चेतना के इस विकास का अनुभव करते हुए रहीम ने लिखा -

'रहिमन देख बड़ेन को लघु न दीजिये डारि ।
जहाँ काम आवे सुई कहा करे तरवारि ।

छायावाद में लघुता के प्रति कवियों के अलग अलग दृष्टिकोण व्यक्त हुए । महादेवी की कविता में इस प्रवृत्ति का उल्लेख बार-बार हुआ है । किन्तु लघुता का कोई स्वतंत्र दर्शन नहीं बन सका । प्रगतिवाद में लघुता का यह दर्शन सर्वहारा वर्ग को प्रतिष्ठा दिलाने के उद्देश्य से सामने आया ।

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 85

नयी कविता में लघु मानव का दर्शन कुछ विशेष रूप से निर्मित हुआ । इसका बहुत कुछ श्रेय समाजवादी विचारक कवि लक्ष्मीकान्त वर्मा को है । मानवीय लघुता की मूल्य रूप में स्थापना करते हुए लक्ष्मी कान्त वर्मा लिखते है कि - 'जब हम मनुष्य को मनुष्य के रूप में ग्रहण करने की चेष्टा करेंगे तो निश्चय ही हमारी दृष्टि में 'सुपरमैन' या अधिनायक का रूप नहीं आकर उस व्यक्ति का रूप आयेगा, जो अपनी लघुता को लिए हुए अपने लघु परिवेश में सतत गतिशीलता के साथ अपनी दृष्टि और वाणी में आज भी अपने प्रति आस्था जीवित रखे हुए है । आज इस मानव और इसकी आस्था के अन्वेषण की आवश्यकता इसलिए है कि इतिहास के 'सुपरमैन' या जनसत्ता के अधिनायक अथवा 'देवदूत' या मसीहा ने अपनी समस्त महत्ता को लघु मानव की बलि देकर ही अपनाया है । .... मानव सभ्यता चोटी की स्थापनाओं से नहीं, वरन् बुनियादी स्थापनाओं द्वारा विकसित होती है ।'[1] इसीलिए इन बुनियादी स्थापनाओं में लघु मानव का महत्व निहित है । 'लघुमानव की कल्पना 1942 से लेकन 1956 के बीच हिन्दी के कुछ तरूण लेखकों के सह-चिन्तन का परिणाम थी । लघु मानव एक संज्ञा थी जिसे समस्त व्यापक मानव आत्मा का लघुतम बोध कहा जा सकता है ।'[2]

लघु मानव अपनी सीमा पर, अपने स्तर पर, अपने परिवेश में मानव सार्थकता को चरितार्थ करता है । वह आडम्बरयुक्त विश्वबंधुत्व से कहीं अधिक समसामयिक दायित्व को महत्वपूर्ण समझता है । लघु मानव भविष्य के प्रति आस्थावान है, किन्तु अपने लघु परिवेश की सार्थकता के साथ । क्योकि परिवेश की लघुता की सार्थकता से विच्छिन्न हो जाने पर उसकी यथार्थ की पकड़ शिथिल हो जायेगी और तब वह अयथार्थ की ओर उन्मुख हो जायेगा । अर्थात् लघुमानव के भविष्य की आस्था भी उसके परिवेश की आस्था में ही सार्थक होती है ।

'यह लघु मानव हर स्थिति में अपने अंह का पोषक और रक्षक है । यह किसी महामानव के सामने झुकने का अभिलाषी नहीं है ।'[3]

नयी कविता में जिस लघुमानव की प्रतिष्ठा हुई है । वह अपनी लघुता में ही महान है एवं अन्तिम सांस तक अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संकल्पबद्ध है उसका अहं अपराजेय है । वह कहीं भी झुकना नहीं जानता । 'अज्ञेय' ने भी लघुता के भीतर शक्ति, साहस और अजेय अहं का उल्लेख किया है -

---

1. लक्ष्मीकान्त वर्मा, 'नयी कविता के प्रतिमान', पृष्ठ - 161
2. लक्ष्मीकान्त वर्मा, 'नयी कविता पुराने निष्कर्ष, पृष्ठ - 93
3. लक्ष्मीकान्त वर्मा, 'नयी कविता के प्रतिमान', पृष्ठ - 163

'यह दीप अकेला स्नेह भरा

है गर्व भरा मदमाता

पर इसको भी पंक्ति को दे दो

यह वह विश्वास नहीं जो अपनी लघुता में भी कांपा ।'[1]

इसी लघुमानव की लघुता की अभिव्यक्ति 'भारती' की कविताओं में भी हुई है । उन्होंने अनेक स्थानों पर इस लघुता को स्पष्ट किया है । लघुता की अनुभूति के कारण कवि ने अपने पापों व अपराधों को स्वीकार किया है -

'हम सबके दामन पर दाग

हम सबकी आत्मा में झूठ

हम सबके माथे पर शर्म

हम सबके हाथों में टूटी तलवारों की मूठ ।'[2]

नयी कविता में चित्रित होने वाले यथार्थवादी मानव को प्रत्येक क्षण अपनी लघुता की अनुभूति होती है । 'नयी कविता में चित्रित होने वाला मानव यथार्थ है । उसे अपनी लघुता का ज्ञान है । वह अपनी विशिष्टिता के प्रति भी सर्तक है । आज मानव बड़ा बन कर भी ऐसा नहीं बनना चाहता कि जिससे वह पत्थर की प्रतिभा के समान पूज्य बने ।'[3] नयी कविता में चित्रित लघु मानव उपेक्षा व तिरस्कार का प्रतीक नहीं है, अपितु उसके व्यक्तित्व में शक्ति और गरिमा के तत्व विद्यमान हैं । दयनीय और असहाय स्थिति से ऊपर उठने के लिए वह शक्ति और सामर्थ्य से पूर्ण है । इतिहास को मोड़ देने के लिए विश्वास से भरे हुए भारती का कवि 'टूटा पहिया' लेकर अपने लघुत्व के प्रति भी आस्थावान है । इस कविता के माध्यम से कवि ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि उपेक्षित, तिरस्कृत व गर्हित समझे जाने वाले व्यक्ति भी कम महत्व के नहीं होते । चक्रव्यूह में फँसे अभिमन्यु ने 'टूटे पहिये' को हाथ में लेकर ब्रह्मास्त्र से लोहा लिया । यह जरूरी नहीं कि सबल व्यक्तित्व ही इतिहास की गति मोड़ने में सफल हो सकते है, बल्कि कभी-कभी तो लघु व्यक्तित्व ही वास्तविक विजय का कारण बनते है ।

वर्तमान में यह भी आवश्यक नहीं कि समर्थ, सवर्ण ही युग जीवन की धारा मोड़े दलित व निम्न समझा जाने वाला वर्ग भी मानवीय नैतिक मूल्यों का सम्बल बन सकता है । सामाजिक विषमताओं के चक्रव्यूह में घिरे मनुष्य के चारित्रिक विघटन को रोकने के लिए 'टूटा पहिया' कवच बन सकता है । पता नहीं यह कब काम आ जाये । शायद इसके प्रयोग से इतिहास ही बदल जाये -

1. सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', 'बावरा अहेरी', पृष्ठ - 63

'मैं रथ का टूटा पहिया हूँ

लेकिन मुझे फेंको मत

इतिहास की सामूहिक गति

सहसा झूठी पड़ जाने पर

क्या जाने, सच्चाई

टूटे पहियों का आश्रय ले ।'[1]

इस प्रकार भारती की कविता में लघुता की प्रतिष्ठा यथार्थ के धरातल पर हुई है । कवि अपने परिवेश के प्रति अत्यन्त जागरूक है, किन्तु लघुता से सम्बन्धित कविताएँ अल्प मात्रा में हैं ।

अस्तित्ववाद :

अस्तित्ववाद मानव जीवन को उसकी यथार्थता और समग्रता में विश्लेषित करने का दर्शन है। 'अस्तित्ववाद का आरम्भ प्रसिद्ध दार्शनिक सारेन कीर्कगार्ड के चिन्तन से माना जाता है । औद्योगिक क्रान्ति के बाद योरोप की बदली हुई स्थितियों के बीच चिन्तन को एक नया धरातल मिला था । मनुष्य और मशीन के नये रिश्ते जुड़े थे और वैज्ञानिक अनुसंधानों के फलस्वरूप मानसिकता में एक बदलाव आया था । खंडित होते हुए मूल्यों और टूटते हुए विश्वासों के बीच आदमी प्रश्नाकुल हो उठा था । इसी पृष्ठभूमि में अस्तित्ववाद पनपा ।'[2]

केवल विदेशों में ही नहीं, भारतीय चिन्तनधारा में भी अस्तित्ववादी विचार तत्वों का उल्लेख मिलता है । बौद्ध धर्म में दुख और करूणा का जो स्वरूप मिलता है वह अस्तित्ववादी चिन्तन के बहुत निकट है, क्योंकि अस्तित्ववाद और भारतीय दर्शन दोनों की चिन्तन प्रक्रिया आत्मपरक है । पाश्चात्य अस्तित्ववादियों की तरह भारतीय दार्शनिकों ने भी यह स्वीकार किया है कि दर्शन मानवीय अस्तित्व की उपेक्षा नहीं कर सकता बल्कि उसके स्वरूप और संभावनाओं को प्रकट करता है ।

पिछले कुछ दशकों से हिन्दी में भी अस्तित्ववादी विचारधारा का विकास हुआ एवं नयी कविता में इसका रूप निखर कर सामने आया । नयी कविता में एक बात जो सबसे अधिक उभर कर सामने आयी है, वह है-सामाजिक चेतना की अपेक्षा व्यक्ति चेतना का प्राधान्य ।'[3] इसलिए व्यक्ति चेतना की प्रमुखता की व्याख्या,

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृष्ठ - 54
2. रामवचन राय, 'नई कविता उद्भव और विकास', पृष्ठ - 162
3. विजय द्विवेदी, 'नयी कविता : प्रेरणा और प्रयोजन', पृष्ठ - 26

उसके स्वतंत्र अस्तित्व पर सबसे अधिक जोर दिया अज्ञेय ने। उन्होंने व्यक्ति की सत्ता का जोरदार समर्थन 'नदी के द्वीप' में किया। 'शेखर एक जीवनी' के दोनों भागों में भी अस्तित्व की समस्या का विश्लेषण किया गया है।

'भारती' की कविताओं में युगीन प्रभाव के कारण अस्तित्ववाद की नैराश्य भावना, कुण्ठा, पीड़ा आदि की अभिव्यक्ति हुई है।' कवि ने मनुष्य के विघटन, आत्मा की ध्वस्त स्थिति और नैतिक मान्यताओं के विध्वंस की पृष्ठ भूमि में मानवीय स्वतंत्रता, व्यक्ति की नयी मर्यादा और नये मूल्यों के उदय की जो विवेचना की है। वह अस्तित्ववादी दर्शन से पूर्णतः प्रभावित है।'[1]

द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका, मानव की स्थिति, सामाजिक वैषम्य आदि ने कवि को प्रभावित किया है। अतः अंधायुग में अस्तित्वबोध विशेष सजग रूप से अभिव्यक्ति पा सका है। आधुनिक मानव में कुण्ठा, अविश्वास, अनास्था किस प्रकार अपना प्रभाव जमा रहे हैं और किस प्रकार व्यक्ति अपने अस्तित्व के लिए चिन्तित है, यह 'अंधायुग'में स्पष्ट किया गया है। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि अपने अस्तित्व के प्रति चिंतित कोई व्यक्ति बड़ा हो, महान हो। आज का लघुमानव भी अपने अस्तित्व के प्रति सजग है। 'अंधायुग' का प्रहरी इसे स्पष्ट करता है -

'आस्था का
साहस का
श्रम का
अस्तित्व का
हमारे
कुछ अर्थ नहीं था
कुछ भी अर्थ नहीं था।'[2]

आज का मानव कर्मवादी है, अतः नियति उसे अपने अनुसार नहीं ढाल पाती। वह अपनी वैचारिक शक्ति द्वारा जो निर्णय करता है उसके अनुरूप वह बनता तथा मिटता रहता है। उसकी वैचारिक शक्ति की सर्वोच्चता उसका अस्तित्व है। इस अस्तित्व की सार्थकता क्रियात्मकता द्वारा सम्भव है -

---

1. नरेन्द्र देव वर्मा 'नयी कविता सिद्धान्त और सृजन' पृष्ठ - 154
2. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ - 13

'नियति नहीं है पूर्व निर्धारित
उसको हर क्षण मानव निर्णय बनाता, मिटाता है ।'[1]

कर्म विमुख होकर व्यक्ति अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकता । 'अंधायुग' का संजय इसे इस तरह स्वीकारता है -

'पर मैं तो निष्क्रिय
निरपेक्ष सत्य
मार नहीं पाता हूँ
बचा नहीं पाता हूँ ।
कर्म से पृथक
खोजा जाता हूँ क्रमशः
अस्तित्व का ।'[2]

'भारतीय का कवि समष्टि के साथ है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वह अस्तित्व की उपेक्षा कर रहा है । सांत्र की अस्तित्व वादी चेतना एवं लघुतम स्थिति में भी साहस पूर्वक डटे रहने की भावना भारती के काव्य की विशेषता है । अकेले रह कर भी जीने और अपने अस्तित्व को बनाये रखने का स्वर इनके काव्य में गूँजता है ।

'भारती' का अस्तित्वबोध केवल एक कृति या कुछ अंशो में ही नहीं, यह तो कवि के तन मन में रचा बसा है । यह किसी विशेष परिस्थिति या व्यक्ति तक सीमित नहीं है । यही कारण है कि 'कनुप्रिया' की राधा भी अपने अस्तित्व के प्रति सजग व सतर्क है । एक ओर वह भावाकुल जीवन जीती है तो दूसरी ओर उसका व्यक्तित्व वैचारिक पृष्ठभूमि पर भी खरा उतरता है । उसके व्यक्तित्व परिवर्तन का कारण है आज के बदलते मानदण्ड । बीसवीं शताब्दी में कितना कुछ परिवर्तित हुआ है और इसी सन्दर्भ में नारी के वैचारिक स्तर में भी बदलाव आया है । यही वह परिवर्तन है जो 'कनुप्रिया' की राधा को प्रश्नाकुल बनाकर उपस्थित करता है । राधा रागात्मक सेतु पर खड़ी होकर भी इतिहास के जीवन्त क्षणों में कृष्ण का सार्थक सहयोग चाहती है । उसे दुख है कि केलिक्षणों की सहचरी का इतिहास निर्माण में अस्तित्व क्यों नकार दिया गया ? इसीलिए वह कृष्ण से कहती है -

---

1. धर्मवीर भारती,'अंधायुग' पृष्ठ - 24 2. धर्मवीर भारती 'अंधायुग' पृष्ठ - 125

'शब्द, शब्द, शब्द

तुम्हारे शब्द अगणित हैं कनु - संख्यातीत

पर उनका अर्थ मात्र एक है

मैं,

मैं,

केवल मैं ।'[1]

निष्कर्षतः अपनी रचनाओं में मानव निर्णय की महत्ता प्रतिपादित कर कवि ने अस्तित्व बोध को स्पष्ट अभिव्यक्ति दी है ।

वैयक्तिकता :

काव्य कवि के मन का प्रतिबिम्ब होता है । उसकी अभिव्यक्ति में कवि के व्यक्तित्व, जीवन एवं उसकी अन्य भावनाओं, अनुभूति की तीव्रता सुख - दुख, आशा - निराशा आदि को भली प्रकार देखा जा सकता है। कवि के जीवन में घटित विशेष घटनाओं को, उसकी रचनात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से समझा जा सकता है । अपनी रचनाओं में वह तटस्थ नहीं हो पाता । कहीं न कहीं उसकी वैयक्तिकता स्पष्ट हो ही जाती है । भारती का कवि भी इस सत्य से परे नहीं है । 'भारती' की कुछ कविताओं में उनके व्यक्तिगत जीवन की झलक मिलती है । उन्हें पढ़ कर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि स्वयं इन रचनाओं के द्वारा अपने विचारों को, जीवन व्यथा को, उमंगो को चित्रित कर रहा है ।

'भारती' की वैयक्तिकता उनके काव्य में अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुई है । क्योंकि 'जो खरा काव्य है उसकी रचना प्रक्रिया में, कितने ही अप्रत्यक्ष रूप में हो, किन्तु जीवन प्रक्रिया अनिवार्यतः उलझी रहती है, और यह प्रक्रिया केवल कुछ चुने हुए अत्यन्त सुविधापूर्ण क्षणों में ही नहीं घटित होती । रोजमर्रा की जिन्दगी के तथा कथित अत्यन्त गद्यात्मक नीरस काम दफ़्तर, बाजार, सौदा सुलुफ़, हारी-बीमारी, रोजगार के बीच भी रचनाकार का मन अनजाने, चुपचाप काव्य सृजन की भूमिका प्रस्तुत करता रह सकता है ।'[2] यही कारण है कि 'भारती का काव्य वैयक्तिकता को पूर्ण अभिव्यक्ति दे सका है ।

---

1. धर्मवीर भारती 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 72
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत-वर्ष' पृष्ठ - 9-10

'भारती' का व्यक्तित्व अपने परिवेश के साथ किये गये समझौतों से बनता और विकसित होता रहा है और कवि इनसे प्राप्त अनुभूतियों को अपने काव्य के माध्यम से अभिव्यक्ति देता रहा है । 'ठंडालोहा' की अधिकांश कविताओं का आधार कवि की वैयक्तिक अनुभूतियाँ हैं । वैयक्तिक भावना की प्रमुखता के कारण इन रचनाओं में प्रणय का चरमोत्कर्ष दिखाई देता है । संयोग की अनुभूति व अभिव्यक्ति में विवशता व निराशा अधिक है, जो तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों की उपज है ।

'भारती' के कवि ने प्रेम में असफलता, निराशा एवं विरह-व्यथा को भोगा है । इसमें सन्देह नहीं कि कवि ने व्यक्तिगत प्रणयानुभूति, किशोरावस्था की रूपासक्ति व आकुल निराशा का चित्रण 'ठंडा लोहा' की अधिकांश कविताओं में सफलता पूर्वक किया है । असफल प्रेम और निराशा का स्वर इन पंक्तियों में स्पष्ट है-

'ओ मेरी आत्मा की संगिनी
तुम्हे समर्पित मेरी साँस साँस थी, लेकिन
मेरी साँसो में यम के तीखे नेज़े सा
कौन अड़ा है ?
ठंडा लोहा ।'[1]

प्रेम में निराशा की अनुभूति के साथ ही प्रिया के माँसल रूप सौन्दर्य का पान भी 'भारती' के कवि ने किया है । प्रिया के फीरोज़ी होंठो पर अपनी जिन्दगी बरबाद करने वाला कवि उसके पावन सौन्दर्य का पुजारी भी है । यह सौन्दर्य उसके लिए अनंत जीवनदायिनी शक्ति बन गया है -

'पूजा सा तुम्हारा रूप
जी सकूंगा सौ जनम अंधियारियों में
यदि मुझे मिलती रहे
काले तमस की छाँह में
ज्योति की यह एक अति पावन घड़ी ।'[2]

प्रेम की इस पवित्र अनुभूति के कारण ही कवि प्रिया के सौन्दर्य के समक्ष जीवन का मोती न्योछावर कर देता है ।

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 2
2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 5

वास्तव में प्रेम के क्षेत्र में 'भारती' का कवि द्वंद्वात्मक स्थिति में जिया है । एक ओर प्रारम्भिक रचनाओं में जहाँ कैशोर्य भावुकता है, पवित्रता व वासना का द्वन्द्व है, वहीं दूसरी ओर वैचारिक परिपक्वता के साथ प्रेम की अनुभूति भी चिन्तन प्रधान है ।

'ठंडालोहा' की प्रेम परक रचनाओं में 'भारती' का वैचारिक द्वंद्व समाज की परम्पराओं को लेकर है । यहाँ कवि प्रेम के स्वर्णिम क्षणों की अनुभूति में तन्मय नहीं हो पाता । समाज की रूढ़ियों, मर्यादाओं में बंधा उसका मन अपनी मुग्धा पर मुग्ध नहीं रह पाता । एक दिन उसके देखते-देखते प्रिया का डोला कोई और ले जाता है और मन की विवशता निम्न पंक्तियों में बंध कर रह जाती है -

'भोर फूटे भाभियाँ, जब गोद भर आशीष दे दें,
ले विदा अमराइयों से, चल पड़े डोला हुमच कर
है कसम तुमको, तुम्हारे कोपलों से नैन में आँसू न आयें
राह में पाकड़ तले सुनसान पाकर
प्रीत ही सब कुछ नहीं है, लोक की मरजाद है सबसे बड़ी
बोलना रूँधते गले से
ले चलो । जल्दी चलो । पी के नगर ।'[1]

फिर भी तमाम सामाजिक बन्धनों व परम्पराओं के उपरान्त कवि के मन की निर्भीक आवाज को रूढ़ियों की दीवारें रोक नहीं पाती और वह समाज की रूढ़ियों को निम्न पंक्तियों के द्वारा निरूत्तर करना चाहता हैं -

गुनाहों से कभी मैली पड़ी बेदाग तरूणाई ।
सितारों की जलन से बादलों पर आँच कब आई ?
न चंदा को कभी व्यापी अमा की घोर कजराई ।'[2]

अन्ततः कवि की विवशता, कि उसे वियोग स्वीकारना पड़ता है और वैचारिक प्रौढ़ता आ जाने के कारण वह यही सोच कर चुप रह जाता है -

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ- 11

2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ- 19

'बाहें में जब जिस्म कोई आयेगा

बीच में तुमको सिसकता पायेगा

प्यार यह क्या अब कभी भी स्वयं को दुहरायेगा ?

नहीं । शायद नहीं ।'[1]

प्रेम में असफलता के कारण कवि का मन वीतरागी एवं सुख-दुख की अनुभूतियों से पूर्णतया तटस्थ हो जाता है, क्योंकि सुख में प्रेम के मादक क्षणों की मादकता ही दुख का कारण बन जाती है । निम्न पंक्तियों में इस स्थिति का चित्रण मार्मिक ढंग से हुआ है -

'क्या केवल इतनी पूंजी के बल

मैंने जीवन को ललकारा था ?

वह मैं नहीं था,

शायद वह कोई और था

उसने तो प्यार किया, रीत गया, टूट गया

पीछे में छूट गया ।'[2]

उपर्युक्त पंक्तियों को पढ़कर ऐसा लगता है कि कवि समष्टि चेतना के प्रभाव से व्यक्ति चेतना को नकार रहा है ।

'भारती' का कवि एक ओर युग की समस्याओं को उजागर करता है, तो दूसरी ओर परम्परा के प्रति सजग भी रहता है। उसकी वैयक्तिक चेतना समष्टि भाव लेकर चली है । यह समष्टि का भाव कभी-कभी तो इतना अधिक प्रभावी बन गया है कि कवि निर्णय करने में असफल हो गया है ।

इस प्रकार भारती का कवि प्रेम में निराश, सूनी राह पर खड़ा, जीवन की विषमताओं को महसूस करता है । संशय व संघर्ष की स्थिति से गुजरते हुए भी वह अपने व्यक्तित्व को नष्ट होते देख कर दुखी है -

ओ रे
धूल भरे पवन झकोरे
तेरे हाथों बिल्कुल बेबस हूँ मैं
जैसे चाहे तूने हरदम खींचे डोरे ।'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृ0-39
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृ0-37
3. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 35

डॉ0 शिव कुमार मिश्र ने 'व्यक्तिवाद और उसकी चरमपरिणिति अहंवाद को प्रयोगवाद की महत्वपूर्ण प्रवृति के रूप में स्वीकार किया है ।'[1] 'भारती' की रचनाओं में व्यक्तित्व की सहज अभिव्यक्ति तो मिलती है, किन्तु उसका अहंवादी रूप प्रायः नहीं पाया जाता। कवि का 'मैं' एक का नहीं 'समष्टि' का द्योतक है । अतः व्यक्ति चेतना की अभिव्यक्ति करता हुआ भी कवि समाजिक चेतना से असंपृक्त नहीं है । कवि की व्यक्तिवादी अभिव्यंजना समाज से अलग नहीं है । सामाजिक विषमताओं ने कवि के मन को झकझोरा है । वह अपने राष्ट्र व समाज के बदलते परिवेश से परिचित है, सजग है, इसका बोध हमें सहज ही हो जाता है । राष्ट्र प्रेमी कवि देश द्रोही, झूठे व स्वार्थी व्यक्तियों से घृणा करता है । धन के लोभ में देश के प्रति विश्वासघात करने वालों के लिए उसकी तीखी फटकार इस प्रकार है -

'चैक बुक हो पीली या लाल,
दाम सिक्के हों या शोहरत
कह दो उनसे
जो खरीदने आयें हों तुम्हें
हर भूखा आदमी बिकाऊ नहीं होता ।'[2]

सामाजिक संघर्षो में जूझने वाले व्यक्ति को कभी-कभी इस स्थिति में भूखों मरना पड़ता है । ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में कितने ही लोग बिकने के लिए विवश हो जाते हैं । कवि ऐसे लोगो की बिकाऊ मानसिकता से बहुत दुखी है -

'सत्य है राजा हर्षवर्धन के हाथों से मिला हुआ
पान का सुगन्धित एक लघु बीड़ा
चाहे वह जूठा हो,
उस पर लगा हुआ वर्कदार सोना था
हाय वाणभट्ट । हाय
तुमको भी, तुमको भी आखिर यही होना था ।'[3]

इस पंक्तियों से कवि की स्वस्थ राष्ट्र प्रेम की मानसिकता स्पष्ट होती है ।

---

1. शिवकुमार मिश्र, 'नया हिन्दी काव्य' पृष्ठ - 222
2. धर्मवीर भारती, 'सातगीत वर्ष' पृष्ठ - 49
3. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 50

जीवन में सत्य का अपना विशेष महत्व है । सत्य आत्मा को सम्बल देता है । असत्य से समझौता कर व्यक्ति अन्दर से टूट जाता है, इसलिए असत्य को ठुकरा कर सत्य पर दृढ़ रहना कवि के व्यक्तित्व की विशेषता है । असत्य का आश्रय लेकर विजयी होना भी 'भारती' के कवि के लिए पराजय के समान है । 'अंधायुग' की निम्न पंक्तियाँ सत्य के सबल पक्ष का समर्थन कर रही हैं-

'लेकिन
वह कोई समाधान तो नहीं था
समस्या का ।
कर लेते यदि तुम
समझौता असत्य से
तो अन्दर से जर्जर हो जाते ।'[1]

कवि का जीवन संघर्षमय रहा है । यह स्वाभाविक है कि जब भी कोई साहसी व्यक्ति निश्चित परिपाटी छोड़कर नई राह खोजता है, परिवर्तन की ओर बढ़ता है, अपना पथ स्वयं निर्धारित करता है, तो उसे सदैव घृणा, तिरस्कार व आलोचना का सामना करना पड़ता है । क्योंकि समाज का प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ मानसिकता का नहीं होता । किन्तु 'भारती' का कवि दुखी न होकर अपने निर्धारित मार्ग पर अग्रसर होने में ही सार्थकता समझता है । 'अंधायुग' की निम्न पंक्तियाँ कवि की स्वस्थ विचारधारा की सफल अभिव्यक्ति हैं -

'इस पर विषाद मत करो युयुत्सु
अज्ञानी, भय डूबे, साधारण लोगों से
यह तो मिलता ही है सदा उन्हें
जो कि एक निश्चित परिपाटी
से होकर पृथक
अपना पथ अपने आप
निर्धारित करते हैं ।'[2]

इन पंक्तियों में वर्णित पीड़ा युयुत्सु व विदुर की नहीं, कवि की अपनी पीड़ा है । यह पीड़ा हर उस व्यक्ति को भोगनी पड़ती है जो समाज की सड़ी गली रूढ़ियों व अन्याय का विरोध करता है। लेकिन यह विरोध बिना विद्रोह के सफल नहीं हो सकता । कवि विद्रोह का पक्षधर तो है, किन्तु विद्रोह केवल भाषणों व

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ- 59
2. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 57

नारे बाजियों तक सीमित नहीं होना चाहिये । ऐसा विद्रोह निष्क्रिय है और कवि की मान्यता है कि -

'निष्क्रिय विद्रोह आदमी को
मन से कितनी जल्दी बूढ़ा कर देता है ।'[1]

'भारती' का कवि अपने कवि कर्म के प्रति ईमानदार है, किन्तु सामयिक परिवेश के प्रति जागृत रहते हुए भी कभी ऐसी विवशता होती है कि व्यक्ति चाह कर भी कुछ नहीं कर पाता । 'कदमपोखर' में इसी मनः स्थिति की अभिव्यक्ति है । यहाँ कवि स्वयं को पोखर के समान समझता है, जो समय के बहाव से तो भली भाँति परिचित है पर कुछ कर सकने में असमर्थ है। जिस प्रकार पोखर में कीचड़, काई व सड़े गले पत्ते हैं उसी प्रकार कवि भी अपनी थकी हुई संघर्षरत रचना प्रक्रिया रूपी लहरों को अपने हृदय रूपी पोखर में समेटे है । अतः उसे सांसारिक आकर्षण व ऐश्वर्य प्रभावित नहीं कर पाते -

'होगी कोई राधा जो खिंच आती होगी
सम्मोहित गति, खिसका आँचल, अधखुली पायल
मुझमें तो केवल कुछ थकी हुई लहरें बस
अपने से टकराती अपने से ही घायल ।'[2]

'अंधायुग' में वर्णित मर्यादा, सत्य आस्था एवं विश्वास की प्रतिष्ठा कवि की अपनी विचारधारा है । उक्त नैतिक मूल्यों की व्यापकता निर्धारित कर कवि ने यह स्पष्ट किया है कि प्रतिशोध एवं कुण्ठा व्यक्ति के जीवन में स्थिरता नहीं ला सकते, अपितु आस्था, मर्यादा, व सत्य के माध्यम से जिया गया जीवन सार्थक व सफल होता है । यह सत्य कितना भी कटु हो, किन्तु इसकी अभिव्यक्ति हेतु कवि कृत संकल्प है -

'सत्य कितना कटु हो ।
कटु से यदि कटुतर हो
कटुतर से कटुतम हो
फिर भी कहूँगा मैं ।'[3]

कवि का विश्वास है कि इस सत्य के साथ कर्मठता होना भी आवश्यक है । सत्य पर आश्रित निष्क्रिय जीवन असफल ही होगा ।

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृ0-42
2. धर्मवीर भारती,'धर्मयुग', दीपावली विशेषांक 1979 पृ0-23
3. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 39

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि अधिकांश रचनाओं में कवि का अंतर्मन प्रतिबिम्बित है । सभी में उसकी वैयक्तिक चेतना झलकती हे । कवि नए प्रश्नों और सन्दर्भो से परे नहीं हटता बल्कि, उनका ईमानदारी से सामना कर समाधान खोजता है । 'भारती' के ही शब्दों में -'समय और परिस्थितियों ने जो नए प्रश्न और सन्दर्भ पैदा किए उनका मैंने ईमानदारी से सामना किया और किसी मोड़ पर बेईमानी, डर या असुरक्षा के तहत समझौता नहीं किया । मैनें भरसक कोशिश की कि जो भी ईमानदारी से अनुभव करूँ वही कहूँ और वही कहा । फिर चाहे इसके लिए प्रशंसा मिली हो या गालियाँ । मैंने परवाह नहीं की ।'[1]

कुण्ठा :

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप ऐसे मूल्य स्थापित हुए जो कलाकारों के लिए त्रासद थे । यद्यपि नवोदित सक्रिय सामाजिक चेतना के रूप में आधुनिक कविता का विकास हुआ, तथापि कलाकार जन जीवन से दूर और अलग होते गये । युद्धोत्तर समाज की असंगतियों के फलस्वरूप पराजित मध्यमवर्गीय मन:स्थिति का अभ्युदय हुआ । नयी कविता ने इन असंगतियों, विद्रुपताओं को अभिव्यक्ति दी । पूंजीवादी घातक प्रभाव के अंतर्गत विकसित होने वाले देशों में टूटन, टकराव, अव्यवस्था और अश्लीलता का पैदा होना स्वाभाविक था । ऐसी विषम स्थिति में कवियो का कोई प्रेरणा केन्द्र न बन सका । आधुनिक विज्ञान, उद्योगधन्धों व असंस्कृत संस्कृतियों के बीच रहने वाला कवि रूग्ण मनोवृति लेकर आगे बढ़ा । गहरे अवसाद व निराशा से आक्रान्त कवि कुंठित हो गया, एवं वैयक्तिकता व सामूहिकता का दायित्व एक साथ वहन करते हुए वह घबरा गया । उसका अकेलापन ही काव्य रचना का माध्यम बना । ऐसी मनः स्थिति में उसने जो कुछ लिखा, उसमें कुछ अंश कुण्ठाका भी समाहित है ।

नयी कविता के कवि 'भारती' के काव्य में भी कुण्ठा परिवेश जन्य प्रभाव के कारण यत्र-तत्र अभिव्यक्त हुई है । इनके प्रारम्भिक काव्य संग्रह 'ठंडालोहा' में यह प्रवृत्ति प्रेम, मर्यादा व सामाजिक बन्धनों के कारण उभर कर सामने आयी है । प्रारम्भिक कविताओं में एकान्त, व्यक्तिवादिता, आत्मलीनता तथा सामाजिक विषमताओं से एकाकी संघर्ष की असफलता ही कुण्ठा का कारण बनी है । रूमानियत, विरह, दर्द व उदासी ने कुण्ठा को और बढ़ाया है ।

'भारती' के काव्य में वर्णित वियोग इसी प्रवृति की अभिव्यक्ति है । 'ठंडालोहा' की पहली कविता, जिसमें कवि के सारे भोले विश्वासों को, उमंगो को 'ठंडेलोहे' की चादर ने ढंक लिया है उसकी दर्द भरी आत्मा पर 'ठंडे लोहे की एक पर्त सी चढ़ सी गयी है । यहाँ 'ठंडालोहा' कवि के कुंठित मन का परिचायक है -

---

1. राकेश जोशी से साक्षात्कार 'नई दुनिया' 25 दिसम्बर 86, पृष्ठ - 5

ठण्डालोहा । ठण्डा लोहा । ठण्डा लोहा ।

मेरी दुखती हुई रगों पर ठण्डालोहा ।'[1]

इतना ही नहीं, प्रेम के सन्दर्भ में 'भारती' का प्रेमी प्रेम की विरह जन्य कड़ुवाहट से क्षुब्ध होकर यहाँ तक कह देता है कि -

'नारी की आत्मा इस विराट् को

बहुत देर तक नहीं ग्रहण कर पाती है ।

यह आत्मा की पावनता, मन की ऊंचाई,

ये रेशम के सपने

अनजान गुफाओं में खो जाते हैं ।'[2]

'भारती' के काव्य में अभिव्यक्त कुण्ठा केवल प्रेमी मन की कुण्ठा ही नहीं है, अपितु कवि ने यह स्पष्ट किया है कि आधुनिक सामाजिक परिवेश में व्यक्ति कितना निराश है, एकाकी है और स्वयं को पराजित महसूस करता है । वह अपने अस्तित्व के प्रति सजग रहते हुए भी अस्तित्व रक्षा नहीं कर पाता । यह उसकी विवशता है कि न चाहते हुए भी वह रुग्ण मनोवृति से पीड़ित है । प्रतिकूल परिस्थितियों के विरोध में अकेले संघर्ष करते हुए कवि कुण्ठा के गहरे अंधेरे कुंए में उतरता जाता है । 'अंधायुग' के पात्र इसी कुण्ठा को अभिव्यक्ति देते हैं -

'हम सब के मन में गहरा उतर गया है युग,

अंधियारा है, अश्वत्थामा है, संजय है,

है दास वृत्ति उन दोनो प्रहरियों की

अंधा संशय है, लज्जाजनक पराजय है ।'[3]

आधुनिक समाज में कुण्ठा किस तरह अपनी सत्ता जमा रही है - इसे 'अंधायुग' का प्रहरी प्रारम्भ में ही अभिव्यक्ति देता है -

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 1

2. धर्मवीर भारती, ठंडालोहा, पृष्ठ - 68

3. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ- 132

'आस्था का,

साहस का

श्रम का

अस्तित्व का हमारे

कुछ अर्थ नहीं था

कुछ भी अर्थ नहीं था ।'[1]

'भारती' ने 'अंधायुग' में जिस आधुनिक बोध की वाणी दी है, उसमें अश्वत्थामा की चारित्रिक कुण्ठा स्पष्ट है । कवि ने अश्वत्थामा के चरित्र निरूपण में सजगता से काम लिया है । निराशा की निविड़तम स्थितियों के घटाटोप के कारण अश्वत्थामा का व्यक्तित्व न केवल निराशा का पर्याय बन गया, अपितु उसका अस्तित्व केवल एक ही अर्थ देता है - वध, केवल वध । यह वध की मनोवृत्ति उसकी कुण्ठा ही है -

'वध, केवल वध, केवल वध

अन्तिम अर्थ बने

मेरे अस्तित्व का ।'[2]

और इसीलिए वध उसके लिए एक मनोग्रन्थि बन चुका है -

'मैं क्या करूँ ?

मातुल

मैं क्या करूँ?

वध मेरे लिये नहीं रही नीति

वह है अब मेरे लिये मनोग्रन्थि ।'[3]

इस प्रकार अश्वत्थामा का व्यक्तित्व पूरी तरह आधुनिक कुंठित मानव व्यक्तित्व को स्पष्ट करता है-

गांधारी का व्यक्तित्व भी इसी प्रकार का है । क्योंकि पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों में संवेदन शीलता अधिक होती है स्त्री वर्तमान को दृष्टि में रखकर मात्र अपना सुख चाहती है 'अंधायुग' की गांधारी नारी चरित्र का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है । उसमें जिद, कुण्ठा व कठोर भावनाओं का प्राधान्य है -

---

1. धर्मवीर, 'अंधायुग' पृष्ठ- 13
2. धर्मवीर भारती , 'अंधायुग' पृष्ठ - 38
3. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 38

'तो वह पड़ा है कंकाल मेरे पुत्र का
किया है यह सब कुछ कृष्ण
तुमने ।
तुमने किया है यह ।'[1]

इस प्रकार कुण्ठा व घुटन की अभिव्यक्ति व्यक्तिगत स्तर पर न के बराबर है । 'भारती' का अपना व्यक्तित्व कहीं उलझा हुआ नहीं है । इनके काव्य में द्वितीय महायुद्धोत्तर परिस्थितियों के उपरान्त कुंठित सामाजिक परिवेश की अभिव्यक्ति हुई है, किन्तु बहुत कम मात्रा में ।

संशय एवं द्वंद्वग्रस्तता :

आधुनिक युग की परिस्थितियाँ कुछ ऐसी हैं कि व्यक्ति अपने कर्तव्य के प्रति दो टूक निर्णय नहीं ले पाता । किसी आदर्श या मर्यादा पर उसका विश्वास नहीं रहा । इस भौतिक मरीचिका में उलझ कर वह द्वंद्वग्रस्त है । उसके मन में संशय है । यह संशय व द्वंद्व जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त है ।

विघटित मूल्यों के कारण उत्पन्न जटिल परिस्थितियों से आज का मानव जूझ रहा है । अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर वह आस्थावान हो जाता है, तो प्रतिकूल परिस्थितियाँ उसके मन में संशय व द्वंद्व उत्पन्न करती हैं । सामाजिक परिवेश से भली प्रकार सामन्जस्य न कर पाने के कारण उसके मन में विरोधी भावों का द्वंद्व चला करता है ।

मानव मन की इसी संशय व द्वंद्वात्मक परिस्थितियों का चित्रण 'भारती' के काव्य में हुआ है, क्योंकि नयी कविता संक्रमण युग की उपज है । अतः युगीन प्रभाव के कारण भारती ने भी कुण्ठा, निराशा, यथार्थ व कल्पना के बीच उलझे विचारों के कारण संशय व द्वंद्व को अपने काव्य में स्थान दिया है । कवि के मानस में निरन्तर आंतरिक संघर्ष चलते रहते हैं, जिनकी अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है -

'मुझसे तो केवल कुछ थकी हुई लहरें बस
अपने से टकराती, अपने से घायल ? [2]

इन पंक्तियों में 'भारती' ने एक कवि की वास्तविक स्थिति को अभिव्यक्ति दी है। यहाँ लहरों का सम्बन्ध रचना प्रक्रियासे है । बाहर से शान्त प्रतीत होता व्यक्ति आंतरिक संघर्षों में लीन रहता है किन्तु परिवेश के प्रति उसके मन में द्वंद्व चला करता है - इसी द्वंद्व की अभिव्यक्ति है 'कदमपोखर' ।

---

1. धर्मवीर भारती,'अंधायुग' पृ0-13 2. धर्मवीर भारती,'धर्मयुग' वर्ष 1974 अक्टूबर पृष्ठ - 79

जीवन के प्रति कर्मण्यता होते हुए भी युगीन विषमताओं से व्यक्ति टूटता है, जर्जर होता है, उसका अस्तित्व तिरोहित हो जाता है और वह संशय की स्थिति में जीने लगता है । ऐसी ही स्थिति की अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में हुई है -

'मैं क्या जिया
मुझको जीवन ने जिया
बूँद - बूँद कर पिया मुझको
पीकर पथ पर खाली प्याले सा छोड़ दिया ।'[1]

वह जीवन जी रहा है या जीवन उसे ? उसकी गंतव्यहीन यात्रा का अन्त होगा या नहीं ? कठिनाइयों से भरी यह राह कभी खत्म भी होगी या नहीं ? यही संशय कवि के मन को आंदोलित करता रहता है । जहाँ एक ओर इतिहास की गति बदलने में कवि लघुता को भी महत्वपूर्ण मानता है, वहीं दूसरी ओर वह महान कृष्ण की पलायनवादी भावना व निराशा को भी अभिव्यक्ति देता है । पलायन व निराशा में डूबे 'कनुप्रिया' के कृष्ण आधुनिक द्वंद्वग्रस्त मानव का प्रतिनिधित्व करते हैं । कवि ने स्पष्ट किया है कि किस प्रकार व्यक्ति समाज, इतिहास व व्यक्तित्व के प्रति संशय ग्रस्त एवं अनास्थावादी बन जाता है और जीवन संघर्षो से हार कर पराजय स्वीकार करता है -

'अन्त में तुम हार कर, लौट कर, थक कर
मेरे वक्ष के गहराव में
अपना चौड़ा माथा रख कर
गहरी नींद में सो गये हो ....'[2]

संवेदनशील एवं जागरूक कवि होने के कारण 'भारती की कविता में समाज व व्यक्ति का, आस्था, पराजय व अनास्था से द्वंद्व चला करता है। यदि 'प्रमथ्युगाथा' व 'कौन चरण' में वह अपने व्यक्तित्व के प्रति आस्थावान बनता है, तो जिज्ञासा में वह संशय की स्थिति में उलझा रहता है एवं निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाता और सोचता रहता है -

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 38
2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया', पृष्ठ - 74

'मेरे तीखे पर एकाकी स्वर

केवल सच्चाई का आश्रय लेकर

गूँजेंगे या रव में खो जायेंगे

या ये स्वर पहुंचेंगे जन-जन के द्वार ?'[1]

'भारती' का काव्य विभिन्न मनः स्थितियों की अभिव्यक्ति है । 'कनुप्रिया' में जहाँ पलायन की भावना व्यक्त हुई है, वहीं 'ठंडालोहा' कवि जीवन के प्रेम व निराशा की ओर संकेत करता है । 'सात गीत वर्ष' की कविताएँ भावुकता की अपेक्षा कवि के चिन्तनशील व्यक्तित्व के कारण द्वंद्व की अभिव्यक्ति हैं । 'भारती की कविताओं में तुमुल कोलाहल की ध्वनि भी है और कहीं-कहीं अपने मन की गुलाबी रंगीनी का भी वर्णन है । कहीं अनास्था, लघुता, कुंठा आदि की भी व्यंजना है । भारती मध्यवर्गीय द्वंद्वग्रस्त मनोवृत्ति का भली भाँति प्रतिनधित्व करते हैं ।'[2]

संक्रान्तिकाल यद्यपि परिवर्तन के पूर्व का समय होता है, किन्तु इस समय बहुत कुछ खोकर ही कुछ प्राप्त किया जाता है । परिवर्तित होते सामाजिक परिवेश में चिन्ता, असफलता, संशय व विरोधी विचारों का अंतर्द्वंद्व स्वाभाविक है । देश की स्वतंत्रता के बाद का युग भी कुछ ऐसा ही था, जो विभिन्न परिवर्तनों को समेटे हुए प्रकट हुआ । देश के युवकों की मनः स्थिति, परिवर्तित दृष्टिकोण, मोहभंग, तनाव, निराशा आदि भारती की कविता के भी विषय रहे हैं । स्वतंत्रता पूर्व के सपनों को संक्रान्ति युग में नवयुवकों ने टूटते देखा, उन्हें चारों ओर दिशाएँ बन्द दिखीं । कहीं कोई गंतव्य नहीं, नया दौर न ला सकने की विवशता में भूखे पेट, जेबों में हाथ डाले सड़कों पर घूमता युवक और उसकी प्रश्नात्मक दृष्टि । कवि के इस युवक की आँखों में इस स्थिति के लिए कई सवाल हैं पर उत्तर किसी के पास नहीं -

'सूनी सड़कों पर ये आवारा पाँव

माथे पर टूटे नक्षत्रों की छाँव

कब तक आखिर कब तक ?'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 18
2. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, 'आधुनिक हिन्दी कविता, सिद्धान्त और समीक्षा', पृष्ठ - 528
3. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृष्ठ - 19

संघर्ष जीवन के लिए आवश्यक है, किन्तु जब संघर्ष अंतहीन हो तब व्यक्ति संशयग्रस्त होकर द्वंद्व व निराशा में जीने लगता है । यह संघर्ष आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक किसी भी परिवेश में हो सकता है । इस संघर्ष में अकेले चलता मनुष्य अंतहीन यात्री हो जाता है। उसे सफलता न मिलने पर राह अन्तहीन, सूनी व कष्टप्रद प्रतीत होती है । 'भारती' का कवि भी इस राह का यात्री है जो स्वयं से ही प्रश्न कर रहा है–

'खत्म होने को न आयेगी कभी क्या
एक उजड़ी माँग सी यह धूल धूसर राह ?
एक दिन क्या मुझी को पी जायेगी
यह सफर की प्यास अबूझ अथाह ?'[1]

'अंधायुग' में कवि ने महाभारत के उत्तरार्ध की कथा को आधार बनाकर समकालीन बोध को वाणी देने के लिये निराशा, घुटन व संशय भरे द्वंद्वग्रस्त चरित्रों को उभारने का प्रयास किया है । अवश स्थितियों और त्रासद परिस्थितियों ने आधुनिक मानव की संवेदनाएँ बदल दी हैं । व्यक्ति का व्यक्ति से विश्वास उठ गया है, वह भयभीत और आक्रान्त है । अपनों के प्रति भी वह संशकित है । 'अंधायुग' का पात्र युयुत्सु इस भावबोध को अभिव्यक्ति देता है -

ये हैं महल
मेरे पिता, मेरी माता के
लेकिन कौन जाने
यहाँ स्वागत हो मेरा
एक जहर बूझे भाले से ।'[2]

निष्कर्षतः भारती के काव्य में भावुकता की अपेक्षा जहाँ चिन्तन की प्रधानता है, वहाँ संशय एवं द्वंद्व बढ़ता गया है । कवि व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों ही प्रकार की विषम परिस्थितियों में संशयग्रस्त है । कहीं वह प्रेम की अनुभूति करते समय द्वंद्व ग्रस्त हैं तो कहीं राष्ट्र के परिप्रेक्ष्य में । 'युग की जड़ीभूत व्यवस्थाओं में दमित मानव व्यक्तित्व की करूण गाथाओं के चित्र एक उदात्त एवं प्रौढ़ भूमि पर 'सात गीत वर्ष' में मिलते हैं ।'[3] भारती का कवि युगीन विषमताओं से त्रस्त होकर छुटकारे हेतु प्रयत्न भी करता है । उसका

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 72 2. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ- 28
3. भागीरथ मिश्र एवं डा0 बलभद्र तिवारी, 'आधुनिक हिन्दी काव्य' पृष्ठ -552

संशय एवं द्वंद्व मात्र कथन के लिए नहीं है । 'भारती की कविताओं में सहज किन्तु गहरा और सबके प्रति अर्पित व्यक्तित्व साफ-साफ दिखलायी देता है । उसमें श्रृंगार की आसक्ति नहीं निर्वेद की विरक्ति नहीं । यदि अन्दर ज़हरीले अजगर जैसे प्रश्न चिह्न हैं, तो पिघले फूलों की रसवन्ती आग भी है । कभी इसे अनुभूति होती है निर्वासन की और कभी अपने तीखे किन्तु एकाकी स्वरों की, जो सच्चाई का आश्रय ले कर जन-जन की अनुभूतियों से एक रूप हो सकेंगे ।'[1]

अलगाव एवं निर्वासन :

अस्तित्ववाद की प्रमुख प्रवृत्ति अलगाव है । व्यक्ति समाज में रहते हुए भी अपने को समाज से अलग समझता है, सारे सम्बन्धों से अपने को विमुख पाता है एवं समाज से सट कर जीने के बदले वह कट कर जीता है । अलगाव की इस भावना ने आदमी को अजनबी और बेगाना बना दिया है । वह हमेशा अपने को बाहरी दुनिया का आदमी समझता है ।

अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित होने के कारण नयी कविता के कवियों में अपने अस्तित्व के प्रति सजगता का भाव है । यद्यपि अस्तित्ववादी ईश्वर में विश्वास नहीं करता, वह मानता है कि मानव केवल मानव है, उसका कोई 'स्वभाव' या 'स्वरूप' नहीं, क्योंकि उस स्वभाव का नियमन करने वाला कोई ईश्वर नहीं है । अर्थात् मनुष्य अपनी संकल्प शक्ति से स्वयं अपना निर्माण करता है । इसलिए वह स्वयं अपने प्रति उत्तरदायी है । कुल मिलाकर अस्तित्ववाद घोर व्यक्तिवादी दर्शन है, जिसमें मनुष्य की निराशा, वेदना, असहायता, घृणा और क्षणवादी चिन्तन की अभिव्यक्ति हुई है ।

'भारती' की कविता इसका अपवाद नहीं है । दोनो महायुद्धों के विनाशकारी दृश्यों को देखकर खंडित होती मानव आस्था, जीवन के प्रति नैराश्य व उभरते हुए शून्य को कवि ने गहराई से महसूस किया है। विश्वयुद्ध की विभीषिकाओं ने संत्रास का वातावरण उत्पन्न कर आदमी को भयभीत कर दिया था । विघटित सामाजिक मूल्यों व असुरक्षा की भावना के कारण कवि सदैव अपने अस्तित्व के प्रति सजग बना रहता है । उसकी यह सजगता कभी–कभी सामाजिक परिस्थितियों से समझौता नहीं कर पाती, ऐसे समय में वह समाज में रहते हुए भी उससे अलग हो जाता है ।

इन परिस्थितियों में अपने अस्तित्व के प्रति चिंतित कवि अंतर्मुखी हो जाता है । वह भीड़ में चारों ओर से घिरा रह कर भी अकेला हो जाता है ।

---

1. संतोष तिवारी, 'नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर', पृष्ठ - 225

द्वितीय विश्वयुद्ध जन्य भय, निराशा व अलगाव 'अंधायुग' में हर जगह व्याप्त है । विश्वयुद्ध के बाद जनता की कुछ ऐसी ही मनः स्थिति थी जो 'अंधायुग' के पात्र युयुत्सु श्री कृष्ण को आदर्श मान कर कौरवों को असत्य और पाण्डवों को सत्य का पक्षधर समझ कर, सत्य का पक्ष लेता है और युद्ध के बाद जब उसे अपने माता पिता तथा प्रजा के द्वारा भयंकर घृणा और भीम के द्वारा परिहास व उपेक्षा मिलती है तो वह बड़े दर्द भरे स्वर में कहता है -

'अब यह माँ की कटुता
घृणा प्रणाओं की
क्या मुझको अन्दर से बल देगी ?
मुझको क्या मिला विदुर ?
मुझको क्या मिला ?'[1]

आधुनिक समाज में व्याप्त विषमताओं के कारण व्यक्ति की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है कि जब वह स्नेह, निस्वार्थ सेवा, प्रेमपूर्ण व्यवहार करता है, तो दूसरे उसे शंका की दृष्टि से देखते हैं । ऐसे में उसकी वही स्थिति होती है जो निम्न पंक्तियों मेंयुयुत्सु सोच रहा है -

'मेरी परिणति है,
स्नेह भी अगर मैं दूँ
तो वह स्वीकार नहीं औरो को ।'[2]

बस यहीं से वह अलगाव की स्थिति में जीने लगता है और अपना जीवन व्यर्थ समझने लगता है, क्योंकि अलगाव की स्थिति में कोई कब तक जी सकता है ?

'यह सब मैं सुनूँगा
ओर जीवित रहूँगा
किन्तु किसके लिये
किन्तु किसके लिये ?'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ- 21
2. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ - 60
3. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ - 91

अपने अस्तित्व के प्रति सजग रहने के कारण कवि अलगाव की स्थिति में जीता है, किन्तु अन्ततः टूट जाता है । उसे लगता है कि उसने जीवन नहीं जिया न भोगा । बल्कि जीवन ही उसे जी रहा है और सामाजिक विषमताओं से त्रस्त हो कर आत्म निर्वासित जीवन जीना ही उसकी विवशता बन जाता है -

'मैं क्या जिया ?
मुझको जीवन ने जिया
बूँद-बूँद कर पिया मुझको
पीकर पथ पर खाली प्याले सा छोड़ दिया ।'[1]

यहाँ अपने जीवन की शून्य उपलब्धि कवि को और निराश कर देती है । तब उसे घर, गाँव शहर जो कभी उल्लास व उमंग देते थे, गति प्रदान करते थे, वे सब अब कुछ अर्थ नहीं रखते । वह महसूस करता है कि यह सब तो किसी और के लिये है, उसके लिये तो बस निर्वासन ही है -

'जैसे शीशे में चटखे दरार
सहसा यह मुझको एहसास हुआ -
यह सब है और किसी का
यह पगडण्डी, यह गाँव, खेत, सुग्गों के हरे पंख,
गति जीवन
सबका सब और किसी का
मेरा है केवल निर्वासन, निर्वासन, निर्वासन ....'[2]

यथार्थ एवं कल्पना :

जीवन और कविता का सदा से अविच्छेद सम्बन्ध रहा है । किसी भी युग का कवि अपने सामयिक और सामाजिक यथार्थ से अप्रभावित एवं असंपृक्त नहीं रह सका । काव्य में जीवन का प्रतिफलन अपने युग के आदर्शों के अनुरूप ही होता है ।

आधुनिक कविता अपनी पूर्ववर्ती कविता से भिन्न है, क्योंकि आज हमारा परिवेश बदल गया है । इस परिवर्तित परिवेश के कारण काव्य विषयों में भी परिवर्तन हुआ है । जो विषय पहले कविता के लिए हेय समझे जाते थे, आज वे ही युगबोध को अभिव्यक्ति दे रहे हैं । आज मानवीय संवेदनाओं को प्रभावित करने के

---

1. धर्मवीर भारती 'सातगीतंवर्ष' पृष्ठ 38
2. [illegible] पृष्ठ - 15

लिए राष्ट्रीय ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय विषय व समस्याएँ भी कवि के समक्ष हैं । विज्ञान की उपलब्धियों ने क्षेत्रीय संकीर्णता से व्यक्ति को उबार कर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सोचने समझने के लिए प्रेरित किया है । मुक्तिबोध के शब्दों में -

> 'जीवन में आज के
> लेखक की कठिनाई यह नहीं कि
> कमी है विषयों की
> वरन् यह कि आधिक्य उनका ही
> उसको सताता है
> और वह ठीक चुनाव नहीं कर पाता है ।'

विषयों के चुनाव की समस्या उनके बढ़ जाने के कारण नहीं है, अपितु विकल्पों के कारण है । ये विकल्प ही कवि के मानसिक संघर्ष का कारण बन गये हैं ।

'भारती' के काव्य में भी विकल्पों के कारण यह संघर्ष अभिव्यक्त हुआ है । नई कविता के परिवेशगत प्रभाव से कवि अछूता नहीं रहा । अतः सामयिक यथार्थ से संपृक्त उसकी कविताएँ युगीन समस्याओं को पूर्ण अभिव्यक्ति देती हैं ।

'भारती' के काव्य का प्रथम सोपान कल्पना संपृक्त है । यहाँ कवि ने प्रेम व सौन्दर्य चित्रण में कल्पना का आश्रय लिया है । प्रिया के सौन्दर्य हेतु नयी-नयी कल्पनाएँ उसके प्रारम्भिक काव्य में अनेक स्थानों पर की गयी हैं, किन्तु यह कल्पना सामाजिक परिवेश के प्रभाव व चित्रण में पूरे समय साथ नहीं चली है । कवि इसे लेकर सामयिक सन्दर्भो से प्रभावित नहीं हुआ है, बल्कि कुछ दूर चलने के बाद वह यथार्थवादी बन गया है । अतः कल्पनां का अंश मात्र ही इनकी कविताओं में है । जहाँ कहीं सामयिक सन्दर्भो में काल्पनिकता है भी, तो वह यथार्थ संपृक्त ।

'भारती' के काव्य का दूसरा सोपान आंतरिक संघर्ष का है । जहाँ कवि विराट जीवन के बीच दुख दर्दों में गम्भीर अर्थ ढूंढता है । अपने अहं को विगलित करते हुए ध्वंस और निर्माण आस्था और अनास्था, अस्तित्व और अनस्तित्व के बीच जीवन के सार्थक तत्वों की रचनात्मकता की तलाश करता है । वह सकरे सिमटे घेरे से व्यापक स्थितियों का साक्षात्कार करता हुआ स्वस्थ दिशाओं की ओर गतिशील होता है । यह पगडण्डी है यथार्थ -परक सामाजिक सन्दर्भों की ।'[1] यही कारण है कि कवि ने अपने काव्य में जीवन से

---

1. संतोष कुमार तिवारी, 'नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षार', पृष्ठ - 219.

सम्बन्धित प्रत्येक विषय को उठाया है और यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है ।

'भारती' के काव्य सृजन का सामाजिक परिवेश स्वतंत्र न था । तमाम परम्पराएँ व मर्यादाएँ केवल स्त्री को ही नहीं पुरूष को भी निभानी पड़ती थीं । प्रेम के क्षेत्र में असफल कवि ने उन अनुभूतियों का भी यथार्थ चित्रण किया है ।

वास्तव में निष्क्रिय विद्रोह करके आदमी यथार्थ से नहीं जीत सकता वह अतीत की स्मृतियों के सहारे वर्तमान सामाजिक परिवेश में नहीं रह सकता । कल्पना में कितना ही आनन्द क्यों न हो किन्तु यथार्थ की भावभूमि पर सारी कल्पनाएँ खोखली परिभाषाएँ बन जाती है, और 'भारती' की नायिका यह कहने के लिए विवश हो जाती है -

'इन मुरदा सपनों को
सीने से चिपकाये रखने से ही अब क्या होगा ?
ये मुरदा सपने
बूँद -बूँद करके तुमको पी डालेगें ।'[1]

प्रेम के सन्दर्भ में 'भारती' का कवि परवर्ती रचनाओं में यथार्थवादी है । वह कला कल्पना, कोमलता को धोखा मानता है -

'यह है मेरे पाप पुण्य का सारा लेखा जोखा,
इसे जानकर मुझे प्यार करने का करना साहस.
वैसे मेरी कोमलताएँ, मेरी वाणी का रस
मेरी कला, कल्पना, दर्शन यह सब केवल धोखा
खूब समझ कर जीवन में आओ, वैसे मुझको क्या ?
मैंने तो हर एक खिलौने को स्वीकार किया ।'[2]

'आधुनिक यथार्थ की अभिव्यक्ति 'प्रमथ्यु गाथा' में बड़ी सशक्त व मार्मिक बन पड़ी है । क्योंकि प्रमथ्यु को दुख इस बात का हैं कि अग्नि मिलने के बाद भी सब पशु हैं - यह रचना द्युतिपर के साम्राज्यवादी सामन्ती नक्शे को यथार्थ रूप देती है । भय, आतंक, दासता जन साधारण की साहसहीनता, निर्णय लेने की अक्षमता, दण्ड भोगने से पलायन आदि।

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 42, 2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ- 60

क्योकि उसमें बिना पीड़ा के सुख भोगने की अंतरंग लालसा है ।'[1]

'प्रमथ्यु गाथा' आधुनिक मानव की स्वार्थी व कायर मानसिकता की यथार्थ अभिव्यक्ति है । यह सच है कि वर्तमान युग में व्यक्ति सुख चाहता है, किन्तु श्रम करना नहीं चाहता । समाज की संघर्षमय परिस्थितियों में आज का व्यक्ति एक तमाशबीन के अतिरिक्त कुछ नहीं है जो करिश्मा देखना चाहता है, किन्तु साहस पूर्ण कार्य करना नहीं -

> 'यह है करिश्मा, और
> हम सब करिश्मों के प्यासे हैं ।
> चाहता अगर तो, हममें से हर एक व्यक्ति
> अपने ही साहस से प्रमथ्यु हो सकता था -
> लेकिन हम डरते थे ।'[2]

भारती ने अशरीरी, दिव्य लोकोत्तर काव्य प्रेरणा को कभी स्वीकार नहीं किया । वह अपार्थिव कल्पनाओं और रहस्यात्मक अभिव्यक्ति, अस्पष्ट शब्दजालों के हिमायती कभी नहीं रहे । अप्रत्यक्ष, अप्रस्तुतों के मोहक तानों बानो में अनुभूति की ईमानदारी और मानवोचित सन्दर्भ ओझल हो जाते हैं । इसलिए मानवीय धरातल पर भारती ने आदम की संतानों के साथ बेहिचक आँख मिचौनी खेली है । वासनाओं, कामनाओं को उन्हीं की बोली में बोला है । भारती का कवि व्यक्तित्व असाधारणता का बाना नहीं ओढ़ता ।'[3]

'भारती' के कवि को स्वर्ग नहीं धरती प्यारी है, जो यथार्थ की पहचान है । अतः उसने कुचली पंखुरियों की दर्दीली आवाजें सुनी हैं और हिचकियों का व्यापार किया है । वह दर्द को अर्थो का स्पर्श कराना चाहता है । यह दृष्टि कवि को यथार्थ सामाजिक सन्दर्भो में खींच लेती है । उसका दर्द यथार्थ संपृक्त होने के कारण विराट जिन्दगी में परिणत हो जाता है ।

> 'सबका जीवन है भार और सब जीते हैं
> बैचेन न हो
> यह दर्द अभी कुछ गहरे और उतरता है,
> फिर एक ज्योति मिल जाती है ।'[4]

---

1. संतोष कुमार तिवारी, 'नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर', पृष्ठ - 228
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृ0-5,
3. अज्ञेय, दूसरा सप्तक, (स.) पृष्ठ - 165
4. धर्मवीर भारती "ठण्डालोहा', पृष्ठ 87

अपनी यथार्थवादी जीवन दृष्टि के कारण ही कवि कल्पना में सुख नहीं खोजता, बल्कि जिन्दगी के दर्द में प्रकाश की अनुभूति करता है ।

कवि की इस यथार्थ संपृक्त जीवन दृष्टि ने उसे साहसी बनाया है । प्रेम की पीड़ा हो या प्रेमिका का सौन्दर्य । हर एक को उसने अपने साहस से पूर्णतः कुण्ठाहीन अभिव्यक्ति दी है । 'भारती ने सबसे पहले सरलतम भाषा में रंगबिरंगी चित्रात्मकता से समन्वित साहसपूर्ण, उन्मुक्त रूपोपासना और उद्दाम यौवन के मांसल गीत; जो न तो मन की प्यास को भुंठलायें और न उसके प्रति कोई कुण्ठा प्रकट करें । जो सीधे ढंग से पूरी ताकत से अपनी बात आगे रखें । आदमी की सरल और सशक्त अनुभूतियों के साथ-साथ निडर खेल सकें, बोल सकें ।'[1]

आधुनिक सभ्य समाज का व्यक्ति प्रयासहीन उपलब्धियाँ चाहता है और जब उसे वे मिल जाती हैं, तो उन उपलब्धियों को वह मूल्यहीन समझता है । उनका प्रयोग वह सृजनात्मक कार्यों में नहीं करता । द्युतिपर के महलों से लायी गयी अग्नि का उपयोग लोग ठीक वैसे ही करते हैं जैसे आज की जनता स्वतंत्रता का ।

'मुझसे ये
सुबह शाम चूल्हा सुलगायेंगे
शैया गरमायेंगे
सोना गलायेंगे
और जरा सा मौका पाते ही
अपने पड़ौसी का सारा घर फूंकेंगे ।'[2]

निष्कर्षतः कवि 'भारती' का भावुक हृदय कल्पना की उड़ान से यथार्थ के धरातल पर जल्दी लौट आया है । इसी यथार्थ की अभिव्यक्ति -

'यों कथा - कहानी उपन्यास में कुछ भी हो
इस अधकचरे मन की पहली कमजोरी को
कोई भी याद नहीं रखता
चाहे मैं हूं, चाहे तुम हो ।'[3]

---

1. अज्ञेय, 'दूसरा सप्तक', (सं.) पृष्ठ - 165
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ- 6
3. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 72

निष्कर्षतः 'भारती' सामाजिक कथ्य को अंकित करने वाली इन कविताओं में यथार्थ सामाजिक चेतना को सहेज कर आगे बढ़े है । इनमें 'भारती' के रोमांटिक कलाकार ने सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है ।

प्रेम एवं सौन्दर्य बोध :

छायावादी वायवीयता एवं उर्दू की नाजुक मिजाजी के कारण 'भारती' की प्रेमपरक रचनाएँ रोमांटिक एवं माँसल सौन्दर्य से पूर्ण हैं । क्योंकि 'भारती' का काव्य जिन गलियों से होकर गुजरा है, उनमें पहली गली है - रूपासक्ति और उद्दाम यौवन के माँसल गीतों की । यह सोपान शरीर सौन्दर्य की उपासना और वासनात्मक भावनाओं का उन्मुक्त काव्य है । यह बेहिचक आँख मिचौनी उनकी किशोर भावुकता और रोमानी वृत्ति की परिचायक है ।'[1] इसलिए इनकी रचनाओं में प्रेमजन्य निराशा, आशा, स्मृति एवं कहीं-कहीं पूर्व राग के चित्र भी मिलते है । यद्यपि इनकी कविताओं में रोमांटिक भावना एवं मांसलता है तथापि यह सच है कि 'इन कविताओं में लोक जीवन की मस्ती एवं उल्लास के स्थान पर रागात्मक उदासी, सूनापन व निराशा ही अधिक मुखर हुई है ।'[2]

'भारती' की प्रेम भावना जीवन के दोनों छोरों का स्पर्श करती है । इसीलिए प्रेमिका के प्रति माँसल वासनात्मक दृष्टिकोण होते हुए भी पावन प्रेम के अंश काव्य में विद्यमान हैं । भारती का कवि प्रेम व वासना दोनो को अनिवार्य मानता है । यही द्वंद्व इनके उपन्यास 'गुनाहों का देवता' में सुधा व पम्मी के माध्यम से व्यक्त हुआ है । वासना को कवि स्वर्ग की पगडंडी मानता है । बिना वासना के जिन्दगी उसके लिये मूल्यहीन है एवं वासना का विष उसके लिए अमृत तुल्य है । किन्तु शर्त है कि वह प्रेमिका के रूप सौन्दर्य में हो -

> 'मुझे तो वासना का विष हमेशा बन गया अमृत
> बशर्ते वासना भी हो तुम्हारे रूप से आबाद ।'[3]

'कविता में कवि कायिक प्रेम को पाप अथवा अभिशाप नहीं समझता है, बल्कि इस प्रकार आवश्यक मानता है जितनी कि जीने के लिए वायु ।'[4]

---

1. संतोष कुमार तिवारी, 'नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर' पृष्ठ - 219
2. रामदरश मिश्र, हिन्दी कविता तीन दशक', पृष्ठ - 138
3. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 18
4. हुकुमचन्दं राजपाल, 'धर्मवीर भारती: साहित्य के विविध आयाम', पृष्ठ - 20

कनुप्रिया में कवि ने इसी वासना तृप्ति को एक महत्वपूर्ण तथ्य के रूप में स्वीकार किया है । शरीर सुख और सहज तन्मयता में विश्वास करने वाली कनुप्रिया कृष्ण के आदर्शों की अपेक्षा शारीरिक चेष्टाओं के प्रति अधिक आश्वस्त है । 'कृति' में चित्रित आलिंगन के अनेक चित्र इसी उददाम भोग वासना की अनिवार्यता सिद्ध करते हैं -

'मैनें कस कर तुम्हें जकड़ लिया है,
और जकड़ती जा रही हूँ
और निकट और निकट ।'[1]

इतना ही नहीं, कनुप्रिया समय के अचूक धनुर्धर से धनुष तरकश तब तक रखे रखने को कहती है, तब तक कि वह अपनी केलिकथा को न भोग ले, उसका अस्थायी विराम चिह्न न प्राप्त कर ले ।'[2]

प्रेम के इस शाश्वत चिरन्तन रूप को कवि ने अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में बार-बार परिभाषित किया है । इनकी कहानियों - 'पूजा' व 'शिंजिनी' में नारी के प्यार का यह रूप, जिसमें प्रेम व वासना दोनों के सत्य को स्वीकारा गया है, अपने पूरे वेग से प्रकट होता है । कवि के प्रेम का यह समर्पण मात्र शारीरिक न होकर अनिर्वचनीय है - स्वयं कवि के शब्दों में -'समर्पण के किसी एक स्तर पर हमारा सारा भौतिक जीवन एक प्रतीक मात्र रह जाता है । हमारे आत्मिक जीवन का हमारे प्यार, हमारी ममताएँ, हमारे सम्बन्ध, हमारी कामनाएँ उन सब को बहुत गहरा नया अर्थ मिल जाता है और वह अर्थ शारीरिक नहीं होता, वह शरीर से बहुत ऊपर उठा हुआ होता है । और उस स्तर पर शरीर या तो केवल माध्यम होता है या कभी होता ही नहीं, शरीर की चेतना भी हममें नहीं रह जाती । हम सिर्फ भावना मात्र रह जाते हैं । एक दिवा-स्वप्न, एक अदृश्य संगीत, एक अशरीरी समर्पण ।'[3]

'गुनाहों का देवता' में कवि का प्रारम्भिक रूप वासना विहीन है । वह सात्विक प्रेम का पुजारी है । लेकिन दूसरी ओर पम्मी का आकर्षण उसे प्रेम के वासनात्मक रूप की ओर अग्रसर करता है । यहाँ उपन्यास का नायक चन्दर वासना को बड़ी सहजता से स्वीकारता है, 'पम्मी ने मेरे मन की सारी कटुता, सारा विष खींच लिया, मुझे आज लगा कि बहुत दिनों बाद मैं फिर पिशाच नहीं आदमी हूँ । यह वासना का ही दान है । तुम कैसे कहोगी कि वासना आदमी को नीचे ले जाती है ?'[4] उसकी यह संतुष्टि ही 'ठंडालोहा' की मस्ती बन गयी है । यहाँ कवि बिना वासना के जिन्दगी अधूरी महसूस करता है -

---

1. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया', पृष्ठ - 22
2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 53
3. धर्मवीर भारती,'ठेले पर हिमालय' पृष्ठ - 56
4. धर्मवीर भारती, 'गुनाहों का देवता' पृष्ठ-263

'किसी की गोद में सर धर

घटा घनघोर बिखरा कर, अगर विश्वास सो जाये,

न हो यह वासना तो जिन्दगी की माप कैसे हो ?'[1]

'गुनाहों के देवता' से ही कवि का प्रेम वासना के समानान्तर चलने लगता है । 'ठंडालोहा' में प्रेम और वासना क्रमशः सुधा और पम्मी के माध्यम को दृष्टि में रखकर प्रकट होती रहती है । स्पष्ट है कि एक दृष्टि के पीछे पम्मी की वासना है व दूसरी के पीछे सुधा का निष्काम समर्पण । उपन्यास की कई पंक्तियाँ 'ठंडालोहा' के साथ मिलकर पढ़ी जा सकती हैं । सुधा के प्रति उपन्यासकार 'भारती' के विचार 'ठंडालोहा' की नायिका के लिए भी हैं । चूँकि सुधा पवित्र प्रेम में विश्वास करती है, अतः उसके सद्य स्नाता रूप को कवि भी वैसा ही देखता और महसूस करता है -

'प्रातः सद्यस्नात

कंधो पर बिखेरे केश

आँसुओं में ज्यों

धुला वैराग्य का सन्देश ।'[2]

छायावादी प्रभाव के कारण रोमांटिक चित्रों की इनकी रचनाओं में कमी नहीं है । नायिका की पूर्व-राग की स्थिति से लेकर बिछोह तक के क्षण कविता में कुशलता से उकेरे गये हैं । यहाँ कवि पर रीतिकालीन प्रभाव है जो किंचित मौलिकता के साथ अभिव्यक्त हुआ है । एक ओर यदि कवि फीरोज़ी होठों' पर अपनी जिन्दगी दांव पर लगाता है तो दूसरी ओर वह 'लोक की मरजाद' का उपदेश देना भी नहीं भूलता । मिलन का स्वरूप इनकी रचनाओं में जितना मादक है, विरह का चित्रण उतना ही कटु एवं वेदना पूर्ण ।

छायावादेत्तर काव्य की आत्म-परक काव्य प्रवृति 'भारती' के प्रारम्भिक काव्य की विशेषता है । अतः इनके काव्य में संयोग की माँसल अतृप्ति की भावना, मिलन की आकांक्षा एवं आमंत्रण भी है । अनेक स्थलों पर कवि प्रकृति की मादकता में मिलन की अनुभूति करता प्रतीत होता है और उसका बेकाबू मन किसी शहज़ादी के हाथों बिक जाता है -

---

1. अज्ञेय, 'दूसरा सप्तक' (स.) पृष्ठ - 174
2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 5

'आज हवाओं नाचो गाओ

बांध सितारों के नूपुर

चाँद जरा घूँघट सरकाओ

लगा न देना कहीं नजर

हरी बाँसुरी को आयी है, मोहन के होंठो की याद

फिर बहुत दिनों बाद खिला बेला मेरा आँगन महका ।'[1]

प्रेम की एक-एक अनुभूति के सामने सोने का स्वर्ग भी तुच्छ प्रतीत होता है । इसीलिए कवि प्रिया को समझाता है -

'अगर सच पूछो मेरी प्राण ।

व्यर्थ है, स्वर्ग, नरक अनुमान

तुम्हारी मुस्काहट में स्वर्ग

तुम्हारे आँसू में भगवान ।'[2]

इस स्वर्ग प्राप्ति के बाद सामने आने वाली सामाजिक मर्यादाओं को कवि चुनौती देता है -

'अगर मैंने किसी के होंठ के पाटल कभी चूमे,

अगर मैंने किसी के नैन के बादल कभी चूमे

महज इससे किसी का प्यार मुझको पाप कैसे हो ?'[3]

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रेम के सुखद क्षणों की कविताओं में कवि ने वासना को नकारा नहीं है । 'भारती ने अपनी कविताओं में सेक्स कुण्ठा के चित्रण को वर्जित नहीं रखा है, और न ही अति यथार्थवादी कवियों की तरह अश्लीलता को अपनाया है, किन्तु नितान्त मानवीयता और मसृणता, कोमलता और पवित्रता के रूप में काम भावना को अभिव्यक्त किया है । वे काम भावना को मानवीय मानते हैं, इसलिए मनुष्य जहाँ तक उसे पवित्र माने, पाप न माने उसी सीमा तक भारती ने उसे स्वीकारा है ।'[4]

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 17
2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 28
3. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 22
4. पुष्पा वास्कर, 'धर्मवीर भारती व्यक्ति और साहित्यकार', पृष्ठ - 62

प्रेम के सुखद एवं मादक वर्णन के साथ ही कवि ने प्रेमजन्य निराशा, कुंठा व वेदना को भी चित्रित किया है । प्रेम के बीच समाज की कठोर दीवार ने कवि के प्रेमी मन, उसके भोले निश्छल विश्वास और उमगों को कुचल दिया है, जिससे उसकी समस्त चेतना कुंठित हो गयी है । प्रेम के स्वर्णिम क्षणों की अनुभूति पर ठंडेलोहे की चादर सी छा गयी है -

'मेरी दुखती हुई रगों पर ठंडा लोहा
मेरी स्वप्न भरी पलकों पर
मेरी दर्द भरी आत्मा पर
स्वप्न नहीं अब, गीत नहीं अब,
दर्द नहीं अब,
एक पर्त ठंडे लोहे की ।'[1]

असफल प्रेमी प्रिया की स्मृतियों को ही सीने से चिपकाये जिन्दगी जीता है प्रकृति उसके भावों को उद्दीप्त भी करती है । मेघ भरी दोपहर में वह प्रिया की स्मृति में उदास हो जाता है -

'छू गयी मुझको न जाने
कौन बिसरी बात
भूला क्षण
जिस तरह छू जाये नागिन
फूल को खिलते पहर ।'[2]

यही स्मृति उसके मन को उद्विग्न कर देती है और वियोग उसे बौद्धिकता व चिन्तन के सामीप्य में ले आता है । इस नये रस की अनुभूति कुछ इस प्रकार होती है -

'तन पिघले फूलों की
आग पिया करता है
पर मन में कई प्रश्न चिह्न उभर आते हैं
चुम्बन, आलिंगन का जादू
मन को जैसे ऊपर ही ऊपर, छूकर रह जाता है ।'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ-1,
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 50
3. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 11

किन्तु बौद्धिकता के कारण कवि इन स्मृतियों से मुक्त नहीं हो पाता । पुरानी यादें उसे बार-बार उदासी के कगार पर ला कर खड़ा कर देती हैं । इन स्मृतियों के उद्दीपन में प्रकृति की विशेष भूमिका रहती है -

'आज गया तू पिछली यादें. झकझोर
पहला पहला घायल मन वय किशोर
ऐसी थी, बिलकुल ऐसी ही थी शाम ।'[1]

'भारती' का कवि प्रेम में इन स्मृतियों व विरह को अनिवार्य मानता है । क्योंकि विरह पीड़ा मादकता के क्षणों को और अधिक सुन्दर बना देती है । विरह में मिलन की आशा प्रेमी को उत्साही बनाये रहती है -

'मगर यह सूनापन तो नहीं, यही तो है जीवन की राह,
मिलन में मादकता हो मगर, विरह में भी तो कितनी चाह ।'[2]

विरह की चाह कवि का स्वभाव नहीं है । वह स्वेच्छा से इसे नहीं स्वीकारता । यह शायद उसकी विवशता है, क्योंकि प्रेम और मर्यादा का जीवन में सदा संघर्ष चलता रहता है और प्रेमी सामाजिक मर्यादा के कारण ही बिछोह के दुख को सहन करता रहता है । मर्यादा में बंधा वह अपने रंगीन सपनों को टूटते, बिखरते देखता है, किन्तु इस बन्धन को तोड़ता नहीं, बल्कि अपनी प्रिया को लोक की मर्यादा पालन का उपदेश देता है- -

'भोर फूटे भाभियाँ जब, गोद भर आशीष दे दें,
ले विदा अमराइयों से, चल पड़े डोला हुमच कर
है कसम तुमको, तुम्हारे कोपलों से नैन से आँसू न आयें
राह में पाकड़ तले सुन सान पाकर
प्रीत ही सब कुछ नहीं है लोक की मरजाद है सबसे बड़ी,
बोलना रुंधते गले से,
ले चलो । जल्दी चलो । पी के नगर ।'[3]

यहाँ कवि अपने प्रेम की लोक व्यवहार के अनुकूल परिणति कर देता है । जिसे हम प्रेम का यथार्थवादी पर्यावसान कह सकते हैं ।

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 56
2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 36
3. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 10

इस प्रकार भारती का प्रेमी आदर्श, गम्भीर एवं मर्यादाप्रिय है । वह पीड़ा सह कर भी प्रेम की गुरूता, व्यवहारिकता व मर्यादाओं की रक्षा करता है और अपने प्रेम को दुर्बल नहीं बनाता -

'न मुझसे आशा रक्खो प्राण कि मैं गूँथूंगा आँसू हार
कि मै लेकर दो मुरझे फूल, करूँ मृत जीवन का श्रृंगार
तुम्हारी चोट, तुम्हारी भेंट, करूँ उसको रोकर स्वीकार ?
नहीं इतने दुर्बल हैं प्राण, नहीं इतना दुर्बल है प्यार ।'[1]

उसका प्रेम एक निष्ठ होते हुए भी दुर्बल नहीं है । बिछोह के बहुत दिनों बाद मिलने पर भी वह प्रिया को अपनी विरह व्यथा नहीं सुनाता, प्रत्युत आतारेक पीड़ा के उपरान्त भी बाह्य रूप से सामान्य दिखने का प्रयास करता है -

'देखा ?
अब मैं पहले से कितना बेहतर हूँ
तुम मेरी लापरवाही पर सिर धुनती थीं
अब रहन-सहन में कितनी स्वच्छ व्यवस्था है ।
मैं अब अपनी शामें बरबाद नहीं करता
कुछ कामकाज में हरदम खोया रहता हूँ ।'[2]

जीवन को सुव्यवस्थित बनाने का यह प्रयत्न वैसा ही है जैसे अंधेरे में डरा हुआ व्यक्ति अपने आप को भुलावा देता हुआ कहे कि वह डरा हुआ नहीं है ।'[3] किन्तु प्रत्युत्तर में नायिका का चुपचाप केवल रोना व प्रेमी का समझाना कितना मार्मिक है -

'पर इसमें ऐसी कौन बात है रोने की ?
जाने दो, लो यह चाय पियो ।'[4]

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 35
2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 74
3. मधुर मालती सिंह, 'आधुनिक हिन्दी क़विता में विरह भावना', पृष्ठ - 454
4. धर्मवीरभारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 74

'भारती' की कविताओं में वर्णित प्रेम में विरह व्यथा का कारण मात्र रूढ़ियाँ ही नहीं सम्बन्ध विच्छेद की पीड़ा भी है, क्योंकि यदि रूढ़ियों के कारण कवि के प्रेमी मन की निराशा अभिव्यक्त हुई है तो वह वासनात्मक सौन्दर्य चित्रण कैसे कर सका ? 'भारती' की कविताओ में सम्बन्ध विच्छेद का विषाद अधिक है एवं प्रेम में मिली असफलता इसका मूल बिन्दु है। कवि इसके लिए समाज को ही दोषी नहीं मानता बल्कि बौद्धिकता, परिस्थितियों व विडम्बनाओं आदि के कारण वह प्रेम को भूल समझने लगता है । वह अनुभव करता है कि जीवन लक्ष्यहीन है व नारी का व्यक्तित्व सीमित -

'वैसे मेरी कोमलताएँ, मेरी वाणी का रस
मेरी कला कल्पना, दर्शन, यह सब धोखा
खूब समझ कर आओ, वैसे मुझको क्या
मैने तो हर एक खिलौने को स्वीकार किया ।'[1]

उपर्युक्त पंक्तियाँ प्रेम के प्रति स्वस्थ मानसिकता का आभास नहीं देती । प्रेम की असफलता निराशा व सम्बन्ध विच्छेद की घुटन इसमें अभिव्यक्ति पाती है ।

'भारती' का कवि मन से तन की ओर अग्रसर हुआ है । 'ठंडालोहा' की कुछ रचनाओं में 'पूजा सा रूप' की आराधना करते-करते वह फीरोज़ी होठो पर अपनी जिन्दगी दांव पर लगा देता है । माँसल भूख की तृप्ति के पश्चात वह यथार्थवादी भावभूमि पर आकर इस तन मन की उलझन में घिर कर द्वंद्वग्रस्त हो जाता है । वह चाह कर भी नेह और लगन से बच नहीं पाता -

'वहीं मैं हूं
वही मेरा वीतरागी मन
नहीं अब जिसमें किसी से
खास कोई नेह कोई लगन
किन्तु फिर क्यों चित्त उचटता काम से
क्यों उदासी और बढ़ती शाम से ।'[2]

प्रेम में मिले बिछोह के कारण 'भारती' के प्रेमी की स्थिति उलझन भरी हो जाती है और वह स्वयं को खाली-खाली सा अनुभव करता है -

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 60 2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 31

'न पहुंच सका मैं अपने ही घर के द्वार
झूठे आलिंगन से झूठे आलिंगन तक
यू मैं भटका कितनी बार ।'[1]

प्रेम से प्राप्त निराशा व अलगाव के कारण वह अनुभव करता है कि वह प्यार जो कभी उपजा था, पनपा थां, शायद अब कभी अपने आप को नहीं दोहरायेगा -

'हाथ में जब हाथ कोई आयेगा
उष्ण ममता नहीं केवल एक खालीपन उसे छू जायेगा
प्यार यह क्या अब कभी भी स्वयं को दुहरायेगा ?
नहीं । शायद नहीं ।'[2]

किन्तु नहीं । शायद नहीं ही प्रेमी के मन की वह उलझन है जो यह स्पष्ट करती है कि कवि प्रेम में बौद्धिक नहीं बन पाया । इसीलिए भारती की प्रेम परक कविताओं का सारांश उनके ही शब्दों में -

'इन सब से इतना जाहिर होता है
यों दुनिया - दिखलावे की बात भले कुछ हो
इस पहले-पहले पावन आत्म समर्पण को
कोई भी भूल नहीं पाता
चाहे मैं हूँ, चाहे तुम हो ।'[3]

भारती के कवि ने प्रेमगीत बड़ी तन्मयता से गाये हैं । परवर्ती रचनाएँ-जहाँ कवि यथार्थ की भाव भूमि पर खड़ा है , वहाँ ये प्रेम-परक रचनाएँ ओढ़ी हुई बौद्धिकता से आक्रान्त हैं । इनकी प्रेम प्रवृत्ति में भावुकता अधिक है । डाँ सुरेश चन्द्र सहल के शब्दो में - भारती की कविताओं में मुझे हृदय का स्पन्दन, संवदेनशीलता व मधुर झंकार ही सुनाई पड़ती है । अगर कवि भारती को नयी कविता का प्रेम कवि कहें तो मेरी समझ में अत्युक्ति न होगी ।'[4]

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 35
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 39
3. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 73
4. सुरेशचन्द्र सहल, 'नयी कविता का मूल्यांकन', पृष्ठ - 91

यह संच है कि भारती के काव्य में जितनी तल्लीनता, पटुता, प्रेमपरक रचनाओं में है अन्यत्र नहीं । संयोग सम्बन्धी रचनाएँ जहाँ एक अजीबसी मादकता की सृष्टि करती हैं, वहीं वियोग की कविताएँ बोझिल उदासी लिए हुए प्रतीत होती हैं । प्रेमपरक रचनाएँ कवि की वास्तविक व अनुभूति जन्य अभिव्यक्ति हैं । जहाँ वह बौद्धिक और चिंतनशील बन कर प्रेम की अभिव्यक्ति करता है, वहाँ वह पूर्णतः सफल प्रतीत नहीं होता । यहाँ यह स्पष्ट कर देना अप्रासंगिक न होगा कि छायावादोत्तर आत्म--परक कविता की जो भावभूमि बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल, सुमन आदि के काव्य में परिलक्षित होती है उसी तरह की वासनामय भंगिमाएँ, रंगीन तेवर और यक्षी रोमान्स की झलक भारती के प्रारम्भिक काव्य में दिखलाई देती है ।'[1] और प्रारम्भिक काव्य का अधिकांश प्रेमपरक कविताओं को ही माना जा सकता है । कवि ने प्रेम व विरह की अनुभूति को ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया है । क्योंकि यहाँ कवि किसी कुण्ठा से पीड़ित नहीं है । जीवन में प्यार के महत्व को खुले दिल से स्वीकार करने वाले भारती ने कुंठा विहीन प्रेम को स्वीकार किया है ।' भारती ने प्रेमभोग में किसी तरह का छद्म भाव नहीं ओढ़ा है । मन के प्रकृत राग को खुलकर गाया है । जाहिर है कि भारती मूल मानव रागों के गायक हैं ।'[2]

सौन्दर्य बोध :

सौन्दर्य काव्य की मूल प्रेरणाओं का अखण्ड स्रोत है । आदिकाल से मानव को प्रभावित करने वाली यह भावना काव्य का आधार है । सौन्दर्य की तीव्रतम अनुभूति के प्राणवान् भाव स्फोट से ही कवि के वास्तविक हृदय की झलक मिलती है । सौन्दर्य की इसी वास्तविक अनुभूति का चित्रण 'भारती' ने किया है । चूँकिं भारती का कवि प्रेम के रोमांटिक एवं मांसल रूप का समर्थक रहा है, अतः स्वाभाविक है कि वह सौन्दर्य प्रेरित भी हो । भारती ने अपने काव्य का अधिकांश इसी सौन्दर्य से प्रेरित एवं मुग्ध होकर रचा है । इनकी रचनाओं में मानवीय प्राकृतिक एवं काव्य सौन्दर्य का सुन्दर संयोजन हुआ हैं । मानवीय सौन्दर्य के अन्तर्गत कवि पुरूष सौन्दर्य की अपेक्षा नारी सौन्दर्य से अधिक प्रभावित है । वह नारी के पवित्र और वासनात्मक, दोनों रूपों का पुजारी है । नारी सौन्दर्य वर्णन में कवि छायावादी मनोवृत्ति से प्रभावित है, किन्तु द्वितीय महायुद्धोत्तर परिवेश के कारण परवर्ती रचनाओं में सौन्दर्य यथार्थ की भाव - भूमि पर प्रतिष्ठित हैं ।

नारी सौन्दर्य वर्णन में कवि ने छायावादी स्वप्निलता और कल्पना शीलता को अपने काव्य में उतारा है 'अस्थि सज्जा से निर्मित कमनीय गात के अभिनन्दन में कवि ने स्वयं को लुटा दिया है और उसकी तन्मयता हमें भी छू लेती है ।'[3]

---

1. डा० संतोष तिवारी,'नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर' पृ०-219
2. अवधनारायण मुदगल -'सारिका' दिसम्बर 86, पृष्ठ - 41-42
3. रामकुमार खण्डेलवाल, 'हिंदी काव्य और प्रयोगवाद', पृष्ठ - 76

सौन्दर्य की छायावादी पवित्रता के कारण कवि प्रिया के चरणों को वरदान मानता है । वह इनकी आराधना में स्वयं को भुला देता है और प्रिया के 'पूजा से रूप को' पाकर सौ जन्मों के अन्धकार में भी ज्योति का आभास पाता है -

'पूजा सा तुम्हारा रूप
जी सकूंगा सौ जनम अंधियारियों में
यदि मुझे मिलती रहे, काले तमस की छाँह में
ज्योति की यह एक अति पावन घड़ी
प्रार्थना की एक अनदेखी कड़ी ।'[1]

नारी सौन्दर्य के प्रति विशेष आकर्षण होने के कारण कवि ने मुग्धा प्रेमिका के मुख, नेत्र, केशराशि व चरणों का बहुत ही मोहक वर्णन किया है । नायिका की कोमलता, सरलता व उसके अल्हड़पन से 'भारती' के सौन्दर्य चित्र और भी आकर्षक हो गये हैं -

'पान फूल सा मृदुल बदन
बच्चों की जिद सा अल्हड़पन
तुम हो कोमल बहुत सुकोमल
अभी न सीखो प्यार ।'[2]

रोमानी अनुभूतियों के कारण कवि का सौन्दर्य वर्णन कोमलता एवं मसृणता से भरा हुआ तथा नारी के प्रति समर्पण की पुरूषोचित साध लिये हुए है ।

भारती के सौन्दर्य वर्णन को किसी युग विशेष की सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता । इसमें कहीं छायावादी सूक्ष्मता व कोमलता है तो कहीं रीतिकालीन श्रृंगारिकता । भारती का कवि एक ओर प्रिया के पावन रूप की आराधना करता है, उसे 'अर्चना की धूप' स्वीकार करता है, उसके चरणों को अपना पथ प्रदर्शक मानता है -

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 5
2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 24

ये बड़े सुकुमार इनसे प्यार क्या ?

ये महज आराधना के वास्ते

जिस तरह भटकी सुबह को रास्ते

ये चरण मुझको न दें अपनी दिशाएँ भूलने ।'[1]

किन्तु नायिका के इस पवित्र सौन्दर्य को निहारते-निहारते कवि के मन में एक अनोखी प्यास जाग उठती है और इन्हीं चरणों के लिए वह -

'सोन जुही की पंखुरियों से गुँथे

ये दो मदन के बार मेरी गोद में ।'[2]

कह कर वासना की अभिव्यक्ति भी करता है । प्रिया के फ़ीरोजी होंठ कवि की माँसल सौन्दर्य भावना को और बढ़ा देते हैं । और वह रीतिकालीन सौन्दर्यबोध के समकक्ष प्रतीत होने लगता है । रीतिकालीन लज्जाशील, छुई मुई सी सकुचाती नवोढ़ा का सौन्दर्य चित्र इसी भावना को अभिव्यक्ति देता है -

'यह छुई मुई सा सकुचाना

भयभीत मृगी सा घबराना

यह नहीं लाज की बेला प्रिय ।'[3]

डा0 विश्वम्भर उपाध्याय के शब्दों में -'भारती में सौन्दर्य रीति कालीन उत्तेजक विलास का रूप धारण करता दिखाई देता है ।'[4] किन्तु भारती के काव्य में नारी सौन्दर्य का विकृत रूप कहीं नहीं है । प्रत्युत नई कविता की प्रवृत्तियों व परिवेश के कारण नारी सौन्दर्य के प्रति सहज अनिवार्यता का चित्रण मिलता है । इसी सहज अनिवार्यता के कारण भारती ने प्राचीनता में नवीनता का समावेश कर सौन्दर्य चित्र प्रस्तुत किये हैं । 'कनुप्रिया' की राधा का अप्रतिम सौन्दर्य वर्णन इसी तरह का है । एक ओर 'चंचल शोख विचुम्बित पलकों' वाली राधा है, जिस के सौन्दर्य वर्णन को कवि ने अपनी कल्पना द्वारा हृदयग्राही बना दिया है, तो दूसरी ओर उसके अंतर्मन के सौन्दर्य को अभिव्यक्ति देना भी भारती भूले नहीं है । उन्होंने राधा के सौन्दर्य चित्रण में तन्मयता, भावुकता व कलात्मकता का परिचय दिया है । 'यमुना के घाट पर बैठी राधा, कृष्ण से पैरों में महावर लगवाती

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 4
2. धर्मवीरभारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 3
3. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 20
4. विश्वम्भर उपाध्याय - 'आधुनिक हिन्दी कविता सिद्धान्त और समीक्षा', पृष्ठ - 483

राधा, कृष्ण की चन्दन बाँहों में बेसुध राधा, उजली माँग और चटुल मछलियों सी आँखों वाली राधा इन सबके चित्रण में कवि ने पूरी ईमानदारी का परिचय दिया है । सौन्दर्य प्रेमी 'भारती' ने सौन्दर्य वर्णन को नयी कविता के विकृत सौन्दर्य की अपेक्षा अत्यधिक मधुर, ललित, मोहक एवं गम्भीर रूप दिया है । इनका सौन्दर्य वर्णन यथार्थ होते हुए भी खटकता नहीं ।

'भारती के काव्य में एक विशेष प्रकार की मानसिक उथल पुथल भी है । घुटन, घबराहट, विवशता दर्द, सन्नाटा के बीच भी उनका गीतकार जिंदा रहा है ।'[1] और इस गीतकार ने वियोग का दुख भोगा । अतः काव्य में मुग्धा, प्रसन्न - वदना नायिका के साथ ही उदास प्रिया का सौन्दर्य भी उपस्थित है । उदासी के वातावरण में मुँह पर आँचल ढँके, थकी किरण के समान नायिका रूखी अलकों में और भी सुन्दर प्रतीत होती है। उदास आँखे, आँसुओं से धुले गाल और मिसरी से होठों पर अरमानों की प्यास, पलकों में बरसात छिपाये चम्पकवर्णी उदास नायिका भी इनके काव्य में सौन्दर्य चित्रण का माध्यम बनी है -

'खारे आँसू से धुले गाल
रूखे, हल्के, अधखुले बाल
तुम कितनी सुन्दर लगती हो,
जब तुम हो जाती हो उदास ।'[2]

भारती के कवि ने केवल नारी सौन्दर्य चित्रण ही नहीं पुरूष सौन्दर्य को भी अपने काव्य में स्थान दिया है । किन्तु पुरूष सौन्दर्य वर्णन में कवि उतना मुग्ध व भावुक नहीं है जितना कि वह नारी सौन्दर्य वर्णन में । फिर भी कृष्ण के सौन्दर्य वर्णन को कवि ने एक नया मोड़ दिया है । कृष्ण के सौन्दर्य में उनके बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आंतरिक सौन्दर्य के दर्शन अधिक होते हैं । कृष्ण के सौन्दर्य को चरम पर पहुँचाया है - राधा के सम्बोधनों ने । कनु के प्रेमी, रक्षक, सखा सौन्दर्य रूप के साथ ही उदास एवं वियोगी सौन्दर्य को विचित्र करना भी कवि भूला नहीं है । घाट से लौटते समय तीसरे प्रहर की अलसायी वेला में चुपचाप ध्यान मग्न खड़ा कनु और उसका अडिग, निर्लिप्त वीतरागी सौन्दर्य चित्रण बहुत ही प्रभावात्मक हुआ है -

'तुमने वंशी होठों से हटा ली थी,
और उदास, मौन तुम आम्रवृक्ष की जड़ों से टिक कर बैठ गये थे ।'[3]

---

1. संतोष तिवारी, 'नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर', पृष्ठ - 22।
2. धर्मवीर भारती, 'ठण्डालोहा', पृष्ठ - 7
3. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 22

कहीं-कहीं कनुप्रिया द्वारा चिन्तन के क्षणों में भी कृष्ण के सौन्दर्य की व्याख्या हुई है । युगबोध से प्रभावित राधा द्वारा कृष्ण का सौन्दर्य-

'तुम्हारा साँवरा लहराता हुआ जिस्म
तुम्हारी किंचित मुड़ी हुई शंख ग्रीवा
तुम्हारी उठी हुई चंदन बाहें
तुम्हारी अपने मे डूबी हुई
अधखुली दृष्टि
धीरे-धीरे हिलते हुए
तुम्हारे जादू भरे होंठ ।'[1]

सौन्दर्य प्रेमी 'भारती' की रूमानी वृत्ति केवल मानवीय सौन्दर्य तक ही सीमित नहीं रही है अपितु प्रकृति सौन्दर्य को भी उन्होंने व्यापक रूप से प्रस्तुत किया है । प्रकृति को कवि ने प्रेम, भोग एवं मांसलता में तो साथी माना ही, वियोग के बोझिल क्षणों में भी उसे अपनी भावनाओं से जोड़ा है । प्रकृति सौन्दर्य वर्णन में कवि ने छायावादी भावभूमि का अधिक अनुकरण किया है व प्रकृति के मानवीकृत रूप का चित्रण किया है । यहाँ कवि की कल्पना में कहीं 'दबे पाँव आकर, माथा, छूकर, बिंदिया उचटाने वाली चांदनी है ।'[2] तो कहीं 'मैघ की चूनर लपेटे दोपहर रूपी नायिका ।'[3]

अपनी उमंगों, आकांक्षाओं व भावनाओं को और कहीं-कहीं चिन्तन को कवि ने प्रकृति के अंचल में लपेट कर चित्रित किया है । कहीं प्रकृति सौन्दर्य उसके भावों को उद्दीप्त करता है तो कहीं उसकी रूमानियत को तोड़ देता है ।

'भारती' के काव्य में चिन्तनशीलता, बौद्धिकता एवं भावुकता के संयोजन तथा नवीन उपमानों, बिम्बों के द्वारा काव्य सौन्दर्य अनूठा बन गया है । इनकी रचनाओं से एक सुखद मानसिक अनुभूति होती है और हम वर्ण्य विषय के अप्रत्यक्ष विधान से प्रभावित हो जाते हैं । कवि का सौन्दर्य बोध नयी कविता के विकृत सौन्दर्य बोध की अपेक्षा पवित्र व शालीन है । 'यहाँ नयी कविता का एक ऐसा वर्ग और था जो विकृत सौन्दर्य की अपेक्षा पवित्र भावनाओं के आधार पर सौन्दर्य बोध देता है । भारती इसी वर्ग के कवि हैं । कई आलोचक यह कहते हैं कि नयी कविता में सांस्कृतिक पक्ष है ही नहीं । उन्हें उपर्युक्त उदाहरणों द्वारा संतुष्ट किया जा सकता है । अतः ये प्रयोग जहाँ एक ओर सांस्कृतिक परिपाश्र्व प्रस्तुत करते हैं वहाँ आज के संकट से गुजरते हुए कवि की

---

1. धर्मवीर भारती,'कनुप्रिया'पृ0-7। 2. धर्मवीर भारती,'सातगीतवर्ष' पृ0-69 3. धर्मवीर भारती,'सातगीतवर्ष'पृ0-3।

नयी पावन दृष्टि की आधुनिकता को भी सिद्ध करते हैं ।'[1]

परम्परा एवं नव निर्माण :

'भारती की रचनात्मक चेतना में युगबोध के साथ परम्परागत पूर्वापर प्रसंगो की विवेक सम्मत खोज है, इसीलिए वे बदलते परिवेश के अनुसार नया रूपान्तर प्रस्तुत कर सके हैं । इनकी कविता परम्परा से सार ग्रहण कर समाज को नव-निर्माण की ओर प्रेरित करती है । पौराणिक तथ्यों व परम्पराओं को अपनी कल्पनाशक्ति से सामयिक सन्दर्भों से जोड़ कर कवि ने अपनी विचारधारा को स्वस्थ अभिव्यक्ति दी है ।

'धर्मवीर भारती' ने जहाँ एक ओर पौराणिक प्रसिद्धियों को संरक्षण दिया है, वहाँ पौराणिक तथ्यों में अपनी कल्पना का रंग भर कर उन्हें आधुनिक सन्दर्भ में दर्शाने का प्रयास किया है जो, उनकी विकासशील भावना की पुष्टि करते हैं ।'[2]

'भारती' का कवि काव्य में निवनिर्माण की बात मानवतावादी दृष्टि को ध्यान में रखकर करता है । कवि आधुनिक सामाजिक अव्यवस्था, भूख और गरीबी के बीच उभर कर संघर्ष कर रही कविता को जीवन दे कर नया विश्वास देना चाहता है । उसकी कविता में ऐसी शक्ति है कि वह श्मशान में भी उमंगे भर सकती है -

'क्या हुआ दुनिया अगर मरघट बनी
अभी मेरी आखिरी आवाज़ बाकी है,
हो चुकी हैवानियत की इन्तेहा
आदमीयत का मगर आगाज़ बाकी है ।
लो तुम्हें मैं फिर नया विश्वास देती हूँ
नया इतिहास देती हूँ ।
कौन कहता है कि कविता मर गयी ?'[3]

'भारती' की कविता समस्याओं के शैतान से विद्रोह कर नवीन इतिहास निर्माण करना चाहती है, क्योंकि नव-निर्माण समाज की एक आवश्यकता है । कवि का विश्वास है कि परम्पराओं के ध्वंस में ही नव निर्माण के तत्व छिपे हैं । इन्हीं नये तत्वों के द्वारा कवि अधबनी धरा को पूर्ण करने का सन्देश कलाकार को देता है-

---

1. हरिचरण शर्मा, 'नयी कविता नये धरातल', पृष्ठ - 35
2. हुकुम चन्द राजपाल, 'धर्मवीर भारती : साहित्य के विविध आयाम', पृष्ठ - 53
3. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 46

'इसी ध्वंस में मूर्छित -सी कहीं
पड़ी हो नयी जिन्दगी क्या पता ?
सृजन की थकन भूल जा देवता ।'[1]

संक्रान्ति काल की विषमता एवं सामन्ती पूंजीवादी जीवन दृष्टि के विरोध में स्वाधीन चिन्तन के द्वारा कवि में पुरानी जड़ता के अवशेषो को नष्ट करने हेतु व्यापक विद्रोह की भावना है । 'भारती' का विश्वास है कि विद्रोह की आवाज उठाये बिना मानव अपनी उन्नति व विकास नहीं कर सकता ।

'भारती' का कवि कुंठित सीमाओं में परावलम्बी बन कर जीना नहीं चाहता, बल्कि रूढ़ियों के अंधकार की जमी हुई पर्तो को नष्ट कर के मानवीय संवेदना को समष्टि के लिए आत्मीय बनाना चाहता है । कवि अपने व्यक्तित्व के लिए नहीं अपितु समाज के प्रति अत्यधिक चिन्तनशील है, अतः वह समाज की कुरीतियों, दूषित परम्पराओं एवं वर्ग-वैषम्य की मनोवृत्तियों को समाप्त करना चाहता है । बँधी बँधायी लीक की अपेक्षा वह नया राज मार्ग बनाने को आतुर है । कवि मानता है कि मनुष्य का व्यक्तित्व आज वह पत्थर नहीं जिसे युग का जड़ सिद्धान्त अपने पैरों से कुचल दें, बल्कि उसका व्यक्तित्व इतना सुदृढ़ है कि वह जड़ता समाप्त कर नवीन मूल्यों की सृष्टि कर सकता है । भारती की आधुनिकता व नवनिर्माण केवल सामयिक नहीं है । क्योंकि 'आधुनिकता केवल समसामयिकता नहीं है वह ऐसी जागरूकता और मानसिकता है जो अतीत, वर्तमान और भविष्य की सापेक्षिकता के बोध से उत्पन्न होती है । वह खण्ड चेतना, नहीं,समग्र और सम्पूर्ण की चेतना है ।'[2] यही कारण है कि भारती का काव्य अतीत, वर्तमान और भविष्य सापेक्ष होकर नव निर्माण की प्रेरणा देता है । इनकी आधुनिकता फ़ैशन नहीं जो बार-बार बदले, यह तो एक दृष्टि है । वह दृष्टि खोजी है और इसीलिए वह अनास्था में भी आस्था, परम्परा में भी नव निर्माण खोज लेती है ।

'भारती' के कवि ने परम्परा तोड़ने मात्र के लिए परम्परा नहीं तोड़ी और नयापन लाने के लिए कविता को विकृत नहीं किया; आधुनिकता के नाम पर वे समसामयिकता तक सीमित नहीं रहे ।" कवि ने युगो से चली आ रही परम्पराओं से भी सार तत्व ग्रहण करने की बात उठायी है । उन्होंने तोड़ने की अपेक्षा मोड़ने में विश्वास किया है । 'भारती' के कवि की मान्यता है कि समाज में व्याप्त वर्ग वैषम्य, शोषण एवं घृणा की भावना से मानव त्रस्त है । उसकी चेतना व अस्तित्व लुप्त हो चुके हैं । अतः अब आवश्यकता है दूषित रूढ़ियों को तोड़ कर नव-निर्माण की । युगों से व्याप्त घृणा की भावना ने मनुष्य के विचारों को दूषित

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 54 2. धनंजय वर्मा, 'आस्वाद के धरातल', पृष्ठ -26

कर दिया है, उसे पतनोन्मुख किया है एवं नयी पीढ़ी की ताजगी, हरियाली व स्फूर्ति को नष्ट कर दिया है । इस घृणा की नदी का सड़ा पानी सारे सामाजिक वातावरण के प्रदूषण का कारण बन गया है । आवश्यकता है इसमें प्यार और हमदर्दी के बाँध बनाने की -

'बाँधो-नदी यह घृणा की है ।
काली चट्टानो के सीने से निकली है,
इसको छूते ही हरे वृक्ष सड़ जायेंगे
नदी यह घृणा की है ।'[1]

घृणा की इस दूषित परम्परागत प्रवृत्ति को प्यार के उजाले में बदल कर उसका नव निर्माण करना ही कवि का मुख्य ध्येय है, क्योंकि बाँध बनाने से, अर्थात सुधार करने से परम्परा भी मानव के लिए उपयोगी हो सकती है और घृणा की नदी में भी शक्ति का स्रोत प्राप्त हो सकता है -

'इसकी ही लहरों में
बिजली के शक्तिवान घोड़े हैं सोये हुए ।
जोतो उन्हें खेतों में, हलों में -
भेजो उन्हें नगरो में, कलों में-।'[2]

आज के घोर संघर्षमय वातावरण में 'भारती' की यह कविता सृजन की थकन भुलाकर मानव को नवीन साहसबोध, नव निर्माण की प्रेरणा देती है । अधूरी कला को पूर्ण करने का अमर सन्देश, अनुराग भरा आग्रह एवं नवीन जीवन मूल्यों की खोज के स्वर जितने मार्मिक हैं उतने ही सशक्त भी । 'भारती' की कविता गुलाम, बन्दिनी एवं निराश, कल्पना को नवीन स्वर प्रदान करने वाली है ।' आज की बेहद पिसती हुई संघर्षपूर्ण कटु और कीचड़ में बिलबिलाती हुई जिन्दगी के भी सुन्दरतम अर्थ खोजने में भारती का कवि समर्थ रहा है । कविता ने उसे अत्यधिक पीड़ा के क्षणों में भी विश्वास और दृढ़ता दी है ।'[3]

इसी विश्वास और दृढ़ता के साथ कवि ने इस उलझन भरे युग में कोमल स्वरों के साथ समय की चुनौती को मुँह तोड़ जबाब दिया है । उसकी कल्पना विलासिनी न होकर राष्ट्र निर्मात्री है तथा उसमें परम्पराओं का विनाश कर सृष्टि की स्वामिनी बनने की शक्ति है -

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृष्ठ - 44
2. धर्मवीर 'भारती', 'सातगीत वर्ष' पृष्ठ - 44
3. अज्ञेय, 'दूसरा सप्तक' (स.) पृष्ठ-165

'विनाश से डरो नहीं

विकास से डरो नहीं

सृष्टि के लिए बनो

प्रथम विनाश स्वामिनी

कल्पने विलासिनी ।'[1]

संघर्षमय वातावरण में ये रचनाएँ ऐसे अमूल्य क्षणों का सृजन करती हैं, जिनमें नवीन रक्त संचार का बल है । नव निर्माण की प्रेरणा देने वाले ये शब्द इतने प्रभावशाली हैं कि अनायास ही हृदय व मस्तिष्क में क्रान्ति और विद्रोह की गूँज भर देते हैं ।

निष्कर्षतः बदलते जीवन मूल्यों, युग की जड़ता में पिसते जन-जीवन एंवं रूढ़ियों से त्रस्त समाज को भारती की कविता नया स्वर देती है तथा टूटते विश्वासों, बिखरती मानवता को नया पथ देती है । 'भारती का काव्य सदियों पुरानी रूढ़ियों को ढ़हाने का पक्षधर है । क्यों कि परम्परागत बासे मूल्यों को नये क्षितिजों के अनुरूप पाना नामुमकिन है । बदलती हुई जीवन परिस्थितियों ने नये स्पन्दन संवेदन दिये हैं जिनके अनुरूप नयी अभिव्यंजना शैली आवश्यक है । आंतरिक लय और अनुभूति जरूरी है । यह नयी आधार-भूमि भारती के काव्य में परम्परा को नकारती है और उसमें हुंकार या विद्रोह पैदा करती है ।'[2]

'भारती' की रचनाएँ व्यक्ति को परम्पराओं के प्रति कुछ सोचने को विवश करती हैं एवं इनसे वह नव निर्माण की प्रेरणा ग्रहण कर, विकासशील जीवन जीने का संकल्प लेता है ।

व्यंग्यात्मकता :

भारतीय इतिहास में जीवन का सन्तुलित विकास आवश्यक भूमिका निभाता रहा है । मानव स्वभाव तथा उसके आसपास के जीवन और परिस्थितियों में निरन्तर संघर्ष चलता रहा है । चाहे वे परिस्थितियाँ राजनैतिक, सामाजिक, धर्मिक हों अथवा वैयक्तिक । मनुष्य के लिए सदा यही स्वाभाविक रहा है कि वह इन परिस्थितियों में व्याप्त असंतुलन व विसंगति से लोहा ले । अभिव्यक्ति के क्षेत्र में यह संघर्ष व्यंग्य के रूप में व्यक्त हुआ है ।

---

1. अज्ञेय, दूसरा सप्तक, (स.) पृष्ठ - 171
2. संतोष कुमार तिवारी, 'नयी कविता के हस्ताक्षर', पृष्ठ - 217

व्यंग्य द्वारा समाज की विकृतियों को सुधारने का कार्य भी युगों से हो रहा है । प्रचलित कुरीतियों, तत्कालीन सामाजिक बुराइयों एवं राजनैतिक भ्रष्टाचारों को उजागर करने में व्यंग्य की अहम् भूमिका रही है । कवि के अन्तर्मन में विश्रृंखलित मानव जीवन के प्रति जो आक्रोश और पीड़ा होती है, वह व्यंग्य के माध्यम से ही परिलक्षित होती है । मानव जीवन की विभीषिकाओं, असफलताओं आदि को पाठक के लिए बोधगम्य बनाने और उसे यथार्थ परिस्थितियों से अवगत कराने के लिए कवि प्रायः व्यंग्य का आश्रय लेता है । व्यंग्य के द्वारा काव्य में वर्णित तथ्य का प्रभाव सीधे पाठक के मर्म पर पड़ता है और उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप पाठक की भावात्मक एवं मानसिक स्थितियों में परिवर्तन होता है । यही काव्य की वास्तविक सफलता है जिसे 'भारती' ने परिवेशबोध के द्वारा अभिव्यक्ति दी है 'भारती' का कवि एक जागरूक नागरिक की भाँति अपने परिवेश से परिचित है । वह दासता की जंजीरों का अर्थ भलीभाँति समझता है और आसन्न संकट को संवेदना के धरातल पर महसूस करता है । यहाँ कवि की दृष्टि यथार्थवादी है ।

'वैसे तो भारती मूलतः प्रणय के कवि हैं, उनका कवि हृदय माँसल उपभोग का समर्थक रहा है, किन्तु उनकी रचनाओं में जटिल स्थितियों को समझने या जी सकने की जो अनवरत कोशिश है, वह कहीं भी रचना प्रक्रिया के लिए अनिवार्य प्रकृतिगत माँगो की उपेक्षा नहीं करती ।'[1] इसीलिए यथार्थ की भूमि पर लिखी इनकी कविताएँ चिन्तन प्रधान हैं । और युग जीवन के सन्दर्भो को व्यंग्य के माध्यम से अभिव्यक्ति देती हैं ।

बौद्धिक और वैज्ञानिक परिवेश में विकसित हुई नयी कविता के कवि 'भारती' का काव्य मात्र भावुकता से पूर्ण नहीं है, इसलिए कवि ईश्वर धर्म देवता और पूजा के प्रति पूर्णतः समर्पित नहीं होता, बल्कि अंधी आस्तिकता व बुद्धि के दिवालिये पन पर कई प्रश्न चिह्न उपस्थित करता है । निराकार परमेश्वर के अस्तित्व और आस्तिकता से उत्पन्न संकट की विडम्बना पूर्ण स्थिति का 'भारती' ने बड़ा सजीव चित्रण किया है -

'तुम चलते हो बिना चरण
सुनते हो बिना श्रवण
देखते हो बिना नयन
ढूढते हैं तुमको
सब संत और साधक जन ।
पाकर ले आते तुम्हें
मेले में ठेले से
हाट में नुमाइशों में

---

1. शेर जंग गर्ग, 'स्वातंत्रोत्तर कविता में व्यंग्य' पृष्ठ - 329

'तम्बू गाड़ करते हैं

तुम्हारा प्रदर्शन

भोंपू पर कहते हैं

एक है अजूबा ।'[1]

उपर्युक्त पंक्तियों ने कवि ने अन्धी आस्तिकता का रोजगार करने और गाँठ के अधूरों और आँखो के अन्धों की करूण विडम्बना को अभिव्यक्ति दी है ।

स्वार्थी और तटस्थ मनोवृत्ति के लोग संघर्ष से उपलब्ध तमाम सुख सुविधाओं का उपभोग तो करते हैं किन्तु न स्वयं संघर्ष करते हैं और न ही संघर्ष को समर्थन देते हैं । आज की क्लीव नागरिकता पर किया गया व्यंग्य कितना सार्थक है -

'अग्नि नहीं थी जब

तब हमने नहीं कहा

कि जाओ अग्नि लाओ तुम

और अग्नि जब आयी

हमने नहीं कहा कि अग्नि नहीं लेंगे हम ।'[2]

स्वतंत्रता के पश्चात देश की राजनीति दूषित हो गयी । नेता का कार्य जन कल्याण नहीं रहा । वह अपनी कुर्सी बचाने के लिए दूसरों से लिखवाये भाषणों को गला फाड़-फाड़ कर पढ़ने में ही अपनी सफलता समझने लगा । सत्ता के रोग से पीड़ित नेता समाज-सुधार व देश की प्रगति कैसे कर सकता है ? इसीलिए कवि नेताओं की बीमारी से चिंतित है । ऐसी बीमारी जो सारे राष्ट्र में फैल रही है । इसका उन्मूलन करने के लिये वह स्वास्थ्य मंत्रालय से अपील कर रहा है -

'वे जो उन्माद ग्रस्त रोगी से

मंचों पर जाकर चिल्लाते हैं

बकते हैं

भीड़ में भटकते हैं

---

1. धर्मवीर भारती, 'धर्मयुग' 4 दिसम्बर 1966, पृष्ठ - 10
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 5

वात, पित्त, कफ के बाद

चौथे दोष अह्म से पीड़ित हैं

बस्ती-बस्ती में

नये अहम के अस्पताल खुलवाओ

वे सब बीमार हैं,

डरो मत तरस खाओं ।'[1]

आधुनिक वैज्ञानिक युग में एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को विभिन्न प्रलोभनों, योजनाओं व संधियों के द्वारा गुलाम बनाने का षड़यंत्र रचता है । सदियों से भारत को इन विदेशियों से संघर्ष करना पड़ा । कभी ये व्यापारी बन कर आये तो कभी संस्कृति का आदान प्रदान करने वाले । उद्‌देश्य इनका एक ही रहा -भारत की परतंत्रता । नये ढ़ंग से गुलामी को पेश करने वाले ये विदेशी अनेकों बार यहाँ आ चुके थे -

'ढंग है नया

लेकिन बात यह पुरानी है

घोड़ों पर रख कर या थैली में भर कर

या रोटी से ढ़ँक कर या फिल्मों में रँग कर

वे जंजीरें, केवल जंजीरें ही लाये हैं,

और भी पहले वे कई बार आये हैं ।'[2]

'भारती' ने प्रसिद्ध पौराणिक चरित्रों के माध्यम से आधुनिक मानव की विकृतियों पर बड़े मार्मिक व्यंग्य किये हैं । समसामयिक परिस्थितियों विघटित जीवन मूल्यों, विस्थापित व्यक्तित्व और मनुष्य के प्रच्छन्न रूप पर 'वाणभट्‌ट' व 'वृंहन्नला' के माध्यम से व्यंग्य किया है । 'वाणभट्‌ट' में कवि ने आधुनिक मनुष्य की धन लौलुपता एवं मुद्रा मंजूषा की सत्यता, महाराग व अतीन्द्रिय सुख की ओर से विमुखता पर बड़ा तीखा व्यंग्य किया है -

'सत्य है राजा हर्षवर्धन के हाथों से मिला हुआ

पान का सुगन्धित एक लघु बीड़ा

चाहे वह जूठा हो

पर उस पर लगा हुआ वर्कदार सोना था ।'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृष्ठ - 46
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ- 48
3. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 50

आधुनिक मानव संघर्ष से विमुख तथा भयभीत, चाटुकार एवं छद्मवेशी हो गया है । उसका निराश्रित व दोहरा व्यक्तित्व दूसरों को धोखा देता हुआ अपनी वास्तविकता को छिपाये रहता है -

'मैं जो हूँ नृपति विराट का विश्वस्त दास
नृत्य, गीत, कविताओं, कलाओं का ज्ञाता
किन्तु हर दम भयाक्रान्त
मेरा अज्ञातवास खुल न जाये ।'[1]

अज्ञातवास के समय भयाक्रान्त अर्जुन की ओजस्विता कायरता में बदल गयी थी । विख्यात गाण्डीव शाखा पर टंगा रहा और वे विश्वस्त दास बने रहे । ठीक यही स्थिति आज कवियों एवं बुद्धिजीवियों की है, जो मूर्खो से घिरे हैं और अपनी प्रसिद्धि के आकांक्षी है । इतना ही नहीं शासनतंत्र की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है । उसकी प्रसिद्धि व गुणगान भी इसी प्रकार होता है जैसे -

'व्यास यह लिखेगें कि
अन्यायी दुर्योधन ने जब हमला बोला था,
विराट नगरी पर
मैंने भी प्रदर्शित किया था शौर्य!
कैसा लगेगा तुम्हें
तब तुम यह जानोगे
कि यह तो लिखाया था मैंने ही
पांवो पड़-पड़ बूढ़े व्यास के ।'[2]

सत्य की महत्ता समाज में कितनी है ? नयी पीढ़ी के लिए उसकी क्या उपयोगिता है ? सत्य की अपेक्षा झूठे युद्धों में विश्वास करने वाली एवें भूठे ध्येय बनाकर हार करभी जीतने का अभिमान करने वाली नयी पीढ़ी पर व्यंग्य -

'दो हमको फिर झूठे युद्ध
'दो हमको फिर झूठे ध्येय

---

1. धर्मवीर भारती 'सातगीतवर्ष' पृष्ठ 51।
2. धर्मवीर भारती 'सातगीतवर्ष' पृष्ठ 52

'हारेंगे फिर यह है तय
फिर उसको मानेंगे हम प्रभु की हार
अपने को मानेंगे फिर अपराजेय ।'[1]

शासन की हुकूमत । प्रहरियों की तटस्थता । सब कुछ रक्षित करने के बाद भी युद्ध प्रेमी देशों के पास बचा ही क्या है ? प्रहरी आदेशों का आँखे बन्द कर और विवेक शून्य होकर पालन करते हैं, देश की संस्कृति राख हो चुकी है, फिर भी देश जीत का दावा करता है । बाहर से जीता राष्ट्र अन्दर से कितना खोखला होता है । वैज्ञानिक संहारक शक्तियाँ क्या मन का बोझ हल्का कर सकती हैं ? हिंसा के द्वारा क्या अपने व परायों को जीता जा सकता है ?

'भाले हमारे ये
ढालें हमारी ये
निरर्थक पड़ी रहीं
अंगो पर बोझ बनी
रक्षक थे हम केवल
लेकिन रक्षणीय कुछ भी नहीं था ।'[2]

हिंसा हमेशा अंधी होती है । महाभारत का युद्ध भी अंधो का था । आज भी जब दो राष्ट्र अपनी मर्यादा छोड़कर युद्धायोजन करते हैं तब वे भौतिक संस्कृति की होड़ व अहं में अंधे होते हैं और अंधी रूढ़ियों का पोषण करते हैं । कितना कुछ घटित होता है पर वे सत्ता के मद में अंधे होने के कारण देख नहीं सकते-

'देखेंगे कैसे वे
अंधे हैं
कुछ भी क्या देख सके
अब तक
वे ?'[3]

आधुनिक शासनतंत्र की अराजकता अव्यवस्था सर्वविदित है । कवि भी इस अव्यवस्था से क्षुब्ध है । वह इस अराजकता पर व्यंग्य करता है -

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 20
2. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ - 14
3. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ - 17

'हम जैसे पहले थे, वैसे अब भी हैं

शासक बदले

स्थितियाँ बिल्कुल वैसी हैं

इससे तो पहले के ही शासक अच्छे थे

अन्धे थे, लेकिन वे शासन तो करते थे ।'[1]

अन्तिम पंक्तियों में यह स्पष्ट किया गया है कि हर आने वाली शासन व्यवस्था पिछली शासन व्यवस्था से हीन होती है । क्योंकि नया शासक शासन नहीं करता, पुरानी व्यवस्था पर दोषारोपण करता है व अपनी कुर्सी के लिए चिंतित रहता है । उपर्युक्त पंक्तियों में 'अंधायुग' के प्रहरियों की पीड़ा वैयक्तिक नहीं है, अपितु आधुनिक स्वतंत्र देश के प्रत्येक व्यक्ति की पीड़ा है ।

आधुनिक शासन व्यवस्था की एक और समस्या ' भाई भतीजा वाद ' है जिसे कवि ने 'अंधायुग' की निम्न पंक्तियों में व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति दी है -

'पर वह संसार

स्वतः मेरे अंधेपन से उपजा था

मैंने अपने वैयक्तिक संवेदन से जो जाना था ......

.... कौरव जो मेरी माँसलता से उपजे थे

वे ही थे अन्तिम सत्य ।'[2]

इस प्रकार 'अंधायुग' में भी संक्रान्ति युगीन स्थितियों पर व्यंग्य किये गये हैं। 'इसके अन्तराल में व्यंग्य की अन्तर्वर्तनी धारा प्रवाहित है । जिसके माध्यम से इसमें आगत मूल्यों का आभास मिलता है ।'[3] वैसे तो सम्पूर्ण काव्य ही आज की विसंगतियों और विघटन को अभिव्यक्ति देता है। पर इसमें कई स्थलों पर त्रासदी की नाटकीय अभिव्यक्ति व्यंग्य के द्वारा ही हुई है । नाटक में वर्णित दो प्रहरी त्रासद व्यंग्य की अभिव्यक्ति में विशेष सफल हुए हैं ।

'भारती' की रचनाओं में चिन्तनशीलता के कारण कहीं-कहीं प्रेम संबंधों में भी व्यंग्य की अभिव्यक्ति हुई है । ये व्यंग्य प्रेम में बिछोह की स्थिति आने से अधिक मार्मिक बन गये हैं । कवि की प्रिया का हृदय इतना कोमल है कि वह पत्र में लिखे हास को सह नहीं पाती । किन्तु कोमलता के साथ ही उसके हृदय की

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 17 2. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 17-18
3. रघुवंश, 'साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य', पृष्ठ - 187

कठोरता व्यंग्य द्वारा -

> 'अरे पर जाने क्या-क्या आज,
> भूल लिख गया तुम्हारे पास
> मृदुल तुम किसलय सी अनमोल
> न सह पाओगी मेरा हास ।'[1]

युगीन परिस्थितियों एवं वास्तविकताओं के समक्ष प्रेम का कोई मूल्य नहीं । इसे राधा के माध्यम से कवि ने 'कनुप्रिया' में अभिव्यक्ति दी है । यहाँ राधा ने कृष्ण के युद्धायोजन पर व्यंग्य किये हैं -

> 'क्या ये सब सार्थक हैं ?
> चारों दिशाओं से उत्तर को
> उड़-उड़ कर जाते हुए
> गिद्धों को क्या तुम बुलाते हो ?
> (जैसे बुलाते थे, भंटकी हुई गायों को) ?'[2]

विगत दो महायुद्धों से त्रस्त व्यक्ति अब युद्ध पर विश्वास नहीं करता । 'कनुप्रिया' के माध्यम से राधा ने कृष्ण के युद्ध व इतिहास निर्माण की अमानुषिक घटनाओं पर तीखा व्यंग्य किया है -

> 'कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व
> मैने भी गली-गली सुने हैं ये शब्द
> अर्जुन ने इनमें चाहे कुछ भी पाया हो
> मैं इन्हें सुन कर कुछ भी नहीं पाती प्रिय ।'[3]

दूसरी पंक्ति का 'गली-गली' व्यंग्य की सटीक अभिव्यक्ति करता है । राधा का कनु से यह प्रश्न कि 'सार्थकता क्या है ?' अपने में एक व्यंग्य छिपाये हुए है । यह ऐसा सार्थक व्यंग्य है कि जिसकी अर्थध्वनि बहुत दूर तक जाती है ।

भारती द्वारा कनुप्रिया में अभिव्यक्त व्यंग्य तीखे, चुटीले एवं सशक्त है, जिसका कारण राधा का उनसे अनभिज्ञता व्यक्त करना है । राधा की भोली, भावुक एवं सहज स्थिति ने व्यंग्यों को मार्मिक बना दिया है ।'

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 37
2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 68
3. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 70

यहाँ आधुनिक मनुष्य की बहिर्मुखी प्रवृत्ति पर व्यंग्य है। जिसके कारण वह आत्म प्रवंचना का शिकार हो रहा है ।'[1]

वर्तमान परिस्थितियों व सत्ता के दुरूपयोग पर 'भारती' ने बड़े मार्मिक और तीखे व्यंग्य किये हैं । पौराणिक प्रतीकों को उठा कर कवि ने व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति को इतना सशक्त बना दिया है कि पाठक बहुत कुछ सोचने और सुधार करने के लिए प्रेरित होता है । भारती की कविता में व्यंग्य एक त्रासद उपकरण के रूप में प्रयुक्त हुआ है । युग की कुण्ठा, अनास्था, घुटन, कुत्सा और आचरणहीनता को भारती ने मानव एवं मानव भविष्य की रक्षा का संकेत दिया है । अतः उनके व्यंग्य में मार्मिक करूणा है जो प्राचीन प्रसिद्ध कथानकों के चरित्रों के माध्यम से वर्तमान घटित मूल्यों को विडम्बनाओं, असंगतियों, कुरूपताओं पर ऐसा व्यंग्य करती है जिसमें हास्य का लेश मात्र भी नहीं है । यह भी सच है कि भारती की परवर्ती रचनाओं में व्यंग्य की सुन्दर सृष्टि हुई है, वह भी यथार्थ के धरातल पर उतर कर। इनकी व्यंग्य प्रधान रचनाएँ अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम हैं । इन्हें पढ़ कर ऐसा लगता है कि कवि युगीन विषमताओं में पूरी तरह जिया है । प्रजातांत्रिक चेतना से व्याप्त व्यंग्य प्रधान रचनाएँ कवि की संवेदनशीलता व यथार्थवादी गहराई का परिचय देती हैं ।

क्षण की महत्ता :

जीवन के प्रत्येक क्षण का महत्व है और प्रत्येक छोटे से छोटे क्षण को उसकी समग्रता में अनुभूत करते चलना समसामयिकता का पहला सन्दर्भ है । अनुभूति का आधुनिक स्तर जीवन की छोटी-छोटी अनुभूतियों और उनमें निहित सत्य के प्रति जागरूक रहने की बात कहता है । अब वह समय नहीं रहा, जबकि क्षणानुभूति के प्रति ममत्व रखने वाला व्यक्ति किसी महान गाथा में तोष पाये, क्योंकि जीवन की गति शीलता में रूकने की प्रवृत्ति नहीं है ।

नयी कविता में क्षण बोध का विकास भी अस्तित्ववादी दर्शन के परिपार्श्व में हुआ है । इस दर्शन के आधार पर प्रत्येक क्षण की स्वतंत्र सत्ता है । अतः प्रत्येक क्षण का महत्व है । 'मनुष्य क्षणों की पृथकता में से उन सभी को अपनाता है जो ग्राह्य भी हैं और अग्राह्य भी । परिणाम यह होता है कि वह प्रत्येक क्षण को भोगने के लिए लालायित रहता है । वह मानता है कि यह क्षण जिस रूप में सामने है दुबारा उसी रूप में सामने नहीं आ सकता । व्यक्ति की यही भावना उसे क्षणवादी करार दे देती है । बौद्ध दर्शन का क्षणिक वाद भी यही कहता है । उसके अनुसार प्रत्येक वस्तु अनित्य और क्षण भंगुर है । इसी आधार पर कोई भी दो क्षण एक जैसे नहीं होते हैं । यह क्षणवादी भावना वर्तमान को समग्रता से जीने की भावना के निकट है ।'[2]

---

1. सिद्धेश्वर प्रसाद, 'छायावादोत्तर काव्य', पृ0-238   2. हरिचरणशर्मा, 'नयी कविता नये धरातल' पृ0-134

क्षणवादी विचारधारा के अनुसार जिन्दगी का एक क्षण जो व्यक्ति को सुख व तृप्ति प्रदान करता है - शेष सारे जीवन से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है । वह अपने में इतना पूर्ण समग्र व संतुष्टि देने वाला है कि उसे भोग लेने के बाद और भी अधिक आशा रखना मूर्खता है । यही क्षणवादी विचारधारा कवि को भोगवाद की ओर प्रेरित करती है ।

'भारती' की रचनाओं में क्षणबोध को गहराई के साथ देखा जा सकता है । इन्होंने सृजन के क्षण को रिक्तता, विघटन और विच्छिन्नता के क्षण से बिलकुल पृथक माना है । एक स्थान पर भारती ने लिखा है -'वे ही क्षण अर्थवान हैं, आत्मोपलब्धि के क्षण हैं । आत्मोपलब्धि के, क्योंकि उसी में हम अपने को पाते हैं - अर्थात अर्थहीन शून्यता या अयथार्थ मूलक अस्तित्व से युक्त होकर अपने को सार्थक पाते हैं ।'[1]

भारती ने घनीभूत क्षण का उद्‌गम अचानक नहीं माना है।उनकी दृष्टि में -'कितने ही क्षण हैं, कितनी ही स्थितियाँ हैं जो प्रत्यक्षतः असम्बद्ध लगती हैं, पर कुल मिला कर हमारे चेतन, अर्ध, चेतन मन में लहर पर लहर इस एक बिन्दु को उभारती रहती है, और सम्पूर्ण जीवन प्रक्रिया एक क्षण से सम्बद्ध हो जाती है ।'[2] स्पष्ट है कि रचना प्रक्रिया में जीवन प्रक्रिया ऐसे ही क्षणों में सम्बद्ध हो जाती है ।

'कनुप्रिया' की भूमिका में भी कवि ने ऐसे ही महत्वपूर्ण क्षणों की ओर संकेत किया है ......'लेकिन ऐसे भी क्षण होते हैं जब हमें लगता है कि यह सब बाहर का उद्वेग है । महत्व उसका नहीं है, महत्व उसका है जो हमारे अन्दर साक्षात्कृत होता है - चरमतन्मयता का क्षण जो एक स्तर पर सारे बाह्य इतिहास की प्रक्रिया से ज्यादा मूल्यवाद सिद्ध हुआ । जो क्षण हमें सीपी की तरह खोल गया है । इस तरह कि समस्त बाह्य अतीत, वर्तमान और भविष्य सिमट कर उस क्षण में पुंजीभूत हो गया है और हम हम नहीं रहे ।'[3] ऐसी ही तन्मयता की अभिव्यक्ति 'कनुप्रिया' राधा के प्रसंग में हुई है । राधा की तन्मयता के क्षणों की महत्ता भी प्रायः सर्व स्वीकृत है । कनुप्रिया राधा की भावाकुल तन्मयता सारे काव्य पर आच्छादित है । साथ ही कवि ने राधा के माध्यम से एक ऐसे आधुनिक व्यक्ति के प्रति अपना प्रश्न तथा आग्रह पेश किया है, जिसका रोमांटिक बोध की अपेक्षा अस्तित्व बोध से अधिक सम्बन्ध है । इसलिए समस्त रचना में क्षण की महत्ता प्रतिपादित की गयी है । 'आधुनिक व्यक्ति के समक्ष तन्मयता के क्षणों में लीन होने पर भी दो विरोधी परिस्थितियों, दो असंगतियों तथा विभिन्न सामाजिक अनुभवों में समन्वय न कर सकने की समस्या खड़ी हो जाती है । इस समस्या को वह भावाकुल तन्मयता की कसौटी पर कसना चाहता है । जिसमें कहीं-कहीं संशय एवं जिज्ञासा की क्षणिक प्रतीति होने पर विलोप हो जाता है ।'[4]

---

1. धर्मवीर भारती, 'मानव मूल्य और साहित्य', पृ0-35
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृ0- 9
3. धर्मवीरभारती, 'कनुप्रिया' पृ0 - 6
4. हुकुमचन्द राजपाल,'कृति और मूल्यांकन' पृ0-45

वस्तुतः कनुप्रिया का कथ्य मानव जीवन की तन्मयता के क्षणों की गरिमा स्थापित करने के दायित्व का वहन करने वाले कवि का उद्देश्य वाहक है । क्योंकि जिन दिनों कवि कनुप्रिया का सृजन कर रहा था, उन्हीं दिनों कवि का चिन्तक व्यक्तित्व एक विशेष प्रकार के दायित्व सोच में डूबा था - 'सृजन के क्षण को हम एक संगति, एक अर्थ, एक क्रम प्रदान करते हैं । झूठी शाश्वतता और निश्चयात्मकता के अन्धविश्वासपूर्ण आश्वासनों का तिरस्कार कर हम मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा और मानव मूल्यों की खोज और उन्हें आत्मसात करने की प्रक्रिया द्वारा क्षण को अर्थवान बनाते हैं ।'[1]

कनुप्रिया की राधा का यह प्रश्न कवि के क्षण बोध को अभिव्यक्ति देता है-

'अर्जुन की तरह कभी
मुझे भी समझा दो
सार्थकता है क्या बन्धु?
मान लो मेरी तन्मयता के गहरे क्षण
रंगे हुए अर्थहीन, आकर्षक शब्द थे-
तो सार्थक फिर क्या है कनु ?'[2]

नयी कविता में व्याप्त क्षणवादी भावनाओं के दो परिणाम सामने आये हैं, एक तो-वर्तमान के प्रति ममत्व और दूसरी-भोगवादी प्रवृत्तियाँ । वर्तमान पर केन्द्रित रहने और छोटे से छोटे क्षण को भोग लेने का ही परिणाम है कि कवि क्षण के जीवन में तन्मय होकर प्रणयानंद की अनुभूति करना चाहता है । भोगवाद का यह रूप निम्न पंक्तियों में स्पष्ट हुआ है । यहाँ भारती की कनुप्रिया राधा समय के अचूक धनुर्धर से तब तक प्रतीक्षित रहने के लिए कहती है जब तक कि वह अपनी प्रगाढ़ केलिकथा को अस्थायी विराम चिह्न न दे दे ।

'और कह दो समय के अचूक धर्नुधर से
कि अपने शायक उतार कर
तरकस में रख ले
और तोड़ दे अपना धनुष
और अपने पंख समेट कर द्वार पर चुपचाप

---

1. धर्मवीर भारती, 'मानव मूल्य और साहित्य', पृष्ठ - 35

2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 69

'प्रतीक्षा करे

जब तक मैं

अपनी प्रगाढ़ केलिकथा का अस्थायी विराम चिह्न

अपने अधरों से.

तुम्हारे वक्ष पर लिख कर, थक कर

शैथिल्य हो बाहों में

डूब न जाऊँ ।'[1]

केवल भोगवाद में ही नहीं, बल्कि वर्तमान के हर क्षण के प्रति चाहे वह पीड़ा, दर्द या चिन्तन का ही क्यों न हो, कवि का गहरा लगाव है । कवि जिये गये, भोगे गये ऐसे हर लमहे जो सूने बीते, एकान्त में बीते, जिसमें कवि का खुली सीपी सा हृदय किसी की प्रतीक्षा में व्याकुल रहा, उसका भी जीवन मे विशेष अर्थ मानता है -

'ये लमहे ये सारे सूनेपन के लमहे

जब मैंने अपनी परछाहीं से बातें कीं

दुख से वे सारी टूटी वीणाएँ फेंकीं

जिनमें अब कोई भी स्वर न रहे

ये लमहे

इनका क्या कोई भी

अर्थ नहीं ?'[2]

निष्कर्षतः भारती की कविता के सभी भावों में क्षण बोध की अभिव्यक्ति है । 'कनुप्रिया' में यह क्षण बोध अपने सहज रूप में प्रस्तुत हुआ है । कृति में कनुप्रिया राधा कैशोर्य सुलभ मनः स्थिति के कारण विवेक, तन्मयता व इतिहास की उपलब्धि से अधिक सहज जीवन में सार्थकता पाती है । वह चरम तन्मयता का क्षण खोजती है । ' इस तरह इसमें क्षण बोध को एक मिश्रित नयी भाव-भूमि में संस्थित किया गया है जो सिद्ध साहित्य के अनुसंधाता धर्मवीर भारती के करिश्मों का सबूत है । इस भूमि में एक ओर सिद्धों की सहज साधना का महासुख है दूसरी ओर पश्चिम के अस्तित्ववादी दार्शनिकों का क्षण बोध है ।'[3]

---

1. धर्मवीर भारती 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 54
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 25
3. डा0 यश गुलाटी, 'हिन्दी के श्रेष्ठ काव्यों का मूल्यांकन', पृष्ठ - 716

जनवादी दृष्टि :

भारती के काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति उनकी जनवादी दृष्टि है । 'ठंडालोहा' की भूमिका में उन्होनें लिखा है - 'किशोरावस्था के प्रणय, रूपासक्ति और आकुल निराशा से एक पावन आत्म समर्पणमयी वैष्णव भावना और उसके माध्यम से अपने मन के अहम का शमन कर अपने से बाहर की व्यापक सच्चाई को हृदयंगम करते हुए संकीर्णताओं और कट्टरताओं के ऊपर एक जनवादी भावभूमि की खोज मेरी इस छन्द यात्रा के यही प्रमुख मोड़ रहे हैं ।'[1] जनवादी भावभूमि की खोज अपने से बाहर की व्यापक सच्चाई को हृदयंगम करते हुए ही की जा सकती है । इसी बात को स्पष्ट करते हुए कवि ने लिखा है कि - 'मै अपना पथ बना रहा हूँ, जिन्दगी से अलग रह कर नहीं, जिन्दगी के संघर्षो को झेलता हुआ, उसके दुख दर्द में एक गम्भीर अर्थ ढूँढ़ता हुआ और इस अर्थ के सहारे अपने को जनव्यापी सच्चाई के प्रति अर्पित करने का प्रयास करता हुआ । कवि का जीवन, कवि की वाणी अर्पित जीवन और अर्पित वाणी होते हैं ।'[2] इसीलिए भारती की वाणी विराट जीवन के सुख दुख को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम बन सकी है । जनवादी चेतना से परिपूर्ण रचनाएँ 'ठंडालोहा' में तो कम हैं, किन्तु 'सात गीत वर्ष' में इनका आधिक्य है। 'सात गीत वर्ष' की अनेक कविताएँ जनवादी भावभूमि पर आधारित हैं ।

अपनी इस जनवादी भावभूमि को कवि केवल राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं मानता, उसकी यह संवेदना तो विश्वव्यापी है । कवि की मान्यता है -'हम में वस्तुतः व्यापक संवदेना होनी चाहिए कि विश्व व्यापी मानवीय विघटन की चरम वेदना को हम आत्मसात कर सकें । चाहे वह एशिया में हो, या यूरोप में या अफ्रीका में।'[2]

'भारती' लेखक का दायित्व जनहित मानते हैं । इसलिए इनकी कविता कई पगडंडियों से होती हुई जनवादी भावभूमि पर आयी है । कवि ने स्वीकारा है कि सिमटी सिकुड़ी गलियों को छोड़ कर उसने नयी पगडंडी पकड़ी है । 'यहाँ उसका वैचारिक स्तर और चिन्तन सही रूप में नहीं कविता का प्रतिनिधित्व करने लगता है ।'[4]

जनवादी भावनाओं से संपृक्त इन कविताओं में यथार्थ का पूर्ण उन्मेष दिखाई पड़ता है । "यहाँ उसका विद्रोही मन मानवीय सौन्दर्य को व्यक्त करते हुए नयी दृष्टि की ओर उन्मुख है ।'[5] यहाँ कवि का सहज किन्तु गहरा और सबके प्रति अर्पित व्यक्तित्व साफ दिखलाई देता है । कवि अपनी वाणी जनहित में अर्पित करने हेतु तत्पर है -

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ- 3
2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 3
3. धर्मवीर भारती,'मानव मूल्य और साहित्य'पृ0-68
4. संतोष कुमार तिवारी, 'नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर, पृष्ठ - 219
5. भागीरथ मिश्र एंव डा0 बलभद्र तिवारी, 'आधुनिक हिन्दी काव्य', पृष्ठ - 552

ऐसे किसी अनागत पथ का

पावन माध्यम भर है

मेरी आकुल प्रतिभा

अर्पित रसना

गैरिक वसना

मेरी वाणी ।'[1]

अर्पित वाणी के द्वारा कवि वैयक्तिक सुख-दुख की सीमाएँ तोड़ कर तीखे व एकाकी स्वरों के साथ जन-जन में मिल जाने को उत्सुक है । यहाँ कवि वैयक्तिकता को सामूहिकता की ओर मोड़ कर जनवादी भावभूमि का स्पर्श करता है -

'वैयक्तिक सीमाएँ तोड़

इतिहासों के संग गति मोड़

जिस दिन हम युग पथ पर जन-जन के साथ

बढ़ते होगें फिर दृढ़ पग, उन्नत माथ ।'[2]

'भारती का साहित्य मानव मूल्यों का अधिनायकत्व लेकर चला है । यानी मनुष्य उसकी नजर में सर्वोपरि है । उसमें रागतत्व का अभिजात्य है । अर्थात् वे मानवीय और आत्मीय सम्बन्ध सूत्रों के माध्यम से समाज की आन्तरिकता को जोड़ना चाहते हैं ।'[3] इसीलिए भारती का कवि बिना मार्क्सीय पद्धति का सहारा लिये भारतीय सन्दर्भों के अनुरूप हमें स्वस्थ जीवन दृष्टि से प्रभावित करता है और ऐसे विषयों को कविता में उठाता है जो किसी एक वर्ग के न होकर सर्वव्यापक व सर्वहित के हैं ।

समाज की धरती पर विषमता की लहलहाती खेती कवि के दुखों का कारण है । विषमता ने समाज की नींव को खोखला बना दिया है । ऐसी स्थिति में कवि जन-जन का आह्वान करता है कि, आगे बढ़ो और इस फसल को नष्ट करके नये बीज डाल कर प्यार, पसीना और आँसू से सींच कर नयी फसल उगाओ -

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 28
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 18
3. डा॰ संतोष कुमार तिवारी, "नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर" पृष्ठ - 240

'धरती को फिर से सँवारो

क्यारी में बीज नये डालो

पसीने के, आँसू के

प्यार के हमदर्दी के ।'[1]

लेकिन फसल उगाने के बाद भी बँटवारे के पक्ष में कवि नहीं है -

'मेड़े मत बाँधो

भूमि सबकी है,

दर्द सबका है ।'[2]

जब भूमि सबकी है, और दर्द भी सभी का एक जैसा है एवं स्व पर का भेद समाप्त करना ही सच्चा मानवतावादी दृष्टिकोण है तो फिर विभेदी करण की भावना क्यों ? जिसने बोया है उसे काटने की सुविधा क्यों नहीं ? वास्तव में यह एक कटु सत्य है। विडम्बना है कि जो श्रम करता है उसे वास्तव में कुछ नहीं मिलता। श्रम का पसीना बहा कर भी आज निर्बल भूखा है । इसलिए कवि चाहता है -

'बिना किसी बाधा के

नित नयी दिशाओं में

जाने की सुविधा दो

श्रम के पसीने से

सिंची हुई फसलों को

खेतों से आँतो तक

जाने की सुविधा दो ।'[3]

निष्कर्षत: 'ठंडालोहा' की कुछ कविताएँ व 'सात गीत वर्ष' तक आते-आते भारती की कविताएँ वैयक्तिकता के दायरे को लांघ कर समष्टि की ओर उन्मुख चिंतनशील व जनवादी हो गयी हैं । जनकल्याण की भावनाओं से परिपूर्ण ये कविताएँ कवि के यथार्थ संगत आत्मबोध की परिचायक हैं ।

****

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृ0- 46
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृ0- 46
3. धर्मवीर भारती, "सातगीतवर्ष" पृष्ठ - 45

अध्याय चार - अभिव्यक्ति पक्ष

बिम्ब विधान

प्रतीक योजना

गीतात्मकता

भाषा एवं शब्द योजना

छन्द विधान

अध्याय : 4

अभिव्यक्ति पक्ष :

अभिव्यक्ति मानव मन की सहज वृत्ति है । आदमी वस्तु जगत में जो कुछ देखता है, उसके मानस में तदनुकूल भाव-छवियाँ बनती हैं । वह उन्हें प्रकट करना चाहता है , क्योंकि बिना व्यक्त किये वह रह नहीं सकता । भावों की प्रेषणीयता एवं स्थायित्व के लिये अभिव्यक्ति पक्ष का सशक्त होना आवश्यक है । भावनाओं की अभिव्यक्ति जितनी सशक्त, परिष्कृत और परिमार्जित होगी, कविता उतनी ही प्रभावशाली । विभिन्न कलाओं के मूल में अभिव्यक्ति के लिए कवि को कई माध्यमों का आश्रय लेना पड़ता है, यथा भाषा, बिम्ब, प्रतीक, अलंकार, छंद, गीत आदि । इन्हीं माध्यमों के द्वारा कवि अपनी बात कलात्मक ढ़ंग से दूसरों तक पहुँचा पाता है।

नयी कविता में अभिव्यक्ति की प्रमुखता के कारण ही उसकी शिल्पविधि में नित नवीन प्रयोग होते रहे हैं । वर्ण्य विषय में परिवर्तन के साथ ही अभिव्यक्ति पक्ष में भी परम्परा से भिन्नता दिखाई देती है । नयी-कविता में अभिव्यक्ति के ये माध्यम परम्परागत रूपों से कुछ अलग हट कर अभिनव रूपों में प्रयुक्त हुए हैं, क्योंकि नयी कविता के नूतन भाव बोध की अभिव्यक्ति इन्हीं रूपों में संभव थी ।

'नयी कविता के वैचारिक पक्ष को भावुकता और सजल स्निग्धता से संपर्कित करके प्रभावी शिल्प में ढालने वाले कवियों में धर्मवीर भारती का नाम अनुपेक्षणीय है ।'[1] कोमल भावनाओं के साथ कलागत सौन्दर्य भी उनकी काव्य विशेषता है । नवीन उपमानों, बिम्बों, प्रतीकों एवं छन्दों के प्रयोग के कारण कविता एक अपूर्व सौन्दर्य व मौलिकता लिये हुए है । इस अभिव्यक्तिगत मौलिकता के अन्तर्गत निम्न अभिव्यक्ति उपकरण इनकी रचनाओं में हैं -

क. बिम्ब विधान :

किसी वस्तु का मानस चित्र अथवा कल्पना चित्र ही बिम्ब है । प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक थार्नडाइक ने बिम्बों की परिभाषा देते हुए कहा है कि - 'वस्तु, गुण और परिस्थितियों का जो सचमुच किसी विशेष समय में उपस्थित नहीं है, भावात्मक बोध ही बिम्ब है ।'[2]

---

1. हरिचरण शर्मा, 'नये प्रतिनिधि कवि', पृ0- 236
2. रामवचन राय, 'नई कविता उद्भव और विकास', पृष्ठ - 222

वस्तुतः बिम्ब, मानस में कल्पना द्वारा निर्मित चित्र ही है । 'मनुष्य के जीवन में बिम्ब-विधान अथवा कल्पना विधान का बड़ा महत्व है । प्रस्तुत परिवेश के संवेदनों और प्रत्यक्ष के अतिरिक्त उसके मानस में अतीत की, तथा कभी अस्तित्व न रखने, न घटने वाली वस्तुओं और घटनाओं की असंख्य प्रतिमाएँ भी रहती हैं । बिम्ब शब्द इसी मानस प्रतिभा का पर्याय है ।'[1] अतः देशी विदेशी प्रायः सभी समीक्षकों ने स्वीकार किया है कि कविता की रचना में बिम्बों का महत्वपूर्ण स्थान है । प्रत्येक कविता में बिम्बों का एक क्रम होता है, जो उसे बोधगम्य एवं प्रभावशाली बनाता है ।

अस्तु, कविता में भाव या विचार के अतिरिक्त जो ठोस वस्तु है, वह है बिम्ब । बिम्ब के द्वारा कविता में संक्षिप्तता, वास्तविकता एवं सुन्दरता संभव होती है । कवि बिम्ब विधान के द्वारा पाठक की भावात्मक एवं मानसिक स्थिति को परिवर्तित करने अनेक सन्दर्भों से उसे जोड़ता है । यही कारण है कि बिम्ब प्रधान कविताओं का पाठक पर स्थायी प्रभाव पड़ता है और वह कविता के मूल भावों में पहुँच जाता है ।

नयी परिस्थितियों के साथ कवि के अवलोकन बिन्दु में भी परिवर्तन हुआ है । फलस्वरूप नयी कविता में उसकी बिम्ब विधान संबन्धी नवीन दृष्टि गोचर होती है । " बिम्ब संयोजन में परम्परावादिता का अनुगमन नयी कविता के रचनाकारों ने नहीं किया और इसका परिणाम भी यह हुआ कि ऐसे बिम्ब प्रस्तुत हुए हैं, जो अपने मौलिक संस्कारों की अभिव्यक्ति करते हैं । × × × इस धारा के रचनाकारों की जीवन दृष्टि अलग है, उनकी काव्य मान्याऐं भिन्न हैं तथा उन्होंने मौलिक काव्य सिद्धान्तों का प्रस्थापन किया है ।'[2]

नयी कविता में प्रयुक्त बिम्बों को समीक्षकों ने निम्न लिखित रूपों में विभाजित किया है -

1. विषयात्मक बिम्ब, एवं 2. गुणात्मक बिम्ब ।

1. **विषयात्मक बिम्ब** : इसके अन्तर्गत वस्तुगत बिम्ब, भावात्मक बिम्ब, कलात्मक बिम्ब, प्राकृतिक बिम्ब , पौराणिक व वैज्ञानिक बिम्बों को लिया जा सकता है ।

2. **गुणात्मक बिम्ब** : इसके अन्तर्गत स्पर्श, रंग, गंध, स्वाद, श्रवण स्मृति से संबंधित बिम्ब **आते हैं ।**

बिम्ब विधान के वर्ण्य विषय अपरिमित हैं । इन वर्ण्य विषयों के आधार पर भी बिम्बों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है -

1. कलात्मक बिम्ब, 2. प्रकृति बिम्ब, 3. पौराणिक बिम्ब, 4. वैज्ञानिक बिम्ब, 5 जीवन के क्रिया-कलापों से सम्बन्धित बिम्ब ।

---

1. धीरेन्द्र वर्मा,'हिन्दी साहित्य कोष',पृ0-514 2. रामशंकर मिश्र,'नयीकविता:संस्कार और शिल्प',पृ0-211-212

कलात्मक बिम्ब के अन्तर्गत आभूषण, संगीत, नृत्य, थियेटर, पुस्तकें स्थापत्य आदि सम्मिलित हैं ।

प्रकृति बिम्ब में बागवानी, समुद्र, ऋतु, कृषि, पर्वत, नदी, पशु-पक्षी आदि को लिया जा सकता है ।

पौराणिक बिम्ब के वर्ण्य विषय शास्त्रीय व्यक्ति व वस्तुएँ होती हैं । इसमें किसी पौराणिक या ऐतिहासिक घटना या व्यक्ति का चित्र प्रस्तुत किया जाता है । यह बिम्ब पौराणिक पात्रों के नामोल्लेख अथवा घटनाओं के संकेत द्वारा भी बनता है ।

वैज्ञानिक बिम्ब में युद्ध के उपकरण, दवा, विज्ञान आदि सम्मिलित किये जा सकते हैं ।

जीवन के क्रिया कलापों सम्बन्धी बिम्बों में कैदी, घरेलू वस्तुएँ, कानून, खेलकूद, शारीरिक क्रिया व्यापार आदि को लिया जा सकता है ।

इस वर्गीकरण के पाँच विभागों के आधार पर जो बिम्ब प्रधान प्रस्तुत किया जाता है, उसका सम्बन्ध किसी न किसी इन्द्रिय से होता है । 'इस दृष्टि सम्बन्धी बिम्ब विधान या कल्पना की क्षमता प्रायः सभी व्यक्तियों में मिलती है । दूसरा स्थान शाब्दिक बिम्ब-विधान की क्षमता का है । गंध, रस स्पर्श सम्बन्धी कल्पना की क्षमता अपेक्षाकृत कम लोगों में मिलती है ।'[1]

'भारती' के काव्य में गंध, रस, स्पर्श सम्बन्धी बिम्ब अन्य बिम्बों की अपेक्षाकृत कम मात्रा में मिलते हैं इनके काव्य में वैसे तो सभी प्रमुख बिम्बों का संयोजन हुआ है किन्तु पौराणिक बिम्बों का कुछ अधिक ही प्रयोग हुआ है ।

'भारती' की रचनाओं में पौराणिक बिम्बों के बाद कलात्मक बिम्बों का स्थान है । इस प्रकार के बिम्ब 'कनुप्रिया' में बहुतायत से देखने को मिलते हैं । राधा की तन्मयता, उसकी भोली भावुक मुद्रा से परिपूर्ण एक बिम्ब दृष्टव्य है -

'पर मुझे देखो कि मैं उस समय भी
तो माथा नीचा कर
इस अलौकिक सुहाग से प्रदीप्त होकर
माथे पर पल्ला डाल कर
झुक कर तुम्हारी चरण धूलि लेकर
तुम्हें प्रणाम करने
नहीं आयी, नहीं आयी, नहीं आयी ।'[3]

---

1. धीरेन्द्र वर्मा, 'हिन्दी साहित्य कोष (सं.) पृ0-514 2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ- 23

प्रकृति बिम्ब का 'भारती' की कविता में अभाव नहीं है । प्रकृति और मानव का साहचर्य आदिकाल से चला आ रहा है । इसलिए कवि अपनी रचनाओं में अनेक प्रकृति-परक रंगीन बिम्बों की सृष्टि करता है और इनके द्वारा प्राकृतिक सौन्दर्य को पाठक के मानस में उतारता है । भावुक एवं प्रेमी कवि 'भारती' की रचनाओं में हमें प्रकृति बिम्बों का सुन्दर एवं सुलझा रूप मिलता है । प्रकृति बिम्बों के द्वारा मानवीय व्यापारों की सुन्दर अभिव्यंजना इनके काव्य की मुख्य विशेषता है । बिजली की चमचम चूनर, धूप सदृश खिलता यौवन, वनफूलों सी बेदाग,,ताजी वाणी आदि पर कवि का ध्यान कुछ अधिक ही गया है ।

प्राकृतिक बिम्बों के द्वारा मानवीय भावनाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति -

'लतरो के ताजे फूलों पर
भंवरों की ताजी भूलों पर
बुनता है कोई प्रेम सपन
फूलों के कंधो पर सिर धर
सो रहीं तितलियाँ असलाकर ।'[1]

नयी कविता के प्रभाव के कारण इनकी कविताओं में पशु-पक्षियों के आधार पर भी बिम्बों का सृजन हुआ है -

'एक अजनबी को देख
आँगन में नहाती हुई गौरैया भागी
और झुरमुट में छिपकर, व्याकुलता से चहकी,
मुझको पहचान आज
थाले की जुही कुछ डोली ।'[2]

बहुत दिनों के बाद मिले प्रेमी व प्रिया पर हुई प्रतिक्रिया को कवि ने आँगन में नहाती गौरैया व हवा से डोलती जुही के माध्यम से चित्रित किया है । आँगन में नहाती गौरैया का भागना, व्याकुलता से चहकना और उदास जुही का डोल जाना । चित्र पाठक के समक्ष काफी देर तक बना रहता है ।

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 20
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृष्ठ - 53

प्रेम की मादक व त्रासद दोनो ही स्थितियों में अकेले प्रेमी मन के साथ बस प्रकृति ही तो होती है, उसी के माध्यम से अपने उल्लास और दर्द को कवि ने कहीं तो बिखराया है तो कहीं धीरे से उदास मन से संकेत भर दे दिया है ।

प्रिया के फीरोज़ी होठों पर प्रेम की आभा ठीक वैसी ही लग रही है जैसे करवट बदलती बरसात की दोपहर -

'गुलाबी पाँखुरी पर एक हल्की सुरभई आभा
कि ज्यों करवट बदल लेती कभी बरसात की दुपहर
इन फीरोजी होंठों पर ।'[1]

यह आभा ठीक वैसी ही है जैसे बरसात की दोपहर का एकाएक करवट बदल लेना । झमझम करती हुई बरसात में श्यामल आकाश के किसी कोने से बादलों के छँट जाने पर हल्की प्रकाश रेखा की जो अरूणिमा थिरक जाती है, वैसी ही अरूणिमा नायिका के फ़ीरोजी होठों की है । इस प्रकार आँखों के सामने बरसात की दोपहर का चित्र व उदास नायिका के होंठो पर मुस्कान दोनो ही स्थितियाँ स्पष्ट हो जाती हैं ।

'भारती' में बिम्ब को बहुत बारीकी से समग्रता में उभारने का सामर्थ्य है । नीली झील का यह चित्र कुछ इसी प्रकार का है -

'दूर तक फैली हुई मासूम धरती की
सुहागन गोद में सोये हुए
नवजात शिशु के नेत्र सी
इस शांत नीली झील के तट पर ।'[2]

भारती के काव्य में प्राकृतिक बिम्बों से अधिक पौराणिक बिम्बों का सुन्दर संयोजन हुआ है । इन बिम्बों का प्रयोग इनकी कविता में अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक सफल एवं कलात्मक हुआ है । पौराणिक बिम्बों के माध्यम से कवि के माँसल प्रेम व रूमानियत की अभिव्यक्ति -

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 18
2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 76

'रख दिये तुमने नजर में बादलों को साध कर
आज माथे पर सरल संगीत से निर्मित अधर
आरती के दीपकों की झिलमिलाती छाँह में
बाँसुरी रक्खी हुई ज्यों, भागवत के पृष्ठ पर ।'[1]

संगीत, आरती, दीपक, बाँसुरी और भागवत आदि से इस कविता में एक प्रकार का धार्मिक वातावरण उत्पन्न होता है, जिससे वासनात्मकता व धार्मिकता की मिली जुली अनुभूति होती है ।

इसी प्रकार 'जाड़े की शाम' में कवि ने पौराणिक बिम्बों की सृष्टि कर के अपनी भावात्मक स्थिति को सुन्दर अभिव्यक्ति दी है -

'जिस दिन तुमने फूल बिखेरे माथे पर
अपने तुलसी - दल जैसे पावन होठों से
मैं महज तुम्हारे गर्म वक्ष में शीश छुपा
चिड़िया के सहमें बच्चे सा हो गया मूक
लेकिन उस दिन मेरी अलबेली वाणी में
थे बोल उठे,
गीत के मंजुल श्लोक, ऋचाएँ वेदों की ।'[2]

चुम्बन के फूल, तुलसी दल जैसे पावन होंठ, वाणी में गीता के मंजुल श्लोक, वेदों की ऋचाँए आदि धार्मिक दृश्य की सृष्टि करते हैं । सुरेश चन्द्र सहल ने भी लिखा है कि - 'प्रसाद की तरह डा0 भारती में भी मांसलता या वासना का धार्मिकता के साथ समन्वय अनूठा व हृदयग्राही बन पड़ा है ।'[3] किन्तु सच है कि भारती के काव्य में ये बिंब उनकी रूमानियत व भावुकता वश ही प्रयुक्त हुए हैं ।

पांडवराज युधिष्ठिर के पास एक कुत्ता था । जिस प्रकार कुत्ता पीछे-पीछे चलता है उसी प्रकार परछाँही भी पीछे-पीछे चला करती है । कुत्ते को काला कह कर 'भारती ने बड़ी सफलता पूर्वक परछांही से सादृश्य स्थापित किया है और पौराणिक पुरुष युधिष्ठिर के बिम्ब द्वारा परछांही को काले कुत्ते के साधर्म्य पर प्रस्तुत किया है -

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ- 33 2. अज्ञेय, 'दूसरा सप्तक' (स.) पृष्ठ - 184
3. सुरेश चन्द सहल, 'नयी कविता का मूल्यांकन' पृष्ठ -27

'घनी बर्फ पर
इस ऊबड़ -खाबड़ घाटी में
पाण्डवराज युधिष्ठिर के काले कुत्ते सी
पीछे - पीछे पूँछ दबाये,
आखिर कब तक संग निभायेगी तू मेरा
ओ मेरी परछाँही मेरा साथ छोड़ दे ।'[1]

युग की विषमताओं से त्रस्त कवि ने अपनी निराशा को भी कुछ ऐसे ही पौराणिक बिम्बों के माध्यम से प्रस्तुत किया है -

'मणि शैया पर जल बालाओं का प्यार
या सागर का विष मन्थन अपरम्पार
क्या पायेगें ?
प्रभु ?
हम क्या पायेंगें ?'[2]

परिस्थितियों के रेगिस्तान में सजलता का स्मरण कराती हुई कविता का गंगा के रूप में पौराणिक बिम्ब बहुत सुन्दर बन पड़ा है -

'वही कविता
विष्णुपद से जो निकल
और ब्रह्मा के कमण्डल से उबल
बादलों की तहों को झकझोरती
चाँदनी के रजत फूल बटोरती
शम्भु के कैलाश पर्वत को हिला
उतर आयी आदमी की जमीं पर
एक तुलसी पत्र औ दो बूंद गंगाजल बिना
मर गयी कविता नहीं तुमने सुना ।'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 80
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 32
3. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 43

यहाँ कविता की कहानी गंगावतरण की कहानी के माध्यम से कही गयी है । गंगावतरण की योजना से कविता के मांगलिक उद्भव, पथ - विघ्न और तदन्तर धरती पर आकर हरा-भरा और पावन करने की बात व्यंगार्थ से सिद्ध है ।

द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका व तृतीय विश्व युद्ध के विनाशकारी परिणामों की सम्भावित चेतावनी का प्रभाव नयी कविता पर पड़ा है । इसलिए भारती के काव्य में युद्ध विषयक बिम्बों का मार्मिक संयोजन हुआ है । वैज्ञानिक प्रभाव के कारण इनकी रचनाओं में विज्ञान, वनस्पति, ब्रह्मास्त्र आदि के माध्यम से सुन्दर व सार्थक बिम्ब योजना हुई है ।

कवि ने युद्ध विषयक बिम्बों का प्रयोग इतना प्रभावात्मक किया है कि आँखों के समक्ष एक चित्र सा बन जाता है -

'ज्ञात क्या तुम्हें हैं परिणाम इस ब्रह्मास्त्र का
यदि यह लक्ष्य सिद्ध हुआ ओ नरपशु
तो आगे आने वाली सदियों तक
पृथ्वी पर रसमय वनस्पतियाँ नहीं होंगी
शिशु होंगे पैदा विकलांग और कुंठाग्रस्त
सारी मनुष्य जाति बौनी हो जायेगी ।'[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में युद्ध की विभीषिका से त्रस्त विकलांग बच्चों व क्षीण होती मानवजाति का एक बिम्ब स्पष्ट होता है ।

'कनुप्रिया' में राधा में माध्यम से कवि ने युद्ध सम्बन्धी बिम्बों की सृष्टि की है । कनुप्रिया राधा के द्वारा युद्ध के उपकरणों को अभिव्यक्ति दे कर कवि ने युद्ध की विकृतियाँ को पाठक के मानस पर अंकित करने का सफल प्रयास किया है -

धारा में बह कर आते हुए टूटे रथ
जर्जर पताकाएँ किसकी हैं ?
वहाँ अब शस्त्रों से लदी हुई
अगणित नौकाओं की पंक्ति रोज रोज़ कहाँ जाती है ?[2]

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 94
2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 68

इसी प्रकार तहस-नहस कर भागती सेना एवं उजड़े नगर का बिम्ब -

'उजड़े हुए कुंज
रौंदी हुई लताएँ
आकाश पर छायी हुई धूल
क्या तुझे यह नहीं बता रही
कि आज उस राह से
कृष्ण की अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ
युद्ध में भाग लेने जा रही हैं ।'[1]

इतना ही नहीं भारती ने कहीं-कहीं रोमानी मूड के माध्यम से यांत्रिक बिम्ब भी बड़ी सफलता से चित्रित किये हैं । कनुप्रिया की मनः स्थिति को रूपायित करने के लिए की गयी बिंब योजना इस सम्बन्ध में दृष्टव्य है - राधा, कृष्ण का नाम बालू पर अपनी उंगलियों से लिखती है और अगले ही क्षण उसे मिटा भी देती है । क्योंकि वह दो यंत्रों का पुंज मात्र है । अथवा दो विपरीत यंत्र । जिनमें एक अनुमति के बिना ही नाम लिख देता है और दूसरा बिना किसी संकोच के उसे मिटाता चलता है -

'क्या अब मैं केवल दो यंत्रो का पुंज मात्र हूँ ?
दो परस्पर विपरीत यंत्र
उनमें से एक बिना अनुमति नाम लिखता है
दूसरा उसे बिना हिचक मिटा देता है ।'[2]

आधुनिक युग बोध की अभिव्यक्ति हेतु कवि ने अन्य वैज्ञानिक बिम्बों का भी प्रयोग किया है, जिसमें संगीनें, रंगबिरंगी फिल्में व कैमरे आदि प्रमुख हैं -

आधे हैं जिनके हाथों में हैं
कैमरे,
थैलियाँ
टूअरिस्ट पासपोर्ट
रंगबिरंगी फिल्में।'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 64
2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 62
3. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृष्ठ - 47

मानव जीवन से सम्बन्धित तथा मानवेतर व्यापारों को प्रस्तुत करने वाले बिम्बों का साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान हैं । इसमें जीवन के विविध क्रिया कलापों को सम्मिलित किया जा सकता है । इस प्रकार के बिम्बों का सम्बन्ध मानव तथा मानवेतर जीवन दोनों से होता है । इसके अन्तर्गत कृषि, पशु ,संस्कृति व दैनिक जीवन के विविध पक्षों को लिया जा सकता है ।

इस द्रृष्टि से 'भारती' की कविता में पशुचारण सम्बन्धी एकाध बिम्ब ही प्रयुक्त हुआ है । इसके लिए कवि ने प्रकृति का आश्रय लिया है । निम्न पंक्तियों में कवि ने घाटी के बादल को चांदी का हिरन बताया है और बादल के पीछे छूटे टुकड़ों को छायादार झाड़ियों में विश्राम करती उजली और धौरी गायों के समान। यहाँ सम्पूर्ण बिम्ब चरते हुए हिरन व चरने के बाद विश्राम करती गायों का बनता है -

'केवल कुछ बादल के टुकड़े पीछे छूटे
छायादार झाड़ियों में विश्राम कर रहे
जैसे धौरी, उजली गायें
एक अकेला चंचल बादल
चाँदी के हिरने सा
घाटी में चरता है ।'[1]

दैनिक जीवन के अन्तर्गत प्रणय व्यापारों की पर्याप्त महत्ता है । भारती के काव्य में प्रणय की अनेक चेष्टाओं को आधार बना कर भी बिम्ब खड़े किये गये हैं । धूप की पारदर्शी ओढ़नी ओढ़े रतिश्रांता-सी कुमारी घाटी और कामातुर मेघ का वर्णन यौन बिम्ब की सृष्टि करता है -

'प्रातधूप की जरतारी ओढ़नी लपेटे
अभी-अभी जागी
खुमार से भरी
नितान्त कुमारी घाटी
इस कामातुर मेघधूम के
औचक आलिंगन में पिस कर
रतिश्रान्ता-सी मलिन हो गयी ।'[2]

---

1. धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ-86
2. धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ- 81

यौन व्यापार से सम्बन्धित आलिंगन कसाव का यह बिम्ब भी कितना भावपूर्ण व स्वाभाविक है -

'और यह मेरा कसाव निर्मम है ।
और अंधा और उन्माद भरा
और मेरी बाहें । नागवधू की गुंजलक की भाँति,
कसती जा रही हैं ।'[1]

रोमानी दृष्टिकोण होने के कारण 'भारती' की कविता में भाव बिम्ब पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं । वैसे तो आधुनिक बौद्धिक चेतना के प्रभाव के कारण विचार बिम्ब नयी कविता में विशेष रूप से प्रयुक्त हुए हैं, किन्तु 'भारती' के काव्य में भाव बिम्ब की संयोजना बहुत सुन्दर हुई है । भावुकतावश पनपे आकर्षण का एक बिम्ब द्रष्टव्य है -

'और मेरा मन
कभी उस फूल के अन्दर कभी बाहर
भटकता है
उस भ्रमर सा
फूल ने जिसको न रखा कैद
लेकिन मुक्त भी छोड़ा नहीं है ।'[2]

उपर्युक्त वर्णित बिम्बों के अतिरिक्त 'भारती' के काव्य में संवेद्य बिम्ब भी विद्यमान हैं । ऐसे बिंब पाठक की संवेदना को प्रभावित करते हैं । यहाँ किसी बात को एकदम सीधे न कह कर कवि, कथ्य को विभिन्न इन्द्रियों से जोड़ देता है । ऐसा बिम्ब चित्रण मनुष्य के इन्द्रिय संवेदन पर आधारित होता है । 'इतना ही नहीं उसमें दृश्यता के साथ-साथ कई बार तो एन्द्रिकता भी देखी जा सकती है । किन्हीं अंशों में अगर यह कहा जाये कि एन्द्रिक गुण से संयुक्त होते हुए भी बिम्ब चाक्षुक या दृश्य गुण से युक्त हो तो अत्युक्ति नहीं होगी ।'[3]

भारती के काव्य में दृश्य बिम्ब के अतिरिक्त स्पर्श, घ्राण, नाद, ध्वनि, रंग और आस्वाद सम्बन्धी बिम्बों का भी प्रयोग हुआ ।

---

1. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया', पृष्ठ -51 2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 66
3. हरिचरण शर्मा, 'नयी कविता का मूल्यांकन- परम्परा और प्रगति की भूमिका पर पृष्ठ - 335

छायावादी कवियों के समान 'भारती' की कविता में स्पर्श संवेद्य बिम्बों को बहुतायत से देखा जा सकता है । कभी-कभी कवि महसूस करता है -

'उफ । मेरी बांहो में
शव जैसा ठंडा कौन गिरा ?'[1]

किन्तु कवि द्वारा प्रयुक्त स्पर्श बिम्ब मात्र भय व सिहरन भरे ही नहीं है अपितु कहीं-कहीं बड़े मधुर भी हैं । नबम्बर की दोपहर का गुनगुना स्पर्श कवि को कुछ ऐसे छू जाता है जैसे प्रेमिका की जोर्जट की पीली साड़ी का आँचल -

'अपने हल्के फुल्के उड़ते स्पर्शो से
मुझको छू जाती है
जॉर्जट के पीले पल्ले-सी यह दोपहर नवम्बर की ।'[2]

इसी प्रकार शरीर में छाये स्पन्दन या कम्पन को भी कवि ने बिंबित किया है -

'मंत्र पढ़े वाण से छूट गये तुम तो कनु,
शेष रही मैं केवल काँपती प्रत्यंचा-सी ।'[3]

वर्ण संवेद्य से प्रभावित बिम्ब सी 'भारती' की कविता में यत्र-तत्र मिल जाते हैं । मूँगिया, सतरंगिया, फीरोज़ी रंग तो इनकी कविता का प्राण तत्व है । 'भारती' ने विरह, प्रेम, मिलन के चित्र वर्ण बिम्बों में भी उकेरे हैं । कहीं कवि ने सुकुमार नायिका के गुलाबी पांखुरी से होंठो पर उदासी को सुरमई रंग की उपमा देकर मौलिक बिम्ब योजना प्रस्तुत की है तो कहीं राधा के नख शिख की कोमलता के साथ वर्ण का आभास भी कराया है ।

'ये पतले मृणाल सी तुम्हारी
गोरी अनावृत बाहें ।'[4]

निम्न पंक्तियों में विरहिणी नायिका के चेहरे की उदासी को पीले गुलाब सा व्यक्त करने में भी वर्ण संवेद्य बिम्ब की योजना हुई है -

'बहुत उदास सा पीले गुलाब-सा चेहरा
हथेलियों में टिका हुआ गुमसुम ।'[5]

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ -66
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृष्ठ - 13
3. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया', पृष्ठ - 58
4. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया', पृष्ठ - 29
5. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 68

भारती की कविता में कहीं-कहीं आस्वाद्य बिम्ब भी प्रयुक्त हुए हैं, जबकि नयी कविता के अधिकांश कवियों का ध्यान इस ओर गया ही नहीं है । जिन्दगी की मादकता व्यक्त करने के लिये कवि ने सुरा' का बिम्ब प्रस्तुत किया है -

'यह जिन्दगी किसी सुन्दर
चित्र में रंग लिखी सुरा सी है ।'[1]

इसी प्रकार घ्राण संवेद्य बिम्ब भी यदा-कदा ही प्रयुक्त हुए हैं -

'वह भी थी आँगन की बेल
किन्तु
महक रही आज बड़ी दूर से
आज गझिन गुच्छे फूले होंगे
धुले हुए
चन्दन से, आँसू से, ओस से, कपूर से।'[2]

कहीं-कहीं ध्वनि बिम्ब भी प्रयुक्त हुए हैं । अंधियारी रात व तेज हवा के वातावरण का एक ध्वनि बिम्ब दृष्टव्य है -

'दीख नहीं पड़ते हैं पेड़
मगर डालों से ध्वनियों के
अगणित झरने झरते झर-झर ।'[3]

उपर्युक्त बिम्बों के अतिरिक्त एक साथ उभरे अनेक बिम्बों के कारण भारती की कविता में बिम्बों की माला सी पिरोई हुई लगती है -

'बूझी हुई राख, टूटे हुए गीत
रीते हुए पात्र, बीते हुए गीत
मेरा यह जिस्म
बीते हुए उत्सव सा, उठे हुए मेले सा
मेरा यह जिस्म ।'[4]

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ- 63
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 68
3. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृष्ठ- 42
4. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 57

सच तो यह है कि 'भारती' के काव्य में बिम्बों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है । 'कनुप्रिया' की तो प्रायः समस्त अभिव्यक्ति ही बिम्बात्मक है । एक से एक अछूते बिम्ब इस कृति में संजोये गये हैं । उपदेश देते हुए कनु, बावरी राधा, राधा की चेष्टाएँ, संयोग - वियोग, सौन्दर्य, सर्वत्र बिम्बात्मक चित्रण ही हुआ है ।

निष्कर्षतः भारती के काव्य में भावात्मकता के कारण कलात्मक बिम्ब योजना ही अधिक हुई है । प्राकृतिक सौन्दर्य एवं नारी सौन्दर्य के प्रभाव व भावुकता के कारण कवि ने नये अनूठे बिम्बों का प्रयोग किया है। 'कनुप्रियाकार भारती सधे हुए शिल्पी हैं। सम्पूर्ण काव्य में ऐसी सहज, क्रमबद्ध, व्यापक और भव्य बिम्ब योजना है कि, उनके पृथक उदाहरण देना दुष्कर है ।'[2]

इस प्रकार 'भारती के काव्य में बिम्बों की कमी नहीं है । भावात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति का माध्यम इन्होंने बिम्बों को ही बनाया है । उनके चित्रण में कवि कहीं भी चूका नही है ।

प्रतीक योजना :

प्रतीक का अर्थ है चिह्न । किसी मूर्त द्वारा अमूर्त की पहचान । विस्तार को संक्षेप में कहने का माध्यम है प्रतीक । प्रतीक के सहारे हम दैनिक जीवन में भी अपने विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं । अमूर्त का मूर्तन एवं उसका प्रत्यक्षीकरण प्रतीकों के माध्यम से ही सम्भव है । मनुष्य अपने सूक्ष्म चिन्तन की अभिव्यक्ति करते समय प्रतीकों का ही आश्रय लेता है । 'मनुष्य का समस्त जीवन प्रतीकों से परिपूर्ण है । वस्तुतः मनुष्य मूलतः प्रतीकों के माध्यम से ही सोचता है । × × × कुछ प्रतीक सार्वभौम होते हैं, जैसे - सिंह वीरता का, श्वेत रंग पवित्रता का, श्रृगाल कायरता का और लोमड़ी चतुराई का प्रतीक है ।'[2]

काव्य में प्रतीक प्रयोग से भाषा में एक नयी अर्थवत्ता तथा नवीन शक्ति आ जाती है । काव्य में अवतरित होकर प्रतीक कई बार अलंकार का काम भी करते हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये काव्य में सही अर्थ की प्रतीति कराने में सक्षम होते हैं । जो बात अभिधात्मक शैली में कहे जाने पर सौन्दर्य को नष्ट कर देती है, वहीं प्रतीकों का बल पाकर काव्यात्मक सौन्दर्य को द्विगुणित कर देती है । प्रतीक एक ओर भाव संप्रेषण करते हैं, तो दूसरी ओर भाषा का अलंकरण ।

---

1 महावीर सिंह चौहान, 'नयी कविता की प्रबन्ध चेतना' पृष्ठ - 58
2. धीरेन्द्र वर्मा, 'हिन्दी साहित्य कोष' (स.), पृष्ठ - 472

प्रतीकों का इतिहास बहुत पुराना है । 'प्रतीक भारत में तो इतने पुराने हैं, जितना वैदिक साहित्य । उपनिषदों के प्रतीक प्रसिद्ध ही हैं । बौद्धों और संतो की प्रतीक परम्परा अपने साथ तांत्रिक प्रतीकों को लेकर भारतीय सन्त साहित्य में काफी घुल मिल गयी है । पश्चिम में भी प्रतीकों का इतिहास पर्याप्त दूर तक जा पहुँचता है । पालवेलरी, रिम्बो और मलार्मे ने पाश्चात्य साहित्य में प्रतीकों के विकास में बहुत बड़ा योग दिया है । इसमें सन्देह नहीं कि नयी कविता के प्रतीक विधान में पाश्चात्य साहित्य के अध्ययन, अध्यापन का पर्याप्त योग है ।'[1]

प्रतीकों के विभाजन के अनेक आधार हैं किन्तु आधुनिक युग में कवि जीवन के हर क्षेत्र से प्रतीकों का चयन कर रहा है । अतः ऐसी स्थिति में प्रतीकों का वर्गीचरण केवल विषय के आधार पर किया जा सकता है । स्थूल रूप में तो प्रतीक दो प्रकार के हो सकते हैं -

1. परम्परागत प्रतीक
2. नवीन प्रतीक ।

परम्परागत प्रतीकों के भी दो प्रकार हैं - एक तो वे जो किसी अर्थ विशेष के निमित्त एक होकर एकोन्मुखी हो गये हैं, तथा दूसरे वे जो शब्द में तो पुराने हैं, किन्तु भिन्न अर्थ लेकर आये हैं । नवीन प्रतीकों में स्वच्छन्द प्रतीक या नये क्षेत्रों से गृहीत प्रतीक आते हैं । जैसे प्रकृति, विज्ञान, दर्शन आदि से गृहीत, प्रतीक । सामान्य रूप से प्रतीकों को इन वर्गो में रखा जा सकता है ।'[2]

1. सांस्कृतिक प्रतीक, (पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा धार्मिक प्रतीक)
2. प्राकृतिक प्रतीक
   - अ) लौकिक अभिव्यक्ति के द्योतक
   - ब) आध्यात्मिक अभिव्यक्ति के द्योतक
3. वैज्ञानिक प्रतीक
4. दार्शनिक प्रतीक
5. राजनैतिक प्रतीक

---

1. हरिचरण शर्मा, 'नयी कविता का मूल्यांकन : परम्परा और प्रगति की भूमिका पर', पृष्ठ - 252
2. हरिचरण शर्मा, 'नयी कविता का मूल्यांकनः परम्परा और प्रगति की भूमिका' पृष्ठ - 253

विदेशी प्रवृत्तियों से प्रभावित होने के कारण साहित्य में फ्रॉयड के यौन सिद्धान्त को उद्घाटित करने वाली कविताएँ भी मिलती हैं । अतः छायावाद से लेकर नयी कविता तक कुछ नये प्रतीक और जुड़े हैं ।

छायावाद और प्रगतिवाद ने प्रतीकों का प्रयोग अपने-अपने ढंग से किया । यदि छायावाद ने प्रतीकों को अमूर्त रखा तो प्रगति वाद ने उन्हें मूर्त रूप दिया और कविता कल्पना व सौन्दर्य से यथार्थ और वास्तविकता की ओर बढ़ी । नयी कविता ने प्रतीकों को अपने पूर्ववर्ती काव्य की सीमाओं से और आगे बढ़ाया । नये कवियों ने प्रतीकों के वैविध्यपूर्ण प्रयोग प्रस्तुत करके अनुभूति को व्यवस्थित व्यंजना दी।स्वतंत्रता के पश्चात् लिखी जाने वाली नयी कविता ने प्रतीकों के स्वच्छंद किन्तु यथार्थ रूप को प्रस्तुत किया है । नयी कविता में यथार्थ को स्पष्ट करने के प्रयास में कवियों ने विभिन्न प्रकार के प्रतीकों का आश्रय लिया है । एक ओर यदि पौराणिक तथा धार्मिक प्रतीकों का प्रचुर किन्तु सटीक प्रयोग करके नयी कविता ने यदि परम्परा प्रियता दिखाई है तो नये सन्दर्भ में प्रतीकार्थ प्रस्तुत कर प्रगतिशील प्रवृत्ति का भी परिचय दिया है । इतना ही नहीं यौन प्रतीक तथा यथार्थ जीवन से गृहीत प्रतीकों को अपना कर नयी कविता परम्परा से आगे की परिवर्तित स्थिति की सूचना भी देती है । एक ओर नयी कविता में प्राप्त अधिकांश प्रकृति प्रतीक परम्परा से मेल खाते हैं तो दूसरी ओर बहुत से प्रतीक नवीनता का आभास भी देते हैं । नयी कविता में प्रयुक्त प्रतीकों को इन वर्गों में रखा जा सकता है ।'[1]

1. सांस्कृतिक प्रतीक - पौराणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक प्रतीक ।
2. प्राकृतिक प्रतीक
3. वैज्ञानिक प्रतीक
4. यौन प्रतीक ।

चूंकि 'भारती' नयी कविता के समर्थ हस्ताक्षर हैं, अतः इनके काव्य में नयी कविता में प्रयुक्त प्रायः सभी प्रतीकों का प्रयोग हुआ है । 'भारती' ने प्रतीकों का प्रयोग युग की विषमताओं व प्रेमजन्य भावुकता से प्रभावित होकर किया है । अपने विचारों को बोधगम्य बनाने के लिए कवि ने प्रतीकों को माध्यम बनाया है ।

सांस्कृतिक प्रतीक - सांस्कृतिक प्रतीक वे हैं जो धर्म, इतिहास, पुराण और साहित्य से सम्बन्धित हैं । 'इनका स्रोत सांस्कृतिक है, किन्तु ये प्रतीक आधुनिक भावबोध को रूपायित करने के लिए प्रयुक्त किये गये हैं । यदि नया कवि प्राचीन सांस्कृतिक तत्वों अथवा उपादानों से नये भाव बोध को वाणी देता है तो इससे उसका प्राचीन संस्कृति प्रेम ही प्रकट होता है ।'[2]

---

1. हरिचरण शर्मा, 'नयी कविता का मूल्यांकनः परम्परा और प्रगति की भूमिका पर', पृष्ठ - 253
2. हरिचरण शर्मा, 'नयी कविता का मूल्यांकन परम्परा और प्रगति की भूमिका पर', पृष्ठ- 254

'भारती' ने प्राचीन सांस्कृतिक तत्वों के माध्यम से, नये भाव-बोध को वाणी देने का सफल प्रयास किया है । कवि ने नवीन व पुरातन का समन्वय करके कविता को स्वस्थ व विकसित रूप प्रदान किया है । कवि ने विभिन्न मनोदशाओं की एवं सामाजिक अव्यवस्था व समस्याओं की अभिव्यक्ति के लिए महाभारत के चरित्रों व अनेक प्राचीन साहित्यकारों को प्रतीकत्व प्रदान किया है ।

'भारती' अधुनातन कवियों में नवीन प्रयोगों हेतु अविस्मरणीय हैं । उनकी रचनाओं में काव्य शास्त्रीय, ऐतिहासिक, यौन कुंठागत, बिम्बधर्मा आदि सभी प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग है, परन्तु पौराणिक प्रतीकों के प्रति कवि का लगाव कुछ अधिक ही है । उन्होंने नवीनतम समस्याओं के समाधान पौराणिक सन्दर्भों को प्रस्तुत कर इंगित किए हैं । अतीत को वर्तमान की कसौटी पर कस कर कवि ने तत्कालीन परम्पराओं, आस्थाओं व जीवन मूल्यों को अस्वीकार किया है । कवि ने पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से युगजीवन की दीनता, हीनता और प्रताड़नाओं को अभिव्यक्ति दी है । नयी कविता की बहुचर्चित प्रवृति लघुता को कवि ने 'टूटा पहिया' के प्रतीक द्वारा समझाने का सफल प्रयास किया है । जन-चेतना की द्योतक निम्न पंक्तियों में लघुता का प्रतीक दृष्टव्य है -

'मैं रथ का टूटा पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंको मत
क्या जाने कब
इस दुरूह चक्रव्यूह में
अक्षौहिणी सेनाओं को चुनौती देता हुआ
कोई दुस्साहसी अभिमन्यु आकर घिर जाये
तब मैं रथ का टूटा हुआ पहिया
उसके हाथों में रक्षा की ढ़ाल बन सकता हूँ ।'[1]

यहाँ चक्रव्यूह संक्रान्ति कालीन संघर्ष का प्रतीक है जो आधुनिक बोध के निकट है । अक्षौहिणी सेनाएँ समाज है, जिसे पारकर ही अभीष्ट प्राप्ति सम्भव है । तथा अभिमन्यु निराश्रित दीन मानव का प्रतीक है ।

पौराणिक और धार्मिक प्रतीकों के समान ही 'भारती' ने ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं को भी प्रस्तुत कर अभीष्ट अर्थ को प्रेषणीय बनाया है । यूनानी दंतकथा के आधार पर ग्रहण किया गया 'भारती' का प्रतीक 'प्रमथ्यु' साहसी, विद्रोही और अंधी उक्तियों को चुनौती देने वाले व्यक्ति के रूप में प्रयुक्त हुआ है -

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 54

'हाँ, उस दिन
अकेला मैं रहूँगा नहीं
सबके हृदयों में मैं जागूँगा
मैं - प्रमथ्यु :
कटु मैं नहीं हूँ
घृणा किससे करूँगा मैं ?'[1]

आधुनिक युग की विषमताओं में त्रस्त व्यक्तित्व एवं चापलूसों का चित्रण कवि ने प्रतीकात्मक शैली में किया है । इसके लिए कवि ने प्राचीन साहित्यिक व ऐतिहासिक व्यक्तित्व को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है । 'हर्षवर्धन' और 'वाणभट्ट' के प्रतीक इसी प्रकार के हैं -

'सत्य है राजा हर्षवर्धन के हाथों से मिला हुआ -
पान का सुगंधित लघु बीड़ा
(चाहे वह जूठा हो)
पर उस पर लगा हुआ वर्कदार सोना था
हाय वाणभट्ट हाय ।
तुमको भी, तुमको भी, आखिर यही होना था ।'[2]

इन पंक्तियों में हर्षवर्धन अतुल वैभव व विलास का प्रतीक है और वाणभट्ट उस वैभव, विलास के द्वारा दिए गए थोथे सम्मान के आकांक्षी व्यक्ति का प्रतीक । कवि ने इस वास्तविकता को उद्घाटित किया है कि कवि या कलाकार निष्कलुष व वीतरागी होता है, किन्तु आधुनिक समाज में वह थोथी प्रशंसा व चंद सिक्कों के लिए अपना आत्म सम्मान बेच देता है ।

साहित्यकार के दायित्व की कसौटी को अक्षुण्ण रखते हुए, पौराणिक कथा प्रतीकों को माध्यम बनाकर कवि ने आज के समाज में व्याप्त कुण्ठा, निराशा, विकृतियों की ऐंठन और टूटन, विषमताओं से उत्पन्न व्यक्तित्व को विघटित करती मनोवृत्तियाँ, असामाजिक स्थितियों के चरम त्रास - द्वंद्व और असन्तुलन को चित्रित कर उसके परिहार - परिष्कार को रूपायित करने की चेष्टा की है । जिसमें प्रतीकों के माध्यम से युग सत्य भी है । कथागायन के द्वारा कही गयी ; अंधायुग की निम्न पंक्तियाँ पौराणिक प्रतीक की अभिव्यक्ति हैं -

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृष्ठ-10
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृष्ठ-50

'उस दिन जो अंधायुग अवतरित हुआ जग पर,
बीतता नहीं, रह रह कर दोहराता है
हर क्षण होती है प्रभु की मृत्यु कहीं न कहीं
हर क्षण अंधियारा गहरा होता जाता है
हम सबके मन में गहरा उतर गया है युग
अंधियारा है, अश्वत्थामा है, संजय है
है दास वृत्ति उन दोनों वृद्ध प्रहरियों की
अन्धा संशय है लज्जाजनक पराजय है ।
मानव भविष्य को हर दम रहे बचाता
अन्धे संशय दासता पराजय से ।'[1]

मनुष्य की गंतव्यहीन स्थिति, निराशाभरी जिन्दगी को व्यक्त करने के लिए ऐतिहासिक पुरुष युधिष्ठिर को प्रतीक रूप में ग्रहण करते हुए आधुनिक मानव की वास्तविकता का चित्रण इन पंक्तियों में सजीव हो उठा है--

'घनी बर्फ पर
इस उबड़-खाबड़ घाटी में
पाण्डवराज युधिष्ठिर के काले कुत्ते-सी
पीछे--पीछे पूँछ दबाये
ओ मेरी परछाँही मेरा साथ छोड़ दे ।'[2]

कवि ने भारतीय संस्कृति की प्रतीक पौराणिक कथाओं को आधुनिक परिवेश की कसौटी पर कसा है और युगानुकूल दिशा बोध का सार्थक प्रयास किया है -

'जिसकी शेष शैय्या पर,
तुम्हारे साथ युगों-युगों तक क्रीड़ा की है
आज उस समुद्र को मैंने स्वप्न में देखा कनु,
लहरो के नीले अवगुण्ठन में
जहाँ सिन्दूरी गुलाब जैसा सूरज खिलता था
वहीं सैकड़ों निष्फल सीपियाँ छटपटा रही हैं
और तुम मौन हो ।'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ- 132   2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ- 80
3. धर्मवीर भारती कनुप्रिया पृष्ठ 73

प्रकृति चिरकाल से मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करती रही है । नयी कविता में भी प्रकृति के अनेक उपादान प्रतीक बन कर आये हैं । नये कवियों ने प्रकृति के मूर्त और अमूर्त दोनो प्रकार के प्रतीक अपनाये है एवं अनेक प्राकृतिक प्रतीकों को नया अर्थ दिया है ।

नयी कविता में प्रकृति के दो प्रकार के प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं । एक तो वे,जो परम्परागत अर्थ वहन करते हैं तथा दूसरे वे प्रतीक जो नया अर्थ लेकर आये हैं । दूसरे प्रकार के प्रतीकों को सौन्दर्य, गुण, भाव व्यंजना के लिये अपनाया गया है । 'भारती' के काव्य में प्रकृति गृहीत प्रतीक ही मिलते हैं । ऐसे प्रतीकों में कवि ने चले आ रहे पारम्परिक अर्थ को ही ध्यान में रखा है । 'भारती' ने भावुकता वश इन प्रतीकों का प्रयोग किया है । ऐसे प्रतीकों का प्रयोग प्रायः प्रिया के रूप सौन्दर्य वर्णन में किया है -

'दो बड़ें मासूम बादल, देवताओं से लगाते दाँव
मेरी गोद में
सोन जुही की पंखुरियों से गुंथे, ये दो मदन के बान
मेरी गोद में ।'[1]

कहीं कवि इन्द्रधनुष के प्रतीक द्वारा प्रेम की रंगीनी का वर्णन करता है तो कहीं बादलों की पांत' के उतरने से उद्दाम वासनात्मक मनःस्थिति को अभिव्यक्ति देता है -

'जैसे अनचिते चुम्बन से
लचक गयी हो अँगड़ाई
डोल रहा साँसो में कोई
इन्द्र धनुष बहका - बहका
बहुत दिनों के बाद खिला बेला
मेरा आँगन महका ।'[2]

प्राकृतिक प्रतीकों के अन्तर्गत कवि ने प्रिया की सौन्दर्य अभिव्यक्ति हेतु पारम्परिक प्रतीकों का प्रयोग किया है । यद्यपि ये प्रतीक पुराने हैं किन्तु भाव सौन्दर्य की दृष्टि से प्रभावित करते हैं -

'कली सा तन, किरन सा मन, शिथिल सतरँगिया आँचल ।'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ -3
2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 16
3. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 22

इसी प्रकार रोमानी दृष्टि के कारण कनुप्रिया में छायावादी शिल्प का स्पर्श स्वाभाविक था । अतः इस कृति में पारम्परिकता के साथ नये प्रतीकों की अभिव्यंजना भी हुई है । प्रकृति के उन्मुक्त विस्तार में मानव मन की भाव तरंगे सहज ही अपने मनचाहे प्रतीक खोज लेती है । 'कनुप्रिया' की राधा द्वारा भी कवि ने उत्कृष्ट प्राकृतिक प्रतीक योजना की है -

'मैंने देखा, अगणित, विक्षुब्ध, विक्रांत लहरें
फेन का शिरस्त्राण पहने
सिवार का कवच धारण किये
निर्जीव मछलियों का धनुष लिये
युद्ध मुद्रा में आतुर हैं ।'[1]

यहाँ लहरें, अस्त व्यस्त भावों की, फेन अस्थिरता का, सिवार पीड़ित हृदय व्यक्ति का, निर्जीव मछलियाँ असहाय स्थिति का एवं चेतना हीन मानव मन का प्रतीक हैं ।

'कनुप्रिया' में कुछ प्राकृतिक प्रतीक बार-बार प्रयुक्त हुए हैं । जो संभवतः कवि को अत्यधिक प्रिय हैं । 'आम्रबौर' 'समुद्र' व 'पगडण्डी' ऐसे ही प्रतीक है । 'इस प्रकार कनुप्रिया में प्राकृतिक प्रतीकों का ही प्रयोग मिलता है । ये प्रतीक सार्थक, सजीव, व्यंजनापूर्ण और बिंबक्षम है तथा राधा की विविध भावाकुल मनःस्थितियों को व्यक्त करने में सफलता पूर्वक सहायक हुए हैं ।'[2]

वैज्ञानिक प्रतीक - आधुनिक युग में विज्ञान के प्रचार प्रसार व उपयोगिता के कारण अनेक वैज्ञानिक उपकरणों को साहित्य में स्थान मिला है । नयी कविता की विस्तृत परिधि के कारण इसमें विज्ञान, गणित, टेक्नालॉजी आदि विषय शामिल हो गये हैं । वैज्ञानिक प्रतीकों के प्रयोग से अभिव्यंजना का क्षेत्र तो विस्तृत हुआ ही है साथ ही विज्ञान जैसा नीरस विषय काव्य सम्पर्क से सरस हो गया है । नयी कविता के कुछ कवियों ने वैज्ञानिक प्रतीकों का प्रयोग किया हे । 'भारती' की कविता में वैज्ञानिक प्रतीको का प्रयोग बहुत कम हुआ है । 'अंधायुग' चूंकि युद्ध की विभीषिका पर लिखा गया है, अतः इसमें एक दो स्थानों पर वैज्ञानिक अविष्कार अणु परमाणु की झलक दिखाई देती है । निम्न पंक्तियों में ब्रह्मास्त्र वैज्ञानिक अविष्कार विध्वंस का प्रतीक बन कर आया है -

---

1. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया', पृष्ठ - 73
2. महावीर सिंह चौहान, 'नयी कविता की प्रबन्ध चेतना', पृष्ठ - 52

मैं हूँ व्यास

ज्ञात क्या तुम्हें हैं परिणाम इस ब्रह्मास्त्र का

'ये दोनों ब्रह्मास्त्र अभी नभ में टकरायेंगे

सूरज बुझ जायेगा -

धरा बंजर हो जायेगी ।'[1]

मानव सभ्यता के विकास में विज्ञान एवं वैज्ञानिक यंत्रों की अहम् भूमिका है । यंत्र किस प्रकार स्वचलित होते हैं व किस प्रकार कार्य करते रहते हैं ? कवि ने निम्न पक्तियों में राधा की स्थिति के द्वारा यह स्पष्ट किया है -

'क्या अब मैं केवल दो यन्त्रों का पुंज मात्र हूँ ?

दो परस्पर विपरीत यंत्र -

उनमें से एक बिना अनुमति नाम लिखता है

दूसरा उसे बिना हिचक मिटा देता है ।'[2]

भारती की कविता मे वैज्ञानिक प्रतीक गिने चुने ही हैं तथा ये वैज्ञानिक प्रतीक की परिभाषा पर खरे नहीं उतरते ।

यौन प्रतीक - आदर्श के भय से जो काम भावनाएँ दबा दी जाती है, वे अतृप्ति बन कर दमित वासना का रूप धारण कर लेती हैं । नयी कविता में अतृप्ति से दमित यौन भावना की अभिव्यक्ति को पर्याप्त प्रश्रय मिला व अवसर भी । इसलिये नयी कविता में यौन प्रतीकों की बहुलता देखी जा सकती है । यद्यपि पौराणिक प्रतीकों की अपेक्षाकृत ये प्रतीक कम हैं, किन्तु अन्य प्रतीकों की तुलना मे ये अधिक ही हैं । नयी कविता के प्रमुख कवि अज्ञेय ने लिखा है कि - आज के युग का साधारण व्यक्ति भी यौन वर्जनाओ का पुज है। उसके जीवन का एक पक्ष है- उसकी सामाजिक रूढि की लम्बी परम्परा, जो परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ साथ विकसित नहीं हुई हैं, और दूसरा पक्ष है- स्थिति परिवर्तन की असाधारण तीव्र गति जिसके साथ का विकास असंभव है । इस विपर्यय का परिणाम यह है कि आज के मानव का मन यौन परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और वे कल्पनाएँ सब दमित व कुंठित हैं । उसकी सौन्दर्य चेतना भी इससे आक्रान्त है । उसके उपमान सब यौन प्रतीकार्थ रखते है ।'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ- 96
2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ- 62
3. अज्ञेय, 'तारसप्तक' (सं.) पृष्ठ - 76

अज्ञेय के इस कथन से यौन परिकल्पनाओं की महत्ता स्पष्ट हो जाती है । भारती की 'कनुप्रिया' व 'ठंडालोहा' की अधिकांश कविताएँ यौन प्रतीकार्थ लिये हुए हैं । 'कनुप्रिया' का सारा आग्रह मॉसल भावनाओं और अतृप्त कुंठाओ पर हैं । 'कनुप्रिया' के यौन प्रतीक सर्वथा नये व अछूते हैं -

'तुम्हारे चन्दन कसाव के बिना
मेरी देहलता के
बड़े-बड़े गुलाब, धीरे-धीरे टीस रहे हैं ।'[1]

यहाँ चन्दन कसवा आलिंगन का प्रतीक है व बड़े-बड़े गुलाब स्तनों के प्रतीक ।

'ठंडालोहा' काव्य संग्रह की प्रारम्भिक कविताएँ यौन प्रतीकों की सुन्दर सृष्टि करती हैं । प्रिया के रूप सौन्दर्य वर्णन, भावनाओं के ज्वार, एवं प्रेम की अभिव्यक्ति में कवि ने यौन प्रतीकों का बहुत संयत प्रयोग किया है । 'मुँह पर ढंका आँचल, 'बादलों की पांत, गर्म होंठो पर सुलगता मूंगिया बादल, आदि प्रतीक श्रृंगार की अभिव्यक्ति करते हैं ।

निष्कर्षतः भारती ने पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग ही अधिक किया है । 'अंधायुग' के नामकरण, पात्रयोजना घटनाक्रम, प्रसंगोद्‌भावना, सभी कुछ प्रतीकात्मक हैं । जो कलाकार की सूक्ष्म अंतर्भेदिनी दृष्टि का परिचायक है । लेखक ने द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका के परिणाम-स्वरूप उद्‌भूत विकलांग एवं बौनी संस्कृति के परिवेश को ही 'अंधायुग' संकल्पित किया हैं । जहाँ प्रजागण, शासक, जीवन मूल्य, मानदण्ड, व्यवस्था, मर्यादा सभी कुछ विकृत हैं । अंधायुग इसी विकृत वातावरण जन्य अस्त व्यस्त परिवेश का प्रतीक है ।'[2]

समकालीन कवियों के समान भारती भी पाश्चात्य कवियों से प्रभावित हैं, किन्तु जीवन से अनास्था, पलायन व अलगाव की अभिव्यक्ति इनके प्रतीकों में नहीं मिलती । भारतीय संस्कृति से गृहीत प्रतीकों की अभिव्यक्ति में कवि अधिक सफल प्रतीत होता है । 'भारती का विश्वास जीवन के स्वस्थ एवं सुरूचि सम्पन्न रूप में है । इसी कारण न तो उनके प्रतीक यौन कुंठाओ के बोधक हैं न दुरूहता व बोझिलता के परिणाम स्वरूप स्पष्ट विचारधारा के ज्ञापक हैं, बल्कि वे सर्वत्र सहज, सांकेतिक, सम्प्रेषणीय और स्पष्ट मनःस्थिति के व्यंजक हैं ।'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया', पृष्ठ - 30
2. ब्रजमोहन शर्मा, 'धर्मवीर भारती कनुप्रिया तथा अन्य कृतियाँ', पृष्ठ - 155
2. ब्रजमोहन शर्मा, 'धर्मवीर भारती: कनुप्रिया तथा अन्य कृतियाँ' पृष्ठ - 116

गीतात्मकता :

गीत मानव मन की चिरन्तन एवं सहजात विधा है । इसके माध्यम से व्यक्ति अपनी कोमल भावनाओं को अभिव्यक्ति देता है । गीत का उद्गार स्वाभाविक है । गीत के माध्यम से भाव काव्य में स्वतः निसृत होता है । इसी से गीतों में भावुकता, मार्मिकता एवं प्रेषणीयता आती है। अतः जब मानव किसी रागमयी कल्पना से उद्वेलित होकर अभिव्यक्ति करता है, तो वह अभिव्यक्ति गीत रूप होती है । प्रायः एक ही भाव अपनी तीव्रता या उद्दामता के कारण गीत रूप में व्यक्त होता है, अतः गीत में संक्षिप्तता एवं एकनिष्ठता पायी जाती है । इस प्रकार गीतात्मकता के निम्न तत्व माने जा सकते हैं -

1. आत्माभिव्यक्ति
2. गेयात्मकता
3. भावाकुलता
4. भावान्विति
5. संक्षिप्तता
6. भावानुकूल भाषा
7. विविधता ।

1. आत्माभिव्यक्ति - यद्यपि 'भारती' स्वस्थ चिंतक हैं, शीर्षस्थ नाटककार हैं अग्रगण्य कथाकार एवं सफल निबन्धकार हैं, लेकिन रोमानी एवं भावुक कवि पहले हैं । 'भारती' का कथाकार आलोचक निबन्धकार व चिंतक कहीं भी उनके कवि व्यक्तित्व से अलग नहीं हो पाया है । भारती, मूलतः सौन्दर्य, प्रेम और यौवन के कवि हैं और उनकी समूची सृजना में प्रसाद की सी रोमानी प्रवृति, निराला की सी स्वच्छन्द आवेग मयता और पंत की सी चित्रयोजना उजागर हुई है ।'[1] कवि की आवेगमयता व रोमानियत 'ठंडालोहा' में अधिक उजागर हुई है व गीतात्मकता के सभी तत्व उनके इस संग्रह में दिखाई देते हैं । 'भारती' के गीतों में हृदय की सीधी पुकार तथा एक जीवनभोक्ता की जिजीविषा है । भावाकुल मन के निर्द्वन्द्व प्रणय से पूर्ण इनके गीत बहुत ही मार्मिक हैं । मिलन, विरह, आकर्षण, समपर्ण, निराशा सभी कुछ इन गीतों में मिलता है । इनके अधिकांश गीतों में रूपासक्ति, एन्द्रियता, आत्म समर्पण, अनन्त कल्पना के दर्शन होते हैं । इनके प्रारम्भिक गीतों में रूपोपासना एवं उद्दाम भावावेग की झलक है । 'ठंडालोहा की अधिकांश रचनाओं में एन्द्रियता, रूपासक्ति और प्रणय भावना का सतरंगी मादक वातावरण परिव्याप्त है, जो कवि की सहज संवेदनशील भावाविष्ट हृदय की उपज है ।'[2]

---

1. वृजमोहन शर्मा, धर्मवीर भारतीः कनुप्रिया तथा अन्य कृतियाँ', (प्राक्कथन)
2. हरिश्चन्द्र वर्मा, 'अंधायुग एक विवेचन', पृष्ठ - 6

'भारती' की कविताओं में उनका व्यक्तित्व स्पष्ट परिलक्षित होता है । वैयक्तिक अनुभूति को कवि ने आत्माभिव्यक्ति के माध्यम से प्रस्तुत किया है । कवि की विभिन्न प्रकार की अनुभूतियाँ स्वतः ही गीतों के रूप में काव्य में निसृत हो उठी हैं । जिन गीतों में कवि ने भाव विभोर होकर अपनी स्थिति को अभिव्यक्ति दी है उन में कवि का व्यक्तित्व उद्भासित हो उठा है । आत्माभिव्यक्ति से सम्पन्न गीतों में रोमानियत एवं चिन्तन शील व्यक्तित्व बड़ी सफलता से व्यक्त हुए हैं । इन गीतों में व्यक्तिगत कुण्ठा, निराशा, वेदना भी अभिव्यंजित हुई है । संयोग के सुखद क्षणों में कवि भाव विभोर खिले हुए बेला के फूलों के माध्यम से अपने उल्लास व उमंग को व्यक्त करता है । उसकी माँसल वासनात्मक अभिव्यक्ति का चित्रण इन पंक्तियों में सजीव हो उठा है -

'आज न बस में विह्वल रस में,
कुछ ऐसा बेकाबू मन
क्या जादू कर गया नया
किस शहज़ादी का भोलापन
किसी फ़रिश्ते ने फिर
मेरे दर पर आज दिया फेरा।
बहुत दिनों के बाद खिला बेला, महका आँगन मेरा ।'[1]

गीत की इन पंक्तियों में कवि के प्रेम, उमंग एवं उसकी बेकाबू मनःस्थिति की अभिव्यक्ति हुई है । संयोग के इन सुखद क्षणों के साथ इनके गीतो में वियोग जन्य कुण्ठा एवं निराशा का भी चित्रण है । 'ठंडालोहा' एवं 'डोले का गीत' कवि की प्रणयजन्य निराशा की मार्मिक अभिव्यक्ति हैं -

'शाम बीते दूर जब भटकी हुई गायें रंभायें
नींद में खो जाये जब,
खामोश डाली आम की
तड़पती पगडंडियों से पूछना मेरा पता
तुमको बताएँगी, कथा मेरी
व्यथा हर शाम की
पर न अपना मन दुखाना, मोह क्या उससे
कि जिसका नेह टूटा, गेह छूटा ।'[2]

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ-17
2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ- 10

उपर्युक्त पंक्तियाँ सहज एवं सपाट हैंकिन्तु इनमें छिपा हुआ विरह का दर्द तो है ही जो कवि की अपनी मनोदशा को अभिव्यक्त कर रहा है -

यथार्थ की अनुभूति होने पर 'भारती' के रोमानी गीतों में चिन्तन का आभास होने लगता है । 'सात गीत वर्ष' काव्य संग्रह की कविताएँ यथार्थ की भावभूमि पर आधारित हैं । अतः इन गीतों में श्रृंगार की माँसलता स्वस्थ मानसिक रिश्ते में परिवर्तित हो गयी है । यहाँ कवि प्रेम के स्वर्णिम क्षणों में चिन्तनशील बन गया है -

'आखिर आयेगा वह दिन
जिस दिन होठों पर यद्यपि होंगे होंठ
पर खाई होगी हम दोनों के बीच
जिस दिन बाहों में यद्यपि होगी बाँह
पर सब रस सहसा कोई लेगा खींच ।'[1]

2. गेयात्मकता - गीत का अनिवार्य तत्व गेयात्मकता है । यह आवश्यक नहीं कि उसमें शास्त्रीय संगीत की सैद्धांतिकता का आग्रह हो । हृदय के तारों की स्वाभाविक झंकृति ही ऐसा स्वर विधान करती है कि वह स्वतः ही गेय हो जाता है । काव्य में भाव-व्यंजना के लिये शब्द साधना अपेक्षित है, किन्तु गीति काव्य में शब्द के साथ-साथ स्वर साधना भी अनिवार्य है । इसमें स्वर के आरोह-अवरोह के द्वारा भावानुभूति करायी जाती है । भारती के गीतों में काव्य का अर्थ-गाम्भीर्य और संगीत का स्वर-माधुर्य संतुलित रूप से समन्वित है । एक ओर जहाँ संगीत का तरल प्रवाह है वहीं दूसरी ओर भावना के तीव्र आवेग के कारण उनके गीतों में साहित्यिक सौष्ठव भी सजीव हो उठा है । भावना की अतिशयता के कारण इनके गीत स्वतः ही गेयात्मक बन गये हैं । किन्तु जहाँ रोमानी भावना का प्रभाव है वहा गेयात्मकता की सुन्दर सृष्टि हुई है ।

'मुंदती पलकों की कोरों पर, जल बूंदो का शोर
मन में उठती गुपचुप, पुरवैया की मृदुल हिलोर
कि स्मृतियाँ होती चकनाचूर
हृदय से टकरा कर भरपूर
उमड़ -घुमड़ कर घिर -घिर आता है बरसाती प्यार
उन्मन मन पर एक अजब सा अलस उदासी भार ।'[2]

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृ0-17 2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृ0 - 9

लोक प्रचलित सरल शब्दों के द्वारा कवि ने आरोह - अवरोह का ध्यान रखकर भावनाओं की अभिव्यक्ति इस गीत में की है । अन्तिम ' र ' अक्षर गीत में मधुरता व संगीतात्मकता का संचार कर रहा है ।

गंगाजमुनी वय वाली मुग्धा नायिका, जो केवल सोलह मधुमास ही देख सकी है, उसके रूप सौन्दर्य को कवि ने गीत शैली में बड़ी कुशलता से सँवारा है -

'अभी बहकना सीख न पायी है केसर की साँस ।
अभी धड़क पाये हैं दिल में बस सोलह मधु मास ।
अभी आँख में शाम बसी है,
अंग-अंग में शैशव सपनों की टूटन सुकुमार ।
अभी करो मत तुम रतनारी किरनों से श्रृंगार ।'[1]

'सात गीत वर्ष' की कविताएँ यद्यपि यथार्थ की भाव-भूमि पर आधारित हैं, किन्तु कहीं-कहीं भावुकता चिन्तन से आगे निकल गयी है । इस प्रकार की कविताएँ गेयात्मक बन गयी हैं । इन कविताओं में कवि प्राकृतिक परिवेश से अधिक प्रभावित है -

'नीलम पर किरनों की साँझी
एक न डोरी एक न माँझी
फिर भी लाद निरन्तर लाती
सेन्दुर और प्रवाल ।'[2]

3. **भावाकुलता** - गीत तीव्र भावावेग की स्वाभाविक परिणति है । भावना का अविरल प्रवाह ही गीत में अपेक्षित होता है । 'जब कभी आत्मा भाव की अग्नि में पिघल कर बहने को हुई है, उसके ताप से वाणी भी द्रवीभूत हो गयी है और भाव ने गीत का रूप धारण कर लिया है । अतएव जब-जब हमारे जीवन में भावना का प्राधान्य हुआ है, जब-जब हमारा जीवन दर्शन व्यक्ति परक अथवा भाव-परक हुआ है, काव्य में गीत का महत्व बढ़ गया है ।'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 24
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 61
3. नगेन्द्र, 'आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ' पृष्ठ - 74-75

भारती के काव्य में हमें इसी भावुक स्थिति के दर्शन होते हैं । 'ठंडालोहा' की तो कुछ लम्बी कविताओं को छोड़ कर शेष में इन्हें भावुक गीतकार के रूप में देखा जा सकता है । इन गीतों में मिलन की प्रबल इच्छा, उत्कंठा है और प्रिया से एकाकार होने की भावना भी । कवि के इन गीतों में भावों की तीव्रता एवं दर्द की गहनता है । प्रेम की अभिव्यक्ति में कवि ने अपनी उत्कट भावुकता एवं अभिलाषा को अभिव्यक्ति दी है । यहाँ भावात्मकता के कारण नवीन उपमाएँ एवं बिम्ब बनते गये हैं ।

'भौंहों में इन्द्रधनुष उज्जवल
अलसित पलकों की छाया में
धनघोर घटा बिजली बादल
नजरों में ताजे फूल खिले
गति में शत झंझावात चले

पलकों में हँसते दिवस चले, अलकों में उलझी रात
तुम चलीं प्राण जैसे धरती पर लहराये बरसात ।'[1]

'भारती' भावुक कवि हैं, अतः प्रणयानुभूति सम्बन्धी सभी कविताओं में उद्दाम प्रेम वर्णन व विरह की चरम स्थिति दोनो ही प्रकार के गीतों में भावाकुलता परिलक्षित होती है । नारी सौन्दर्य एवं प्रेमिका रूप वर्णन में कवि अत्यधिक भावुक हो गया है । उसकी अतिशय भावुकता ही इन गीतों में निःसृत हुई है । विरह के क्षणों में प्रेमिका की पाती और प्रेमी के मन की भावुकता इस प्रकार की पंक्तियों में अभिव्यक्त हुई है -

'तुम्हारी पाती मिली अबोध, तुम्हारी पाती मिली अजान,
तुम्हारी पाती मिली अजान कि जैसे मृदु नवजीवन दान ।
कि जैसे पानी की दो बूँद, धधकता भीषण रेगिस्तान,
कि जैसे घिरी घटा के बीच, चपल बिजली की मृदु मुस्कान ।'[2]

4. **भावान्विति** - गीत भाव की आवेगपूर्ण स्थिति का परिणाम है । उसमें मंथरता नहीं, उत्तेजना होती है । अतएव गीत में भाव अपनी पूर्ण मार्मिकता के साथ अभिव्यक्ति पाता है । प्रायः मूल भाव प्रथम पंक्ति में केन्द्रित होता है तथा शेष गीत में उसी का उल्लवन होता है । भाव की एक निष्ठता, केन्द्रीयता और संकुचित सीमा उसे तीर की भाँति तीखा बना देती है ।

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 30 2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 35

'भारती' के गीतों में भावुकता के कारण लय में उत्तेजना अधिक है, मंथरता नहीं । अतः भारती के गीत भावान्विति की कसौटी पर खरे उतरते हैं । प्रेम, विरह, सौन्दर्य वर्णन में कवि एक के बाद एक भावों की अभिव्यक्ति करता चलता है, वह भी बहुत तीव्रता एवं उत्सुकता से । भावनाओं के साथ ही शब्दों का अर्थ व लय का क्रम भी विशृंखलित नहीं होता, अपितु तेजी से सगुंफित होकर बढ़ता जाता है । लय में शिथिलता भी नहीं आने पाती, क्योंकि शब्द योजना इतनी सशक्त व उपयुक्त है कि गीत का सौन्दर्य बढ़ता ही जाता है व संयोजन भी सुगठित प्रतीत होता है ।

'ठंडालोहा' के प्रायः सभी गीतों में भावों का अविरल प्रवाह है । नायिका के सौन्दर्य वर्णन का यह गीत 'तुम कितनी सुन्दर लगती हो' से प्रारम्भ किया गया है । सम्पूर्ण गीत में इस एक पंक्ति के भाव को अनेक उपमानों, बिम्बों व प्रतीकों के माध्यम से सुन्दर शब्दों में पिरोकर प्रस्तुत किया गया है -

'तुम कितनी सुन्दर लगती हो
जब तुम हो जाती हो उदास !
मुँह पर ढ़ँक लेती हो आँचल
ज्यों डूब रहे रवि पर बादल
या दिन भर उड़ कर थकी किरन
सो जाती हो पाँखें समेट, आँचल में अलस उदासी बन
दो भूले भटके सान्ध्य विहग, पुतली में कर लेते निवास
तुम कितनी सुन्दर लगती हो
जब तुम हो जाती हो उदास ।'[1]

इसके अतिरिक्त, 'तुम्हारे चरण[2], प्रार्थना की कड़ी[3], बांदलों की पांत[4], में वेदना, उदासी, आशा, एवं उत्साह का पूर्ण रूपेण पल्लवन हुआ है ।

5. **संक्षिप्तता** - भावान्विति प्रभाव की तीव्रता तथा गेयता के लिए गीत की संक्षिप्तता वांछनीय है । संक्षिप्तता से गीतों में निहित अनुभूति अखण्ड एवं प्रभावपूर्ण बनती है । वह श्रोता या पाठक के हृदय पर त्वरित तथा सीधा प्रभाव डालती है । इस दृष्टि से भारती के गीतों में संक्षिप्तता का अभाव है । इनके

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 7
2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ- 3
3. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 5
4. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 14

कुछ ही गीत सँक्षिप्त है । इनके गीतों में विस्तार का कारण है - भावुकता । फिर भी 'भारती' के गीत पाठक या श्रोता के हृदय को प्रभावित करने में पूर्णतः सफल हैं । इनके इस प्रकार के गीतों में जागृति, सन्देश व किसी विशेष प्रकार के प्रसंग को उठाया गया है । प्रेमिका के रूप सौन्दर्य से पूर्ण निम्न गीत संक्षिप्त तो है किन्तु पारम्पारिक शैली में लिखा गया है -

> तुम जगीं सुबह या जगा तुम्हारी पलकों बीच विहान ।
> पुलकित पलकों की प्रिय पाँखुरियों पर
> लो सहसा ढ़ल गयी शबनमी नज़र
> अंगड़ाई ली बह चले पवन
> गूँजे भंवरों के गान ।'[1]

'भारती' के कुछ ही गीतों - 'जागरण', पावसगीत' 'बोबाई के गीत' आदि में सँक्षिप्तता है, किन्तु ये पूर्णतः सँक्षिप्त नहीं कहे जा सकते, इन गीतों में भावों का सौन्दर्य इतना अधिक है कि इनका विस्तार असहनीय नहीं लगता -

> 'गोरी-गोरी सौंधी धरती, कारे - कारे बीज
> बदरा पानी दे ।
> क्यारी-क्यारी गूँज उठा संगीत
> बोने बालों नयी फसल में बोओगे क्या चीज ?
> बदरा पानी दे ।'[2]

6. **भावानुकूल भाषा** - गीत का सम्बन्ध स्वर साधना से होने के कारण भाषा में भावानुकूलता अपेक्षित है । भावानुकूल भाषा का प्रयोग ही भारती का वास्तविक मन्तव्य रहा है । परिवेश व परिस्थिति के अनुकूल शब्द चयन कर कवि ने भावों को मार्मिक बनाया है । प्रेम, विरह, आशा, निराशा के अनुकूल भाषा में गीत लिख कर कवि ने लय को अधिक प्रभावोत्पादक बनाया है । अपने गीतों में भारती ने अधिकांश स्थलों पर तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है । तद्भव शब्द योजना के कारण इनके गीतों की भाषा मधु, तरल, स्वाभाविक, प्रवाहमयी एव लयानुकूल हो गयी है । वैसे तो कवि के सभी गीत भावानुकूल भाषा की कसौटी पर खरे उतरते हैं, किन्तु कुछ गीत तो अत्यधिक सुन्दर व प्रभावशाली बन पड़े हैं । नायिका का नायक के पास मिलने आना

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 29 2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 34

और सीमित समय में ही अपनी सारी दिनचर्या, दुख, कष्ट, समस्याएँ बताना स्वाभाविक है । जो सीधी, सरल स्वाभाविक भाषा में कुछ इस प्रकार है -

'आज खा गया- बछड़ा माँ की रामायन की पोथी ।
अच्छा अब जाने दो मुझको घर में कितना काम है ।
इस सीढ़ी पर, यहीं जहाँ पर लगी हुई है काई
फिसल पड़ी थी मैं, फिर बाहों में कितना शरमाई ।'[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में भावों की गति के अनुकूल शब्द योजना की गयी है । सरल लोक प्रचलित शब्दों के प्रयोग से गीत में कोमलता व गेयात्मकता और बढ़ गयी है । जब कभी उल्लास, प्रेम, भावुकता व रोमानी भावनाओं में कवि गीत सृजन करता है तो भाषा में सहज प्रवाह मयता, तीव्रता एवं कोमलता आ जाती है । उदासी निराशा व वेदना के गीतों में भाषा प्रायः शिथिल एवं संयमित हो गयी है और शब्द प्रयोग भी बहुत सोच समझ कर किये गए हैं ।

'तुम्हारी चोट कि उल्कापात, सर्द है हृदय सर्द अरमान
जम गये है आँखो में अश्रु, जम गये हैं होठों पर गान
सहम कर दर्द हुआ बेहोश, अचेतन, नीरव आकुल प्राण
रहो तुम आँसू से संतुष्ट, करो तुम पीड़ा पर विश्वास ।'[2]

'भारती' के कुछ गीतों में जहाँ छायावादी प्रभाव है, वहाँ रोमानियत भावुकता व निराशा परिलक्षित होती है; किन्तु नयी कविता से प्रभावित गीतों में चिन्तन प्रमुख है । ऐसे गीत बौद्धिकता से आक्रान्त हैं । अतः भाषा कोमल, सहज होने की अपेक्षा गम्भीर हो गयी है व शब्द योजना तत्सम रूप में है ।

'ऐसे किसी अनागत पथ का
'पावन माध्यम भर है
मेरी आकुल प्रतिभा
अर्पित रसना
गैरिक वसना
मेरी वाणी ।'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 12 2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ -35
3. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 28

'भारती' ने गीतों मे सर्वत्र भावानुकूल भाषा का ही प्रयोग किया है । रागात्मक उदासी में लिखे गये इनके गीत भावानुकूल भाषा के कारण ही प्रभावित करते हैं । प्रेम व प्रिया रूप वर्णन के गीतों में कवि में अपनी अतिशय भावुकता को अभिव्यक्ति देने के लिए शब्दों को तोड़ा मरोड़ा भी है, किन्तु इस प्रकार के शब्द प्रयोग से गीतों का सौन्दर्य खण्डित नहीं हुआ है; बल्कि बढ़ा है । ऐसे गीतों मे कवि ने कुछ मौलिक विशेषणों का प्रयोग भी किया है । नये उपमान बिम्बों से रचित ये गीत पाठक को भाव विभोर कर देते हैं ।

भारती के गीतों में वैयक्तिक अनुभूतियाँ अधिक हैं । कवि ने अपने गीतों में प्रेम, निराशा, विरह, वासना हर एक स्थिति को ईमानदारी से एवं खुले दिल से स्वीकार किया है । सहज आत्मीय शैली में लिखे गये इनके गीत भावों को सीधे हृदय में उतार देते हैं ।

भाषा एवं शब्द योजना :

भाषा अभिव्यक्ति का सर्वाधिक सशक्त माध्यम है । इसके द्वारा मनुष्य अपने सुख-दुख, राग-विराग आदि को सहज ढंग से अभिव्यक्ति देता है । समय के साथ काव्य भाषा के स्वरूप में भी परिवर्तन होता है, क्योंकि पुरानी भाषा में थकान आ जाने के कारण वह नये भाव बोध के साथ नहीं चल पाती । इसलिए नयी कविता की भाषा ने भी अपना रूप बदला है । छायावाद से नयी कविता तक भाषा ने जो करवटें बदलीं, वे रूचि और प्रतिक्रिया का ही प्रतिफल है । यद्यपि छायावाद की भाषा भी खड़ी बोली थी, किन्तु उसमें प्रेम व सौन्दर्य के अतिरिक्त अन्य भावों को वहन करने की पूर्ण क्षमता न थी । नयी कविता में काव्य भाषा को सीधा व सरल बनाने का प्रयत्न किया गया । "छायावादोत्तर गीतकारों - बच्चन, अंचल आदि ने खड़ी बोली को बोलचाल के रूप में प्रस्तुत किया, जिससे वह तत्सम शब्दों के बोझ से मुक्त होकर हल्की हो गयी । प्रगतिवादी ने उसे गेयता के रोमांटिक वातावरण से निकाल कर सड़कों व पगडंडियों पर चलने को मजबूर किया, जिससे उसमें खुलापन आ गया और उसने निकटवर्ती लोक भाषाओं के शब्द समूह से निसंकोच अपना क्रोड़ भरना आरम्भ कर दिया । नयी कविता ने अंग्रेज़ी प्रभाव से शब्द प्रयोग की विविध चेष्टाओं द्वारा अपनी अर्थवत्ता को संवर्धित किया और भाषा की शक्ति के विकास की नयी दिशाओं का संकेत दिया । इतना ही नहीं उत्तराधिकार में प्राप्त सभी प्रभावों के प्रति सजगता व्यक्त करते हुए उसने शब्दार्थ की आन्तरिक अन्विति पर आधारित एक ऐसा सौन्दर्यबोध विकसित किया, जिसमें खड़ी बोली का खड़ापन बाधक न होकर साधन तत्व बन गया ।"[1]

नयी कविता में भाषा के पुनर्निर्माण की विशेष रूचि दिखाई देती है । भाषा के क्षेत्र में नयी कविता ने युगान्तकारी परिवर्तन किया है । आधुनिक भाव-बोध तथा युगीन परिवेश की परिवर्तनशीलता के कारण काव्य

जगदीश गुप्त, 'नयी कविता', अंक 5, 6 पृष्ठ - 12

की विषय वस्तु में परिवर्तन हुआ है । काव्य की इस नवीन विषय वस्तु के संप्रेषण के लिए नये कवियों ने न केवल नयी भाषा की खोज आरम्भ की अथवा नए शब्दों के निर्माण का संकल्प किया, वरन् पुराने शब्दों का नया संस्कार करने, उनमें प्रचलित अर्थों से अधिक नया अर्थ भरने और इस प्रकार उनमें ताजगी लाने की ओर भी प्रवृत हुए ।'[1] यही कारण है कि नयी कविता की भाषा जन-भाषा के पार्श्व में जा खड़ी हुई । नयी कविता के प्रमुख कवियो - अज्ञेय, मुक्तिबोध, भवानी प्रसाद मिश्र, गिरिजा कुमार माथुर आदि के समान ही 'भारती' ने भाषा को बोलचाल की पीठिका पर खड़ा करके काव्यमय रूप दिया । भारती जानते हैं कि केवल बोलचाल की भाषा ही काव्य भाषा नहीं होती, बल्कि उसमें भावना के रंगो का पुट देना जरूरी होता है । भारती के संपादकत्व में प्रकाशित 'निकष' की निम्न पंक्तियाँ भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति की ईमानदारी की बात कहती हैं -

'प्रभु । मुझे वर दो
क्षण-क्षण पतंगो से लुटे हुए अनुभवों के प्रति
ईमानदार बन सकूँ
ईमानदार रह सकूँ ।'[2]

शायद इसीलिये 'भारती' काव्य भाषा के संदर्भ में भावानुगामी होने के समर्थक हैं । भाषागत कृत्रिमता उन्हें स्वीकार नहीं है । उनका मत है कि भाषा भाव की पूर्ण अनुगामिनी रहनी चाहिये बस । न तो वह पत्थर का ढ़ोंका बन कर कविता के गले में लटक जाये और न रेशम का जाल बन कर उसकी पॉखो में उलझ जाये ।'[3] 'भारती' की काव्य भाषा में प्रतिबद्धता तनिक मात्रा में भी दृष्टिगत नहीं होती । 'भारती' भाषा के व्यवहारिक रूप के सम्बन्ध में अज्ञेय की वैचारिक सारणी के अनुसर्ता हैं । उन्होंने कविता के माध्यम से आज की पिसती, कराहती एवं बिलबिलाती हुई जिन्दगी का सुन्दरतम अर्थ खोजा है और कविता को मानवीय धरातल पर उतार कर छाया, विश्वास व आस्था का संकल्प लिया है ।

भारती ने जीवन को एक साधक की भांति भोगा है । यही कारण है कि इनकी कविता में मानवता की मुक्ति का आलोक निहित है । उन्होंने मानव मूल्यों के प्रति सजग दायित्व निर्वाह में ही कविता की विशिष्टतम उपलब्धि स्वीकारी है । मर्यादित सत्य की प्रतिष्ठापना और वह भी अनुभूति की ईमानदारी के साथ ।

---

1. शिवकुमार मिश्र, 'नया हिन्दी काव्य', पृष्ठ - 356
2. धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकात वर्मा, 'निकष' जनवरी - 1967 पृ0 - 5
3. स. हि.वात्स्यायन अज्ञेय, 'दूसरा सप्तक' (स.) पृ0 - 167

अनुभूति की ईमानदार अभिव्यक्ति के लिये 'भारती' ने भावानुकुल भाषा का आश्रय लिया है । 'ठंडालोहा', 'अंधायुग', 'सात गीत वर्ष, और 'कनुप्रिया' में भाषा के भिन्न-भिन्न रूप दृष्टव्य हैं । कहीं उर्दू शैली का प्रभाव है तो कहीं लोक प्रचलित भाषा में रचे लोक गीतों व जन जीवन के शब्द । कहीं दुख, निराशा, संत्रास है तो कहीं व्यवस्थित शब्द संयोजन में अव्यवस्था का चित्रण । कवि ने प्रसंगानुसार शब्दों का चयन किया है और बिना झिझक भाषा के नव संस्कारित रूप का प्रयोग किया है । प्रकृति से अत्यधिक भावुक होने के कारण भाव प्रवणता उनकी रचनाओं में अनेक स्थलों पर देखी जा सकती है -

'और उदास, मौन, तुम आम्रवृक्ष की जड़ों से
टिक कर बैठ गये थे
और बैठे रहे, बैठे रहे, बैठे रहे
मैं नहीं आई, नहीं आई, नहीं आई ।'[1]

अथवा

'हाय मै सच कहती हूं
मैं इसे समझी नहीं, नहीं समझी, बिल्कुल नहीं समझी ।'[2]

पाठक के मन पर भाव, मनः स्थिति अथवा परिवेश सम्बन्धी छाप को गहरी करने के लिए इसी प्रकार की पुनरावृत्तियाँ अन्य स्थानों पर भी देखी जा सकती हैं । 'कनुप्रिया' में यह पुनरावृत्तियाँ जहाँ राधा की भावाकुल तन्मयता की द्योतक हैं वहीं 'अंधायुग' में वातावरण में छाये विषाद व भय को अभिव्यक्ति देती हैं -

'रक्षा करो
अपनी अब तुम अर्जुन
अपनी अब तुम अर्जुन ।'[3]

अथवा

किससे कहते हो
अश्वत्थामा, किससे कहते हो
महाराज नहीं रहे ।'[4]

---

1. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 23
2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 31
3. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ- 93
4. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 87

भाषा के माध्यम से भावों को पाठक तक पहुंचाने की 'भारती' की सामर्थ्य सराहनीय है । घुटन, उदासी से पीड़ित नायिका की भावनाएँ इन शब्दों में उसकी मन: स्थिति को साकार करती हैं -

'मैं साँस लेती हूँ जैसे-
टूटे फूटे बरबाद मकबरे की
नीवों में दबी हुई । अभिशाप ग्रस्त प्रेतात्माएँ
निश्वासें भरती हैं । अक्सर सन्नाटे में ।'[1]

भारती ने अनेक स्थलों पर समानार्थक शब्दों को दोहराया है । इससे भाषा में प्राणवत्ता, अर्थवत्ता एवं संप्रेषणीयता की वृद्धि हो गयी है -

'समुद्र में बहता हुआ, बड़ा सा, ताजा क्वाँरा,
मुलायम, गुलाबी वट-पत्र बन गया है ।'[2]

अथवा

वंचक था, कायर था, शक्तिहीन था वह
बचा नहीं पाया परीक्षित को या मुझको ।'[3]

भारती ने काव्य में साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग कर भाषा को और अधिक सुन्दर व सक्षम बना दिया है । इस दृष्टि से इनकी कविता अपनी अलग विशेषता लिये हुए है । कवि ने इस प्रसंग में पर्याप्त मौलिकता, जागरूकता तथा औचित्य का ध्यान रखा है ।

भारती ने इस तरह के प्रयोगों द्वारा कहीं परिवेश को उभारा है, कहीं जन समाज में प्रचलित आस्थाओं एवं मूल्यों को साकार किया है और कहीं भयावहता को स्पष्ट अभिव्यक्ति दी है । 'अंधायुग' में इस प्रकार का शब्द संयोजन जहाँ विषाद, संत्रास, कुंठा, व समस्याओं को साकार करता है, वहीं 'कनुप्रिया' में मधुर भावनाओं की अभिव्यक्ति ।

'अंधायुग में 'अंधी-आशा, उद्धत अनास्था, मरणासन्न ईश्वर, अन्धी संस्कृति, अन्धा पशु, भय का अन्धापन आदि विशेषण बार-बार आये हैं, जो वातावरण निर्माण के साथ ही परिस्थितियों को समझने में सहायता करते हैं ।

---

1. धर्मवीर भारती,'ठंडालोहा' पृ0-39 2. धर्मवीर भारती,'कनुप्रिया' पृ0-74 3. धर्मवीर भारती,'अंधायुग' पृ0-126

सम्बोधन पद्धति भारती की नितांत मौलिक उद्‌भावना है । महान व्यक्तित्व एवं उनके प्रति राधा के प्रगाढ़ स्नेह के प्रदर्शन में सम्बोधन बड़े सटीक हैं । ये सम्बोधन संक्षिप्त भी हैं व पूरी की पूरी पंक्तियों में भी -

'मेरे साँवरे,
मेरे प्राण
मेरे स्वर्णिम संगीत
मेरे साँवले समुद्र ।'[1]

शब्दावली को सशक्त बनाने के लिए 'भारती' ने प्रमुख रूप से लक्षणा शक्ति तथा वक्रोक्ति के **विविध प्रयोगों को विशेष स्थान दिया है**, किन्तु अंधायुग की कथा गायन प्रसंग प्रायः अभिधा के प्रयोगों से पूर्ण हैं। कथा खण्डों की पृष्ठ भूमि, प्रसंग विशेष के सम्पूर्ण दृश्यों का अंकन तथा विवरण रूप में प्रस्तुतीकरण करते समय भी अभिधा का ही प्रयोग मिलता है ।

'कनुप्रिया' में आये कुछ एक लाक्षणिक प्रयोग मुहावरों के रूप में भी आये हैं । मुहावरे भाषा को समृद्ध बनाते हैं तथा उसके साथ ही अर्थ को भी धनीभूत कर देते हैं । मुहावरों की लाक्षणिकता तो अभिव्यंजना को और भी सशक्त बना देती है । 'कनुप्रिया' की भावुकता में ये लाक्षणिक प्रयोग बहुत उपयुक्त प्रतीत होते हैं - जैसे -

'धूल में मिली हूँ,
धरती में गहरे उतर
तुम्हारे ही रेशे - रेशे में सोयी हुई
तुम्हारी नस नस में पंख पसार कर उड़ूँगी ।'[2]

कवि ने रचनाओ में अर्थ गाम्भीर्य के उत्कर्ष की सृष्टि हेतु भाषा को लाक्षणिकता द्वारा सप्राण बनाया है -

'गांधारी पत्थर थी,
उसके श्री हत मुख पर
जीवित मानव सा कोई चिह्न न था ।'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 13
2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 11
3. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 47

इसी प्रकार निम्न पंक्तियों में लाक्षणिक प्रयोग दृष्टव्य है -

'हाय मुझी पर पग धर मेरी बाहों से,
इतिहास तुम्हें ले गया ।'[1]

प्रेमी द्वारा वियोग बेला में कही गयी निम्न पंक्तियाँ भी लक्षणा की सृष्टि करती हैं -

तड़पती पगडंडियो से पूछना मेरा पता ।'[2]

इसी प्रकार -

एक बार जब उनके हाथों में भाले थे,
घोड़ो की टापो से खैबर की चट्टाने काँपी थी ।'[3]

भारती के काव्य में शब्दों का आडम्बर नहीं, मर्म को छूने की क्षमता है । अतः इनका प्रत्येक शब्द एक चित्र निर्मित करता है । मार्मिकता, सरसता और अभिव्यक्ति की सहजता तथा स्पष्टता इनकी भाषा का विशेष गुण है । किसी विशेष भाव, घटना आदि की अभिव्यक्ति में कवि शब्द संयोजन द्वारा चित्र निर्माण करता चला है । अनुभावों के चित्रण में भाषा की बिम्बधर्मिता बरबस ही ध्यान आकृष्ट कर लेती है -

'नीले कमल सा चैत का नशीला दिन ।'[4]

'जार्जेटके पीले पल्लेसी नबम्बर की दोपहर ।'[5]

उपर्युक्त पंक्तियाँ जहाँ चैत के अलसाये दिन व नबम्बर की गुनगुनी धूप का चित्र स्पष्ट करती हैं वहीं निम्न पंक्तियों में वीभत्सता चित्रित है -

'आँखों के कोटर से,
दोनों साबित गोले
कच्चे आमों की गुठली जैसे,
उछल गये ।'[6]

---

1. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ- 60
2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 10
3. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ-47
4. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ- 74
5. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ- 13
6. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ - 79

इसी प्रकार भयावह वातावरण में भाषा -

'झुक जाओ,

झुक जाओ

ढालो के नीचे

छिप जाओ

लो ये मुड़ गये

कुरूक्षेत्र की दिशा में ।'[1]

भारती ने कई स्थानों पर मनोकूल दृश्य निर्मित करने के लिये ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जिससे नाद सौन्दर्य की सृजना हो गयी है -

'सब विजयी थे लेकिन थे विश्वास ध्वस्त,

थे सूत्रधार खुद कृष्ण किन्तु थे शापग्रस्त ।'[2]

इसी प्रकार 'कनुप्रिया' की निम्न पंक्तियाँ भी इसी विशेषता की ओर संकेत करती है -

'मैं तुम्हारी नस--नस में पंख पसार कर उड़ूँगी

और तुम्हारी डाल-डाल में गुच्छे गुच्छे, लाल - लाल

कलियाँ बन खिलूँगी ।'[3]

ध्वनि या व्यंजना तो 'भारती' के काव्य का प्राण है । अंधायुग में कवि ने इसका सफल प्रयोग किया है । निम्न पंक्तियों में युग पुरूष कृष्ण के सन्देश तथा युग पुरूष की पूजा का प्रकार एवं उनके दिव्य आदर्श की व्यंजना दृष्टव्य है -

'बोले अवसान के क्षण में प्रभु ....

......जीवित और सक्रिय हो उठूँगा मैं बार-बार ।'[4]

भारती की काव्य भाषा में ओज और माधुर्य गुण अधिक है । इनकी रचनाओं में शास्त्रीय दृष्टि से इन गुणों की स्थिति खोजना उचित नहीं है, क्योंकि भाषा में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर इन्होंने प्रेषणीयता की ओर अधिक ध्यान दिया है ।

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ- 16
2. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 105
3. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 11
4. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 127

भारती ने प्रसंगानुसार शब्दों का चयन किया है । इन्हें किसी भी भाषा के शब्द से परहेज नहीं है बशर्ते वह अर्थ एवं संवेदन की दृष्टि से उचित हो । इस दृष्टि से भारती के काव्य में तत्सम, तद्भव, विदेशी व नवनिर्मित शब्द मिलते हैं ।

भावानुकूल शब्द प्रयोग ही 'भारती' का वास्तविक मंतव्य रहा है । जहाँ किसी विशेष परिवेश की व्यंजना में आम बोलचाल के शब्द अनुपयुक्त लगे, वहाँ इन्होंने संस्कृत अथवा तत्सम शब्दों का निसंकोच प्रयोग किया है । किन्तु ये शब्द क्लिष्ट न होकर सरल हैं ।

निम्न पंक्तियाँ 'भारती' की तत्सम शब्द योजना को स्पष्ट करती हैं -

'यह जो मैं कभी-कभी चरम साक्षात्कार के क्षणों में
बिल्कुल जड़ और निस्पन्द हो जाती हूँ ।'[1]

'कनु मेरा लक्ष्य है, मेरा आराध्य, मेरा गंतव्य ।'[2]

कितनी बार जब तुमने अर्धोन्मीलित कमल भेजा ।'[3]

संस्कृत शब्दो के अतिरिक्त कहीं-कहीं संस्कृत सूक्तियों का प्रयोग भी किया गया है -

ततश्चार्थ एवाभिजन हेतु;[4]

जटाकटाह सम्भ्रम भ्रमन्निलिम्प निर्झरी समा ।'[5]

इसके अतिरिक्त - वत्स, मातुल, अडिग, प्रस्फुटन, असि, किरीट, निश्चल, आवर्त, अलंघ्य, अंतराल, जीर्णवसन, अंतःपुर, आश्लेष, दंशन, अग्निवर्णी, निर्वसना, श्रृंगार, पुनरावृत्तियाँ, अनावृत, विचुम्बित, चन्दनवासित, निभृत, प्रत्यंचा, वितान, कालावधिहीन, स्वर्णिम, जावक, वीतराग, ब्रह्माण्ड, ऋतु, अभिमंत्रित, कटाक्ष, सूर्यास्त, उत्ताल, आम्रवृक्ष आदि शब्दों का प्रयोग भी भारती ने प्रचुर मात्रा में किया है, किन्तु इन तत्सम शब्दों से काव्य में क्लिष्टता नहीं आने पायी है ।

भाषा में कोमलता एवं सार्थकता लाने के उद्देश्य से कवि ने तद्भव शब्दों को यथोचित प्रयोग किया है । कुछ शब्दों को तो प्रयोग करने के पूर्व कवि ने तराशा एवं सँवारा है, फिर उन्हें प्रयुक्त किया है । समुन्दर,

---

1. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ- 21
2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 34
3. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ- 26
4. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 12
5. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ - 80

उनमन, सिंगार, अनमनी, सांवली, अंजुरी, कनु, आँचल, फागुन, माँग, सूरज, मृगछौना, चन्दा, उजियारा, सुहागन, सलौना, रतनारे, कसौटी, सपने, धुआँ, वन्दनवार, गेरू, सावन, रात, साँझ, पाती, फूल, चाँदनी आदि । इसी प्रकार के शब्द हैं -

भारती ने कुछ शब्दों को तराश कर इस प्रकार भी प्रस्तुत किया है -

मैंने कितनी बार इन सब को रीतता हुआ पाया है ।'

'तुमने मुझे संझा बिरिया बुलाया है ।'

तुम्हारी बावरी मित्र' आदि ।

भावनाओं की सुन्दर, मार्मिक अभिव्यक्ति के लिए कवि ने लोकगीतों की शैली के साथ ही लोक भाषा के शब्दों का प्रयोग भी किया है । किन्तु ये सप्रयास प्रयोग किये नहीं प्रतीत होते, बल्कि स्वाभाविक और सहज लगते हैं ।

डलिया, अरसौंही, निगोड़ी, चौपाल, गहना-गुरिया, दीठ, अंबवा, डगरिया, मरजाद, काजर, संझा, हिंडोर, सपन, धाम, दरद, बिसर, पीर. काम-काज, केस, टोना, बेला, लाज, छिन, पुरवाई, सैन, चुनरिया, उजले, धौरी, वास्ते, नेह, विजुरी, चहुँओर, रसीली, गौरेया, चम्पई आदि इसी प्रकार के शब्द हैं ।

नयी पीढ़ी के साहित्यकारों में उर्दू के प्रति कुछ सीमा तक मोह रहा है । इसका कारण स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में उर्दूमय वातावरण को ठहराया जा सकता है । इस दृष्टि से भारती भी अपवाद नहीं है । उनके काव्य में, यहाँ तक कि 'कनुप्रिया' व 'अंधायुग' में भी उर्दू के शब्द सहजता से उपलब्ध हो जाते हैं। उर्दू के शब्द प्रयोग से भारती के काव्य में शिल्प सौन्दर्य की अभिवृद्धि हुई है । भारती की बहुत कम कविताएँ ऐसी हैं जिनमें इन शब्दों का प्रयोग न हुआ हो । इनके कई रचनाएँ तो ऐसी है, जिनमें उर्दू-फारसी के शब्दों की भरमार है, लेकिन ये शब्द कविता में खटकते नहीं है, अपितु भाव सौन्दर्य में वृद्धि करते हैं । इन्हें पढ़ कर ऐसा प्रतीत होता है कि इन शब्दों के अभाव में कवि अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति इतनी सहजता और वास्तविकता से नहीं कर सकता था । ये शब्द कवि के व्यक्तित्व एवं विचारों से जुड़े हुए हैं और इन्हें पृथक कर देने से कविता में उतनी प्रभावोत्पादकता एवं कोमलता नहीं रह जाती ।

नफ़रत, ख़ामोशी, ज़ख्म, हलक़, नामुमकिन, ज़ाहिर, ज़ाफरानी, ज़हर, गेसुओं, क़मसिन, फीरोजी नाज़ुक, फ़रिश्तों, शमाएँ, ज़िक्र, दोशीज़ा, मेहनत, शहज़ादी, शबनम, इन्तेहा, कफ़न, मंज़िल, मेज़ों, कमज़ोर, बेज़ुबान, शोख़, ज़ुल्म, कमबख्त ज़िन्दगी, फिज़ां, तूफान, इसरार, अन्दाज़, नज़र, ख़ुशबू, जिस्म, वक़्त, खुदकुशी, नाहक़,

आवाज़, आगाज़, हरगिज़, क़ाफी, क़तई, फ़ौलाद, दफ़्तर, ताक़त, यांद, बदन आदि इसी प्रकार के शब्द हैं ।

'भारती' के इन उर्दू-फारसी के शब्द प्रयोगों को कई आलोचक काव्य की दृष्टि से अपरिपक्व और कमज़ोर मानते हैं । यह आरोप संभवतः इसलिये लगाया जाता है, कि रोमानी चेतना के आग्रहवश यह नज़ाकत को काव्य में प्राथमिकता दे गए हैं । इसीलिए अज्ञेय ने 'कनुप्रिया' की भाषा को मिश्र संस्कार' कहा है । अज्ञेय की आपत्ति उर्दू शब्दों के प्रयोग से सम्बन्धित है । उन्होंने राधाकृष्ण के संदर्भ में इस शब्दावली को उपयुक्त नहीं माना है । 'किन्तु बात देशकाल की नहीं भाव-बोध की है । कवि राधा कृष्ण के प्रणय बोध को रोमानी शैली और सबसे अधिक ईमानी शैली में व्यक्त करना चाहता है । और उसके लिए संप्रेषणीयता की सदैव अपेक्षा बनी रहती है । इसलिए यदि उसने कुछ उर्दू शब्दों से काम लिया है । तो उनके आधार पर कथ्य अप्रभावकारी नहीं कहा जा सकता है । फिर उसके विनष्ट होने की तो कोई गुंजाइश ही नहीं ।'[1] इससे स्पष्ट है कि भारती ने अपनी काव्यभाषा में अर्थवत्ता पर ध्यान दिया है केवल विशेष शब्दों पर नहीं ।

उर्दू फारसी के शब्दों के अतिरिक्त कुछ अंग्रेज़ी के शब्द भी इनके काव्य में प्रयुक्त हुए हैं किन्तु बहुत कम।ये शब्द चिरपरिचित होने के कारण विदेशी नहीं लगते । उदाहरण के लिए - क्रॉस, फेम्पलेट, लाइन, पासपोर्ट, जॉर्जेट, चैकबुक, प्लेट फॉर्म, शर्ट, कॉलर, फॉइल, स्टेशन आदि ।

'भारती' ने शब्द सयोजन के अतिरिक्त कुछ नये विशेषणो को निर्मित किया है -

क्रियाओं से निर्मित विशेषण - स्वीकारो ।

संज्ञा से बनी क्रियाएँ - बतियाना, उचटाना ।

संज्ञा से विशेषण बने कुछ शब्द जैसे - मूंगिया (बादल) सतरंगिया (आँचल) चम्पई (वक्ष) ।

कुछ नये विशेषण भी कवि ने बनाये हैं - तरलायित (आँखे), मुर्दा (सपने), बीमार (गुलाब), फीरोज़ी (होंठ) ।

भाषा को प्रौढ़ता प्रदान करने में मुहावरों का विशेष महत्व होता है । ये सीधी और सरल उक्तियाँ ह्दय को स्पर्श करती हैं । इनसे भाषा व भाव में निखार आता है । भारती ने मुहावरे व कहावतों का अधिक प्रयोग नहीं किया है । यद्यपि ये प्रयोग संख्या में अत्यल्प हैं तथापि जहाँ प्रयुक्त हुए हैं वहाँ काव्य के उक्ति वैचित्र्य एवं अर्थ गाम्भीर्य की वृद्धि में सहायक सिद्ध हुए हैं -

'जहाँ हाथ को हाथ नहीं सूझता था ।'[2]

---

1. हरिचरण शर्मा नयी कविता नये धरातल' पृष्ठ - 209
2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया', पृष्ठ - 13

तुम्हारी मुंहलगी ।'[1]

'गगन चुम्बी ध्वजाओं में '[2]

भारती एक समर्थ शब्द शिल्पी हैं । उन्होंने अपने भावों एव वांछित परिवेश को मूर्त करने के लिए शब्दों को नये ढंग से बना सँवार कर प्रस्तुत किया है -

'वायु वेग गामी रथें ।'[2]

'सूनी माँग शिथिल चरण असमर्पिता ।'[3]

शब्दो की पुनरावृत्ति व युगल शब्दों की भी भारती के काव्य मे कमी नही है -

एक-एक, पोर-पोर, सच-सच, युगों-युगों, भर-भर, बार-बार, रीत-रीत, बूँद-बूँद, होते-होते, काँप-काँप, मुड़-मुड़, उमड़-उमड़ आदि शब्दों का बाहुल्य है ।

निष्कर्षत. भाषा की सुबोधता को कवि ने विशेष महत्व दिया है । एवं उसकी स्वाभाविकता और सहजता को स्वीकार किया है ।

छन्द विधान :

काव्य और छन्द का सहज और अविच्छिन्न सम्बन्ध है । काव्य मे कलागत सौन्दर्य की सृष्टि का मूल तत्व छन्द ही है । नयी कविता के अन्तर्गत प्रयुक्त मुक्त छन्द, छन्द विहीनता का द्योतक न होकर छन्दगत शास्त्रीय नियमों से मुक्ति का व्यजक है । नये कवियों ने छन्द रचना की पूर्व-प्रचलित सभी पद्धतियों को पूर्णतया अस्वीकार करते हुए अतुकान्त और मुक्त छन्द के नूतन रचना विधान को स्वीकार किया है, क्योंकि नयी कविता आज के जटिल संश्लिष्ट, वैज्ञानिक युग मे बोखलाए अथवा जूझते हुए व्यक्तित्व का काव्यात्मक प्रतिफलन है । आज के कवि की भाव छवियाँ खँडित है और खंडित भाव भगिमाओ की अभिव्यक्ति मुक्त छन्द में ही की जा सकती है । छन्दों की परिवर्तनशीलता के विषय में कुंवर नारायण ने कहा है - 'कुछ विषय ऐसे होते हैं जो कविता से एक स्वतंत्र संगठन की माँग करते हैं । जिन्हें कोई बना बनाया छन्द 'रेडीमेड'

---

1. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ- 65
2. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ- 65
3. धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया' पृष्ठ - 65

कपड़ो की तरह नहीं पहनाया जा सकता, बल्कि जिसके लिए भाषा और शब्दो को दूसरी तरह से काटना छाँटना पड़ता है । .... छंद जिन्हे कविता का व्याकरण कहना शायद गलत न होगा, कविता के विकास में कुछ उसी तरह टूटते और बनते चलते हैं जैसे भाषा के विकास में व्याकरण ।'[1] नवीन भाव-बोध को परम्परागत छन्दों में अभिव्यक्त करने से कथ्य का सम्पूर्ण सौन्दर्य नष्ट हो जाता है, किन्तु मुक्त छन्द में भावों की प्रवाह मयता ज्यों-की-त्यों बनी रहती है । फलस्वरूप काव्य में शब्द और भाव की लय का निर्वाह सफलता पूर्वक किया जा सकता है ।

'निराला ने प्रथम बार हिन्दी काव्य में इस छन्द का प्रयोग और प्रसार किया । उनके पहले किसी ने इसका उपयोग करने की क्षमता नहीं दिखलायी । वे इस छन्द के जन्मदाता व त्राता दोनों ही हैं । छन्दों के बन्धन से कविता को मुक्त करने वाले मनीषी और उद्धारक के रूप में वे अजर अमर रहेगें ।'[2]

नयी कविता में इसी मुक्त छन्द या स्वच्छन्द छन्द को अपनाया गया है । जिसके चरण अनियमित, गति असमान और यति विधान भावानुकूल है ।

भारती ने अपने काव्य में परम्परागत व मुक्त छन्द दोनों का प्रयोग किया है । जिस प्रकार भाषा व शब्द संयोजन में 'भारती' नियमों में आबद्ध नहीं हैं, वैसे ही छन्द निर्माण की भी इनकी अपनी अलग शैली है । 'मुक्त छन्द के चयन में वे अज्ञेय के साथ हैं । 'गद्य की लय' को काव्य में उतारने में वे अज्ञेय से अधिक सफल है ।'[3] नयी कविता के कवियों ने शिल्प के क्षेत्र में सर्वाधिक क्रान्ति छन्द को लेकर की' उन्होने मुक्त छन्द को आत्मीयता से अपनाया और इस क्षेत्र में विशेष ख्याति प्राप्त की, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि नयी कविता में पारम्परिक छन्द नहीं मिलते । 'भारती' के काव्य में अनेक मात्रिक छन्द प्रयुक्त हुए हैं ।

पीयूष वर्ष - 19 मात्राओं का यह छन्द सप्तक की दो आवृत्तियों के पश्चात अंत में रगण जोड़ने से बनता है । इसकी तीसरी, दसवी और सत्रहवीं मात्रा लघु होती है । भारती ने अपनी अनेक कविताओ मे इसका प्रयोग किया हैं -

'लाद कर ये आज किसका शव चले
और इस छतनार बरगद के तले,
किस अभागिन का जनाज़ा है रुका
बैठ इसके पॉयते गर्दन झुका ।'[4]

---

1. अज्ञेय, 'तीसरा सप्तक' (स.) पृष्ठ-235 2. गंगाप्रसाद पाण्डेय, 'महाप्राण निराला' पृष्ठ-44
3. कमला प्रसाद पाण्डेय 'छायावादोत्तर काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि' पृष्ठ - 293.
4. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 46

इस उदाहरण में सप्तको की दो आवृत्तियाँ है । इसकी तीसरी, दसवी और सत्रहवीं मात्राएँ लघु है, रगण का नियम आवश्यक न मान कार अन्तिम पाँच मात्राएँ कही रमण कही तीन लघु और एक गुरू के योग से पूरी की गयी हैं ।

रजनी छन्द - 23 मात्राओ का यह छन्द सप्तक की तीन आवृत्तियों और अन्त मे गुरू की योजना से निर्मित होता है । इसकी तीसरी, दसवीं और सत्रहवी मात्राएँ अनिवार्य रूप से लघु होना चाहिए । 'ठडालोहा' की कविताओं मे भारती ने इसका प्रयोग किया है -

'पलक के जल और माथे के पसीने से
सींचता आया सदा जो स्वर्ग की भी नीव,
ये परिस्थितियाँ बना देगी उसे निर्जीव ।'[1]

रोला छन्द - रोला छन्द का प्रयोग नयी कविता के प्राय सभी कवियो ने किया है । यह 24 मात्राओं का छन्द है । प्राचीन नियमानुसार ।। मात्राओं पर यति मानी जाती थी किन्तु अब यह आवश्यक नहीं है निम्न पंक्तियाँ इस छन्द का उदाहरण हैं -

'इन बहकी घड़ियो की गहरी खामोशी में
जाने कब रात हुई जाने कब बीत गयी
मन के अंधियारे मे उभरे धीमे-धीमे
रगों के द्वीप नये, वाणी की भूमि नयी ।[2]

उपर्युक्त शुद्ध परम्परागत छन्दों के अतिरिक्त अनेक छन्दो के योग से नवीन छन्दों का निर्माण भी कवि ने किया है । जिन्हें हम मिश्र छन्द' कह सकते हैं । इस प्रकार से बने छन्द कवि की मौलिक सृजन प्रतिभा का परिचय देते हैं । भारती' द्वारा निर्मित ये छन्द इस बात के प्रमाण हैं कि इन्होंने मुक्त छन्द को अपनाते हुए भी शास्त्रीय छन्दों के प्रति उपेक्षा भाव नहीं रखा है । निम्न पंक्तियों में वर्णित छन्द जिसमें 19 मात्राओं में पीयूष वर्ष और 23 मात्राओं के रजनी के योग से एक नवीन छन्द बना है -

'आदमी इतना नहीं कमजोर है
पलक के जल और माथे के पसीने से
सींचता आया सदा जो स्वर्ग की भी नींव
ये परिस्थितियाँ बना देंगी उसे निर्जीव ।'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ- 45
2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ -59
3. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ- 45

इस उदाहरण में पहली पंक्ति पीयूष वर्ष की ओर शेष पंक्तियाँ रजनी छन्द की हैं ।

इसी प्रकार भारती ने सार और सरसी को मिलाकर नया छन्द बनाया है । निम्न पक्तियों में प्रथम दो और अन्तिम चरण सरसी छन्द के तीसरा चरण सार छन्द का है -

'यह पथरीला दर्द काव्य का मुझसे सहा न जाता,
भोजपत्र की परत-परत में दबा घुटा मेरा मन,
कविता की पाँतें नागिन बन मुझे निगलती जातीं
धन्य तुम्हारी कला महाकवि, धन्य कला का दर्शन ।'[1]

रोला और पादाकुलक को मिलकर कवि ने प्रणयजन्य वेदना की तीव्रता को अभिव्यक्ति दी है । रोला 24 मात्राओं व पादाकुलक 16 मात्राओं का छन्द है । यह अत्यन्त स्वाभाविक मिश्रण है -

'यों कथा - कहानी - उपन्यास में कुछ भी हो
इस अधकचरे मन के पहले आकर्षण को
कोई भी याद नही रखता
चाहे मैं हूँ, चाहे तुम हो ।'[2]

दो से अधिक छन्दों का मिश्रण कर काव्य रचना करने का काम अनेक कवियो ने किया है, किन्तु दो से अधिक छन्दों का मिश्रण कर काव्य रचना प्रतिभाशाली कवियो के वश की ही बात है । भाव और कथ्य को अखण्डित रखते हुए 'भारती' ने अनेक छन्दों का एक ही कविता मे सफलता पूर्वक निर्वाह किया है । निम्न उदाहरण में विष्णुपद, सार व सरसी का योग देखा जा सकता है -

'मेघदूत के छन्द - छन्द में बन्दी विरही यक्ष
तुम हो मेरी दुखी, बन्दिनी आत्मा के निर्माता
यह वियोग के पाश बंधे जो मेरे चारों ओर
'यह तड़पन, यह टीस न जिससे कभी छूट में पाता
अपनी कविता के जुनून में वाणी के सिरमौर
कितना बड़ा दरद कर दिया मेरे मन पर नक़्श ।'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ- 58
2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 72
3. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ- 57

मत्त समक 16 मात्राओं का छन्द है । जिसका दूसरा अष्टक लघु से प्रारम्भ होता है । हाकलि 14 मात्राओं का छन्द है जो तीन चोकल और गुरू के योग से बनता है । इन सबके योग से बना एक नवीन छन्द -

'फिर,
बहुत दिनों के बाद खिला बेला, मेरा आँगन महका ।
फिर पाँखुरियों, कमसिन परियों
वाली अल्हड़ तरूणाई
पकड़ किरन की डोर, गुलाबों के हिंडोर पर लहरायी ।'[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'भारती' ने परम्परागत छन्दों के साथ, परम्परागत छन्दों के मिश्रण से भी नये छन्दो का विधान किया है । यद्यपि ये छन्द परम्परागत ही हैं, किन्तु इनके प्रयोग से छन्दगत अभिनवता आ गयी है । इस प्रकार का छन्द प्रयोग 'भारती' का नयी कविता को प्रदेय है । उन्होंने सम्प्रेषित भाव की लय के आधार पर उत्थान पतन की सही व्यंजना हेतु इन छन्दों का निर्माण किया है, जो कवि की शिल्पगत मौलिकता के परिचायक हैं ।

नवीन छन्द - नवीन छन्दों में दो प्रकार के छन्दों का प्रयोग नयी कविता में मिलता है । एक तो मुक्त छन्द जो नयी कविता का प्राणाधार है, और दूसरे वे जो अंग्रेजी, उर्दू व लोकगीतों के प्रभाववश प्रयुक्त किए गए हैं ।

भारती के काव्य में नवीन छन्द के दोनों ही रूप प्रयुक्त हुए हैं । उन्होंने अधिकतर कविताएँ मुक्त छन्द में लिखी हैं, किन्तु एक खास लय में आबद्ध होने के कारण इन कविताओ में आंतरिक सूत्र है जो इन्हें गद्यमय बनने नहीं देता ।

'औरत फिर उसके बाद वही रह जाती है,
वह तुच्छ ईर्ष्या, प्रबल अहम्, वह आडम्बर,
वह ऊन सलाई के फन्दे से
जीवन का ताना बाना बुनने वाली,
फिर सेज पलंग, ढीले, चुम्बन - आलिंगन पर -

---

1. **धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा'** पृष्ठ - 16

ये सारे

ये चाँद सितारे

इन्द्र धनुष बिक जाते हैं ।'[1]

इसी प्रकार लय के माध्यम से संयोजित निम्न पंक्तियाँ -

'हम सबके दामन पर दाग

हम सबकी आत्मा में झूठ

हम सबके माथे पर शर्म

हम सबके हाथों में टूटी तलवारों की मूठ ।'[2]

इन कविताओं में कवि का ध्यान छन्द बद्धता की अपेक्षा अर्थानुगामी लय के माध्यम से अपेक्षित भाव का प्रभावशाली सम्प्रेषण करने पर अधिक रहा है । लय का उपयोग 'भारती' ने बड़ी सतर्कता व गम्भीरता से किया है, जो इनकी कलात्मक अभिरूचि का परिचायक है ।

इसके अतिरिक्त भारती ने अत्यन्त प्राचीन अष्टमात्रिक छन्द का प्रयोग भी किया है । अतिशय भावुकता व विशेष सन्दर्भ में प्रयुक्त इस छन्द की मार्मिकता दृष्टव्य है -

'मेरी वाणी

गैरिक वसना

भूल गयी गोरे अंगो को

फूलों के वसनों में कसना

गैरिक वसना

मेरी वाणी ।'[3]

यहाँ चिर परिचित भाषा में अष्टक लिख कर भारती ने इसकी सहजता की ओर संकेत किया है । इसी प्रकार निम्न पंक्तियों में अष्टक का प्रयोग सराहनीय है -

---

1. धर्मवीर भारती 'ठण्डालोहा' पृष्ठ - 69
2. धर्मवीर भारती 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 20
3. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 27

कुछ समीप की

कुछ सुदुर की

कुछ चन्दन की

कुछ कपूर की

कुछ में गेरू

कुछ में रेशम

कुछ में केवल जाल ।'[1]

उर्दू से प्रभावित छन्द - 'भारती' की कविता के छन्द विधान पर कहीं-कहीं उर्दू का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है । इसके अंतर्गत भारती की कविताओं में रूबाइयों की झलक देखी जा सकती है । रूबाई के ढंग पर लिखा गया मुक्तक इस प्रकार है -

'आज माथे पर, नजर में बादलों को साध कर

रख दिये तुमने सरल संगीत से निर्मित अधर

आरती के दीपकों की झिलमिलाती छाँह में

बाँसूरी रक्खी हुई ज्यों भागवत के पृष्ठ पर ।'[2]

निम्न पंक्तियाँ गजल रूप में है । यहाँ तर्ज ही नहीं भाव भी गज़ल के अनुरूप है -

'क्या अजब है पुकारिये जितना

अजनबी कौन भला आता है

एक है दर्द वही अपना है

लौट हर बार चला आता है ।'[3]

लोकगीतों की धुनों पर भी भारती ने गीत लिखे हैं । इन गीतों के माध्यम से कवि ने कहीं प्रेम और निराशा को अभिव्यक्ति दी है तो कहीं भावुकता को । प्रकृति के मनोमुग्धकारी परिवेश का चित्रण भी इन्हीं धुनों के आधार पर हुआ है -

---

1. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 61   2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 33

3. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 65

'शाम बीते दूर जब भटकी हुई गायें रंभाये

नींद में खो जाय जब

खामोश डाली आम की.

तड़पती पगडंडियों से पूछना मेरा पता -

तुमको बतायेंगी कथा मेरी

व्यथा हर शाम कीं, '[1]

जनवादी पृष्ठभूमि पर लिखे गये लोकगीत की निम्न पंक्तियाँ भी प्रभावात्मक हैं -

'गोरी - गोरी सोंधी धरती - कारे - कारे बीज

बदना पानी दे ।

क्यारी क्यारी गूँज उठा संगीत

बोने वालों ! नयी फसल में बोओगे क्या चीज ?

बदरा पानी दे ।'[2]

कहीं-कहीं किसी बात विशेष बल देकर भारती ने मुक्त छन्द में अनुप्रासात्मकता का परिचय भी दिया है -

'मेरी स्वप्न भरी पलकों पर

मेरे गीत - भरे होठों पर

मेरी दर्द भरी आत्मा पर

स्वप्न नहीं अब

गीत नहीं अब ।'[3]

निष्कर्षतः जहाँ तक छन्द विधान का प्रश्न हैं, उसमें 'भारती' अपने सहयोगियों की अपेक्षा अधिक सफल हैं । छंद विधान में उनके नये प्रयोगों को भुलाया नहीं जा सकता । उनके छंद संवादों का विशेष महत्व है -

---

1. धर्मवीर भारती 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 10
2. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृष्ठ - 34
3. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ- 1

'बढ़ते आओ । बढ़ते आओ । घबराओं मत ।
अंधियारा हो ?
रोशनी नहीं ? प्रेरणा नहीं ? आत्मा नहीं ?
तुम जो भी हो स्वीकार मुझे ।'[1]

'अंधायुग' में कवि ने पात्रों के सम्वादों को लय में बदल कर अभिव्यक्ति को एकरसता के दोष से बचा लिया है । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'भारती' के काव्य का कलापक्ष अन्य कवियों की तुलना में अधिक समृद्ध है । 'भारती' ने विभिन्न् छन्दों को मिला कर कविता की लय को अधिकाधिक सामर्थ्यशील एवं भावानुकूल बनाया है तथा पारम्परिक छन्द व्यवस्था को कविता की लय के अनुरूप ढाला है । लयात्मकता व भाव बोध की स्पष्टता के कारण जहाँ कहीं भी उन्हें छन्द भंग करने की आवश्यकता अनुभव हुई, वहाँ उन्होनें पूर्ण स्वतंत्रता से काम लिया है । अपनी सम्पूर्ण रचनाओं में छन्द निर्वाह से अधिक कवि का ध्यान वातावरण निर्माण, अर्थवत्ता व भाव व्यजंना पर रहा है ।

****

---

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा', पृष्ठ - 65

अध्याय पाँच - उपलब्धियाँ एवं सम्भावनाएँ

अध्याय : 5

उपलब्धियाँ एवं सम्भावनाएँ

जब तक किसी कृतिकार की काव्य सर्जना स्थिर नहीं हो जाती, उसका मूल्यांकन करना एक दुष्कर कार्य होता है । ऐसे कवि की काव्यधारा के विषय में निष्कर्ष रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी परिणति किस बिन्दु पर होगी ? केवल प्राप्त सामग्री के आधार पर उसकी उपलब्धि और सीमाओं को देखते हुए उसके संभावित भविष्य की कल्पना की जा सकती है । क्योंकि 'आलोचक भविष्य दृष्टा नहीं होता किन्तु उसे भावी सम्भावनाओं के बारे में सोचने का अधिकार तो है ही ।'[1]

'भारती' प्रयोगवादी काव्य परम्परा के नये कवियों में अग्रगण्य हैं । 'नयी कविता का सूत्रपात एक आन्दोलन के रूप में इसी नाम की एक पत्रिका के द्वारा हुआ । इस पत्रिका की सारी योजना डा0 भारती की बनायी हुई थी और वे ही उसके प्रमुख सूत्रधार थे । नयी कविता प्रयोगवाद का अग्रिम चरण है ।'[2] अतः स्पष्ट है कि 'भारती' नयी कविता के निर्विवाद रूप से समर्थ हस्ताक्षर हैं ।

साहित्य की अनेक विधाओं में रूचि लेते हुए भारती का मन कविता में अधिक शांति पा सका है । वह कविता को शांति की छाया और विश्वास की आवाज मानते हैं । उनके काव्य को 'दूसरा सप्तक', 'ठण्डालोहा', 'सात गीत वर्ष' और कनुप्रिया के माध्यम से समझा जा सकता है । काव्य नाटक 'अंधायुग' उनकी वैचारिक काव्य यात्रा को प्रस्तुत करता है । 'देशान्तर' नाम से भारती ने कुछ विदेशी कविताओं का हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत किया है । इस प्रकार 'भारती' क्रमशः स्वच्छन्दतावादी अंग्रेज़ी रोमान्टिसिज्म उर्दू की गज़ल शैली, प्रयोगवाद और नयी कविता आदि सभी की काव्य भूमियों पर विचरण करते रहे हैं । उनकी कविताओं में रूपासक्ति, प्रणयासक्ति, प्रेम की स्थूल और उदात्त अभिव्यक्ति, प्रकृति की आकर्षक छवियाँ तो मिलती ही हैं, युग यथार्थ और समसामयिक चिन्तन भी कविताओं के घूँघट से झाँकता दिखाई देता है ।'[3]

भारती की काव्योपलब्धियाँ वास्तव में उनकी परवर्ती कृतियों में दिखाई पड़ती हैं । उनकी प्रारम्भिक कविताएँ मूलतः रोमानी भाव बोध से संपृक्त हैं । ये कविताएँ किशोर्य सुलभ भावुकता से आक्रान्त होने के कारण

---

1. रामअवध द्विवेदी, 'आज' (साहित्य विशेषांक) 5 फरवरी 1961, पृष्ठ - 9
2. पुष्पा वास्कर, 'धर्मवीर भारतीः व्यक्ति और साहित्यकार', पृष्ठ - 333
3. हरिचरण शर्मा, 'नये प्रतिनिधि कवि', पृष्ठ - 237

उद्दाम आकर्षण, रूपासक्ति और निर्दोष प्यार से परिपूर्ण हैं । 'भारती' के काव्य की पहली सीढ़ी पर रची बसी ये कविताएँ घुटन, दर्द, निराशा, बेबसी की अभिव्यक्ति भी करती हैं । इन कविताओं में कवि का जीवन आत्माभिव्यक्ति, परिस्थितियाँ, अपने पराये, तत्कालीन साहित्य, सामाजिक परिवेश, सभी कुछ, सभी प्रत्यक्ष तो कभी अप्रत्यख रूप से आभासित होते है । कवि ने इस सत्य को स्वीकार करते हुए कहा है - 'मेरी परिस्थितियाँ मेरे जीवन में आने और आकर चले जाने वाले लोग, मेरा समाज, मेरा वर्ग, मेरे संघर्ष, मेरी समकालीन राजनीति, और समकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियाँ, इन सभी का मेरे और मेरी कविता के रूप गठन और विकास में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भाग रहा है । '[1] इसीलिए 'ठंडालोहा' में भारती ने अपनी युग की प्रचलित सभी शैलियों व विचार धाराओं को आत्मसात किया है । 'भारती' की प्रारम्भिक रचनाओं में जहाँ माँसल प्रेम व सौन्दर्य चित्रण है वहीं परवर्ती काव्य में यथार्थ की अनुभूति होने से वह बौद्धिक, चिन्तन प्रधान हो गया है । भावुकता का आवरण हटने के पश्चात वास्तविक स्थिति को कवि ने स्वीकार किया है । प्रेमजन्य निराशा व उदासी को 'भारती' के कवि ने संयम के साथ भोगा है । उसकी विशेषता है कि वह प्रेम मार्ग में वासना व पूजा का संतुलन बनाये हुए एक व्यवहारिक चिन्तन पीठिका प्रस्तुत करता है । 'सात गीत वर्ष' में यही प्रेम उदात्तीकृत भूमिका पर दिखाई देता है । यहाँ तन का रिश्ता माँसलता से ऊपर उठ जाता है -

'तन का
केवल तन का रिश्ता भी
माँसलता से कितना ऊपर उठ जाता है
अब यह जुही के फूलों सा तन नहीं रहा
पर इसमें पहले से कहीं अधिक जादू है ।'[2]

केवल प्रेम वर्णन में ही नहीं, अन्य कई बिन्दुओं पर कवि 'सात गीत वर्ष' में 'ठंडालोहा' से अलग हटकर सामने आया है । यहाँ वह पलायन व निराशा में विश्वास न करके सामयिक समस्याओं व परिस्थितिजन्य जटिलताओं में संघर्ष हेतु तत्पर रहता है ।

भारती का कवि यह भली भाँति जानता है कि मानव जीवन कर्मठता व संघर्षो से बनता सँवरता है । इस बनने सँवरने में वह टूटता बिखरता भी है, किन्तु आत्म सम्बल ही उसे बार-बार जोड़ता है और प्रेरित करता हैं - आगे बढ़ने के लिए यही आत्म विश्वास कवि के चिन्तन की नयी रोशनी है । इस रोशनी के द्वारा कवि ने कहीं फूलों की गंध भरा आँगन देखा है, तो कहीं 'नवम्बर की दोपहर' का आनन्द लिया है । 'सात गीत वर्ष' में कवि प्रयासरत है ऐसे मूल्य स्तर की खोज में जो प्रश्निल मन: स्थिति व भावाकुल तन्मयता में तालमेल बैठा

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' (भूमिका भाग) 2. धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष' पृष्ठ - 30

सके । कवि इन दोनों के बीच एक पार्थक्य रेखा खींचना चाहता है या फिर एक के बाद दूसरी स्थिति में जीना । 'कनुप्रिया' में राग सम्बन्धों की यही वैचारिक परिणति दिखाई देती है और कवि इस स्थिति में जिया भी है । 'कनुप्रिया' में राधा के माध्यम से उठाये गये प्रश्न इसी भावाकुल स्थिति व प्रश्निल मनःस्थिति का प्रमाण हैं । यहाँ राधा दो विरोधी बिन्दुओं पर एक साथ जीती है ।

जिस प्रकार 'कनुप्रिया' में राग सम्बन्धों की वैचारिक पृष्ठभूमि है, उसी प्रकार 'अंधायुग' समसामयिक जीवन पर आसन्न युद्ध के संकट को अभिव्यक्ति देता है । यदि 'कनुप्रिया' में राधा के माध्यम से प्रश्नों को उठाया गया है, तो 'अंधायुग' में महाभारत की कथा द्वारा सामयिक बोध को प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति दी गयी है ।

भारती ने 'ठंडालोहा', सात गीत वर्ष', 'कनुप्रिया' व अंधायुग में विभिन्न विषयों को उठाया है, किन्तु कवि की अपनी कुछ मूल काव्य प्रवृत्तियाँ है,जो सामाजिक परिवेश के कारण सम्पूर्ण काव्य पर आच्छादित हैं ।

द्वितीय महायुद्ध के अनन्तर सामाजिक जीवन में जो विघटनकारी परिवर्तन हुए वे अपने में युगान्तकारी हलचल समेटे हुए थे । युद्ध के प्रभाव से जन साधारण की मनोवृत्तियाँ भी ह्रासोन्मुखी हुई । उनकी इस मनोवृत्ति की प्रतिक्रिया केवल शासन व्यवस्था में ही नहीं धर्म, कला, व समूची संस्कृति में उजागर हुई । अणु शक्ति के विध्वंसात्मक प्रयोगों की आशंका ने इस ध्वस्तमान स्थिति को और नीचे धकेला, जिससे समाज का प्रभाव कविता पर पड़ना स्वाभाविक था । भारती की कविता भी इस सामयिक बोध को साथ लेकर चली है ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त जन सामान्य की समस्याओं, उनकी टूटन एवं बिखराव को 'भारती' ने अपनी कविताओं में समेटा है । व्यक्ति के मन का संशय, स्वार्थलिप्सा, मानसिक जड़ता, इतिहास, के क्षण व तन्मयता के क्षणों का द्वन्द्व, व्यक्ति के व्यक्तित्व का पतन, सम्पूर्ण विचार जगत से हीन व्यक्ति का चित्रण भारती की कविताओं में हुआ है ।

नयी कविता छायावादी अतीन्द्रिय वायवीयता एवं प्रगतिवादी प्रचार-परक सैद्धान्तिक प्रक्रिया से भिन्न जन जीवन के बाह्य एंवं आन्तरिक रूप का संस्पर्श करती हुई नव्यतम मानदण्डों की संवाहिका बन कर प्रकट हुई है । 'भारती' ने इन्हीं नव्यतम मानदण्डों को आधुनिक जीवन में स्थापित किया; बिखराव व टूटन को रूपायित किया और और मानव मन को जड़ता की स्थिति तक पहुंचाने वाले आशंका व अनास्था जैसे तत्वों को प्रकट करके उनकी द्विविधा-परक स्थिति को समाप्त कर उसे आस्था व सम्बल प्रदान किया है।क्योंकि कवि की मान्यता है कि रचनाकार की स्वतंत्र सत्ता होनी चाहिये । यही स्वतंत्र सत्ता ध्वंस के बीच भी व्यक्ति को और उसकी आवाज को ज़िन्दा रखती है ।

भारती की कविता का प्रारम्भिक स्वर प्रेम और सौन्दर्य का है । उनका प्रारम्भिक काव्य रोमानी भाव बोध का काव्य है । संघर्ष, समस्याओं व यथार्थ चित्रण में भी कवि प्रेम परक दृष्टिकोण से पूर्णतः विमुख नहीं हुआ है । 'ठंडालोहा' पर तो रूप सौन्दर्य व माँसलता का ही साम्राज्य है । इस कृति का प्रेम, सौन्दर्य, श्रृंगार 'कनुपिया' में अंततः वियोग में परिणित हो गया है और 'सात गीत वर्ष में यह माँसल प्रेम चिन्तन की ओर उन्मुख हो गया ।

'भारती' का प्रेमी मन सौन्दर्य के प्रति विशेष रूप से समर्पित है । कवि की कल्पना सौन्दर्य की अनन्य साधिका है । उनके सौन्दर्य वर्णन में प्रकृति, व नारी सौन्दर्य की अनुपम झाँकियाँ दिखाई देती हैं । नारी सौन्दर्य वर्णन में कवि ने माँसलता व पवित्रता दोनों को ही माध्यम बनाया है । कभी यह सौन्दर्य वर्णन पवित्र व सूक्ष्म हो गया है तो कभी अत्यधिक स्थूल एवं माँसल रूप में व्यक्त हुआ है, किन्तु दोनों ही प्रकार के सौन्दर्य वर्णन, सहज, स्वाभाविक एवं हृदयस्पर्शी हैं । 'भारती की सौन्दर्य चेतना अत्यन्त प्रबुद्ध एवं परिष्कृत है । उन्होंने सत्यानुभूति को काव्यानुभूति का आधार बनाया है । यही कारण है कि उनके सौन्दर्य चित्र मंजे हुए, तराशे हुए तथा रंग भरे हुए लगते हैं । '[1]

भारती का काव्य वैयक्तिकता की स्पष्ट अभिव्यक्ति करता है । कवि का वैचारिक दृष्टिकोण, अनुभूतियाँ, भोगी हुई पीड़ा, घुटन, संत्रास सभी कुछ काव्य के माध्यम से स्पष्ट होता है । भारती की कविताएँ भावुकता से आक्रान्त होने के साथ ही समस्याओं व परिस्थितियोंवश बौद्धिक एवं चिन्तनप्रधान हो गयी हैं । इनकी वैयक्तिकता सम्बन्धी कविताएँ कहीं भी ऊब उत्पन्न नहीं करती, प्रत्युत ऐसी अनुभूतियों में भी त्रस्त पीढ़ी के लिए कुछ सन्देश निहित है ।

'भारती' का काव्य समय निराशा, वेदना और खोखलेपन का है । मध्यमवर्गीय परिवारों की दुर्दशा, थकान, उदासी इनके काव्य में यथार्थ बन कर मुखर हुई है । इनकी यथार्थवादी कविताओं में जीवन की ऐसी सच्चाई है, जिससे व्यक्ति उदासीन हो ही नहीं सकता । एक बार पढ़ लेने के बाद ऐसी रचना मन को कुरेदती ही रहती है ।

'भारती' का मानवतावाद कुछ निश्चित दिशाएँ लेकर आगे बढ़ा है । कवि की मान्यता है कि परम्परागत धर्म और अन्धविश्वासों ने मानवता का मार्ग अवरूद्ध किया है । कवि सच्चा धर्म उसे मानता है जो संघर्षरत रहते हुए, विषमता की उपेक्षा करते हुए निरन्तर मानवमात्र के प्रति प्रेम का सन्देश देता है ।

---

1. ब्रजमोहन शर्मा, 'धर्मवीर भारतीः कनुप्रिया तथा अन्य कृतियाँ', पृष्ठ - 89

भारती अभिजात्य वर्ग के समर्थक नहीं हैं । वह हर व्यक्ति को चाहे वह धनवान हो या गरीब, महान हो या लघु, सम्मान देने के पक्षधर हैं । वह यह अनुभव करते हैं कि सामाजिक जीवन में व्यक्ति की छोटी से छोटी इकाई का भी अपना महत्व है । इसे कवि ने 'टूटापहिया' में स्पष्ट किया है ।

सामाजिक विकृतियों पर व्यंग्य द्वारा आघात करने में भी 'भारती' को विशेष सफलता मिली है । इनके व्यंग्य सीधे सहज एवं पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से प्रयुक्त हुए हैं । ये तीखे एवं अपने मंतव्य में सफल हैं । युगीन यथार्थ की अभिव्यक्ति करती हुई इनकी व्यंगात्मक कविताएँ कहीं बिके हुए बुद्धिजीवियों पर चोट करती हैं, तो कहीं अनछूए प्रसंगो को उद्घाटित करती हैं ।

द्वितीय समरोत्तर प्रभाव व संत्रस्त सामाजिक परिवेश को 'भारती' ने बड़ी कुशलता से 'अंधायुग' में चित्रित किया है । 'यह कृति वर्तमान जीवन और युगीन विषयों की हू-ब-हू तस्वीर पेश करती है । हिंसा, विकृति, निराशा, पराजय, बर्बरता, अमानुषिकता, अनास्था, कुण्ठा, दासता याने पूरा का पूरा युग सत्य मुखर हो उठा है ।'[1] युद्ध की भयावहता, विकृति व सिसकती संस्कृति को भारती ने साकार किया है । आगत विध्वंसकारी वातावरण के प्रति चेतावनी की ध्वनि 'अंधायुग' पढ़ने के बाद गूँजती रहती है । युद्ध की विभीषिका से जब मानव त्रस्त हो उठता है तब कनिप्रिया में वर्णित रागात्मकता ही उसके भटके व्याकुल मन को शांति प्रदान करती है । 'अंधायुग' का असफल इतिहास 'कनुप्रिया' में राधा के माध्यम से प्रश्न बन कर खड़ा है ।

सत्य के सबल पक्ष को ग्रहण करके चलने वाली भारती की कविता स्वस्थ मानव मूल्यों की स्थापना करती है । आस्था के स्वरों से पूर्ण ये कविताएँ नव निर्माण की प्रेरणादात्री हैं । 'भारती में आस्था का स्वर है और वह स्पष्ट है सशक्त है । अन्य कवियों की भाँति क्षीण या दिग्भ्रम में भटका हुआ नहीं है ।'[2] मानव जीवन की प्रत्येक स्थिति को कवि ने अनुभव किया है । अतः जीवन के सभी पहलू इनके काव्य का विषय बने हैं ।

भारती के दूसरे चरण का काव्य लेखन उनकी उपलब्धियों की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । यहाँ कवि की भावुकता वैचारिक एंवं यथार्थ-परक सामाजिक सन्दर्भो से संपृक्त है । वस्तुतः 'टूटापहिया', वृहन्नला, 'पराजित पीढ़ी का गीत' निर्माण योजना 'गुलाम बनाने वाले' जैसी रचनाएँ 'भारती' की काव्यगत सक्षमता, विशिष्ट प्रदेय एंवं उनके कवि कर्म कौशल की परिचायक हैं । इन रचनाओं में कवि ने व्यापक मानवतावादी भूमिका अदा की है -

---

1. संतोष कुमार तिवारी, 'नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर', पृष्ठ - 233
2. रामेश्वर खण्डेलवाल, 'हिन्दी काव्य और प्रयोगवाद' पृष्ठ - 79

'हम सबकी आत्मा में झूठ

हम सबके हाथों में टूटी तलवारों की मूठ'।'[1]

उपर्युक्त पंक्तियाँ कवि के भावी श्रेष्ठतर और उदात्त काव्य प्रणयन के साथ ही मानवता को नवीन वैचारिक विकास, साहस, परिस्थिति बोध एवं सामन्जस्य की भावना का अमर सन्देश देती हैं ।

भारती का कवि देश की उन्नति व विकास के लिए चिंतित प्रतीत होता है । कवि का विचार है कि केवल भौतिक उन्नति से ही देश का विकास नहीं होगा, बल्कि इसके लिए प्रत्येक नागरिक का नैतिक एव चारित्रिक विकास भी आवश्यक है । भारती की निर्माण योजना का सारांश उनकी मौलिक विचारधारा को अभिव्यक्ति देता है । परम्परा से हट कर कुछ सोचने वाले कवियों में भारती अग्रणी हैं ।

'मैं जनपथ हूँ

मैं प्रभु पथ हूँ, मैं हूँ जीवन

जिस क्षितिज रेख पर पहुँच व्यक्ति की राहें झूठी पड़ जाती

मैं उस सीमा के बाद पुनः उठने वाला नूतन अथ हूँ ।'[2]

भारती रूढ़िवादी एवं विकास में बाधक प्राचीन परम्पराओं के विरोधी हैं । इसीलिए उन्होंने प्राचीन भारतीय स्मृतियों को पुनर्जीवित कर समकालीन सन्दर्भो से जोड़ा है, यहाँ उनकी संस्कार प्रियता व परिवर्तनप्रियता के दर्शन होते हैं ।

आधुनिक काल के नारी स्वातंत्र्य ने भी कवि को प्रभावित किया है । 'भारती' ने अपने काव्य में नारी को मात्र स्वप्निल क्षणों की संगिनी ही नहीं माना, अपितु उसे पुरूष के समकक्ष खड़ा किया है । 'कनुप्रिया' में आधुनिक नारी के अन्तर्मन की उधेड़बुन, शंका, विवशता और घुटन के साथ तर्क-वितर्क व स्वातंत्र्य की भावना का पूर्ण निरूपण किया गया है । आज के बौद्धिक युग में व्यथित, भ्रमित नारी के संशय को कवि ने राधा के माध्यम से स्पष्ट किया है । वीसवीं सदी की नारी वैज्ञानिक युग में भी तप, त्याग, प्रेम व बलिदान को संजोये हुए है । उसे केवल यह दुख है कि उसे मानसिक रूप से पुरूष से हेय क्यों समझा जाता है ?

'सुनो मेरे प्यार !

प्रगाढ़ केलिक्षणों में अपनी अंतरंग सखी को

तुमने बाहों में गूँथा

पर उसे इतिहास में गूँथने से

हिचक क्यों गये प्रभु ?'[3]

---

1. धर्मवीर भारती'सातगीतवर्ष'पृ0-46, 2. धर्मवीर भारती'सातगीतवर्ष'पृ0-23 3. धर्मवीर भारती'कनुप्रिया'पृ0-79

पश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से भारतीय नारी की प्रेम सम्बन्धी मान्यताएँ भी परिवर्तित हुई हैं । आधुनिक जीवन के बिखराव, विघटन व विरोधी स्थितियों ने उसे क्षण-भोगी बना दिया है । क्षण वाद के प्रभावश उसने काम को जीवन का महत्वपूर्ण अंश मान लिया है । 'भारती' के काव्य में आधुनिका की यह वासनामयी छवि भी चित्रित हुई हैं । 'कनुप्रिया' की राधा इस प्रवृत्ति से प्रभावित है ।

भारती प्रयोगवादी काव्यधारा के कवियों में पौराणिक उपाख्यानों के द्वारा नया शिल्प प्रस्तुत करने में अग्रणी हैं । नवीन प्रतीकों और बिम्बों को कवि ने काव्य का मूल आधार बनाया है । भावुकता और रोमांटिकता के कारण रूप सौन्दर्य वर्णन में कवि ने एक से एक मौलिक, नवीन अछूते बिम्बों का प्रयोग कर रूपवर्णन के सौन्दर्य को द्विगुणित कर दिया है । इन नवीन बिम्बों के प्रयोग से कविता में गति, लय एवं भावों की कहीं भी अस्पष्टता व दुरूहता नहीं आने पायी है । भारती का कवि बिम्ब प्रयोग की कला को सूक्ष्मता से जानता है ।

'भारती' ने प्रतीकों के माध्यम से युगीन परिस्थितियों एवं मानव जीवन की विषमताओं को सशक्त और प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया है । पौराणिक प्रतीकों को आधुनिक सन्दर्भ में जोड़कर प्रस्तुत करने में कवि को विशेष सफलता मिली है । गीतों की दिशा में 'भारती अपने सहयोगी कवियों से बहुत आगे है, जिसका कारण है - प्रचलित शब्द विधान एवं भावुकता । इनके गीतों में सरलता, प्रवाहात्मकता एंवं मधुरता का सुन्दर समन्वय हुआ है । यह कहना अधिक न्याय संगत होगा कि गीतों की दिशा में भारती ने नयी जमीन तैयार की है । उनके गीतों में दर्द वेदना, उदासी व उल्लास की अन्तर्वर्ती धारा प्रवाहित होती है, किन्तु निराशा वेदना और चिन्तन की अपेक्षा प्रेम सौन्दर्य के गीतों में कवि अधिक सफल हुआ है ।

नये नये उपमानों से सुसज्जित 'भारती' की कविता में व्यंजना और प्रेषणीयता का उत्कर्ष है । नूतनता और ताजगी के साथ व्यक्त किये गए भावों को नये उपमानों द्वारा सशक्त बनाया गया है । दिनकर के शब्दों में - 'सच्चे अर्थो में मौलिक कवि वह है, जिसके उपमान मौलिक होते हैं और श्रेष्ठ कविता की यह पहचान है कि उसमें उगने चाले चित्र स्वच्छ और सजीव होते हैं ।'[1] इस दृष्टि से भारती की कविता में मौलिकता, नवीनता और सजीवता पर किसी तरह का सन्देह नहीं किया जा सकता । इन्होंने परम्परागत उपमानों में भी नवीनता की सृष्टि की है ।

भारती ने अपनी रचनाओं में मुक्त छन्दों का प्रयोग किया है, किन्तु लोकगीतों व रूबाइयों को भी पर्याप्त स्थान दिया है । मुक्त छन्द की सर्वथा नवीन भावनाओं से पूर्ण कृति 'कनुप्रिया' है । लय विधान का इन्होंने बराबर ध्यान रखा है । बहुत कम स्थल ऐसे हैं जहाँ गद्यात्मकता खटकती है । शब्द संयोजन में भी कवि

---

1. रामधारीसिंह दिनकर, 'चक्रवाल', पृष्ठ - 73

ने विशेष सावधानी बरती है, किन्तु भाषा के प्रति कवि का विशेष आग्रह नहीं है । सर्वत्र भावानुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है ।

निष्कर्षतः नयी कविता में भारती का योगदान अविस्मरणीय है । उन्होंने नयी कविता को नयी दिशा देकर यह सिद्ध कर दिया है कि नया कवि वैयक्तिक अभिव्यक्ति तक ही सीमित नहीं अपितु सार्वजनीन चिन्तन के प्रति भी सजग है । व्यवहारिक स्तर पर रोमांटिक लगने वाले 'भारती' वैचारिक स्तर पर बौद्धिक लगते हैं । उनमें गहरी प्रभविष्णुता और असाधारण रचनात्मक क्षमता है । वादों और मत मतान्तरों के प्रभाव से अछूते कवि ने बदलते परिवेश के अनुरूप मूल्यों को समझा है । उनका कवि व्यक्तित्व गुनाह के माँसल गीत से प्रारम्भ होकर जनवादी भूमि तक पहुँचा है । यह भारती के काव्य की सराहनीय उपलब्धि ही मानी जायेगी कि वे अनुभूति व अभिव्यक्ति के स्तर पर निरन्तर प्रगति करते गये हैं । यदि 'ठंडालोहा' व 'सात गीत वर्ष' के कथ्य को समेट कर देखा जाये तो स्पष्ट होगा कि भारती की कविता वैयक्तिकता, भावना व यथार्थ का उचित सामन्जस्य करती चली है । प्रेम, सौन्दर्य, मानव मूल्य व युगबोध का सफल सामन्जस्य इन कृतियों में हुआ है । 'अंधायुग' और 'कनुप्रिया' के रूप में नयी कविता को चरम उपलब्धियाँ देन वाले कवि से युग को और भी कई आशाएँ आकांक्षाएँ है, किन्तु इधर कुछ समय से 'भारती' का रचनाकर्म बंद सा है । यद्यपि आज भारती की लेखनी मौन है, किन्तु उनके कवि हृदय में संवेदना जागृत है, मुखर है । अतः कवि से अपेक्षा की जा सकती है कि वह हिंन्दी साहित्य को और समृद्ध बनाये क्योंकि 'युग की वास्तविकताओं से कवि परिचित है, इसके घनिष्ठतम होने की आवश्यकता है । 'गुनाहों का गीत' गाकर कवि स्वयं को प्रसन्न कर ले, किन्तु हमारे लिये तो सृजन के विश्वास के गीत कवि चाहे तो खूब गा सकता है । ये उस नूतन राजमार्ग के पथिक हैं जिसका निर्माण अभी इन्हीं के जैसे सशक्त कलाकारों के द्वारा होना है ।'[1]

****

1. रामकुमार खण्डेलवाल, हिन्दी काव्य और प्रयोगवाद', पृष्ठ - 79

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(अ) धर्मवीर भारती का साहित्य

(आ) सहायक ग्रन्थ

(ब) पत्र - पत्रिकाएँ

(अ) धर्मवीर भारती का साहित्य

काव्य

1. ठण्डालोहा
2. सात गीत वर्ष
3. अंधायुग
4. कनुप्रिया

उपन्यास -

1. गुनाहों का देवता
2. सूरज का सातवाँ घोड़ा
3. ग्यारह सपनों का देश

कहानी संग्रह -

1. मुर्दों का गाँव
2. चाँद और टूटे हुए लोग
3. बन्द गली का आखिरी मकान

एकांकी संकलन -

1. नदी प्यासी थी

आलोचना साहित्य -

1. प्रगतिवाद : एक समीक्षा
2. मानव मूल्य और साहित्य

शोध -

1. सिद्ध साहित्य

स्फुट ललितगद्य -

1. ठेले पर हिमालय
2. पश्यन्ती
3. कहनी अनकहनी
4. मुक्तक्षेत्रे : युद्ध क्षेत्रे

अनुवाद -

1. आस्कर वाइल्ड की कहानियाँ
2. देशांतर

सम्पादन -

1. संगम (पत्रिका)
2. आलोचना (पत्रिका)
3. निकष (पत्रिका)
4. धर्मयुग (पत्रिका)
5. अर्पित मेरी भावना (भगवती चरण वर्मा अभिनंदन ग्रन्थ)
6. हिन्दी साहित्यकोश (ग्रन्थ)

(आ) सहायक ग्रन्थ

1. अविनाश भारद्वाज : छायावाद युगीन काव्य, तक्षशिला प्रकाशन, नई-दिल्ली - 1984
2. उमाकान्त : सप्तक काव्य परम्परा और चौथा सप्तक, कृष्ण जनसेवी एण्ड कम्पनी, बीकानेर, 1981
3. उमेशचन्द्र मिश्र : प्रगतिशील काव्य, ग्रन्थम, कानपुर 1966.
4. कमला प्रसाद पाण्डेय : छायावादः प्रकृति और प्रयोग, साहित्यवाणी, इलाहाबाद 1972
5. करूणापति त्रिपाठी : आधुनिक हिन्दी काव्य प्रवृतियाँ,हिन्दीप्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी 1967
6. कांतिकुमार : नयी कविता, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी भोपाल 1972
7. कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, पराग प्रकाशन, पटना 1965
8. कुमार विमल : नयी कविता नयी आलोचना और कला, भारती भवन पटना 1963
9. कुमार विमल : छायावाद का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1970
10. कुमार विमल : काव्यानुशीलनः आधुनिक अत्याधुनिक, ज्ञानपीठ प्रकाशन, पटना 1970
11. केसरी कुमार : नकेन के प्रपद्य, मोतीलाल बनारसी दास, पटना 1956
12. कैलाश जोशी : धर्मवीर भारती का उपन्यास साहित्य, चिन्मय प्रकाशन, जयपुर 1977
13. कैलाश वाजपेयी : आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-1963
14. कृष्ण लाल : तारसप्तक के कविःकाव्य शिल्प के मान, साहित्य प्रकाशन,दिल्ली-1979
15. कृष्णलाल 'हंस' :प्रगतिवादी काव्य साहित्य, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल-1971

16. कृष्ण सिंघल, : हिन्दी गीति नाट्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन वाराणसी, 1964

17. गजानन माधव मुक्तिबोध : नयी कविता का आत्म संघर्ष, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर 1964

18. गिरिजा कुमार माथुर : नयी कविता:सीमाएँ और सम्भावनाएँ, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली-1966

19. गोविन्द द्विवेदी : नयी कविता में बिम्ब का वस्तुगत परिप्रेक्ष्य, मैकमिलन कम्पनी आफ इंडिया लिमिटेड, दिल्ली- 1975

20. चन्द्रभानु सोनवणे : धर्मवीर भारती का साहित्य:सृजन के विविध रंग, पंचशील प्रकाशन, जयपुर - 1979

21. जगदीश कुमार : नयी कविता विलायती सन्दर्भ सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली- 1976

22. जगदीश गुप्त : नयी कविता:स्वरूप और समस्याएँ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,वाराणसी-1969

23. जगदीश पाण्डेय : शील निरूपण सिद्धान्त और विनियोग, अर्चना प्रकाशन, आरा -1963

24. जनेश्वर वर्मा : हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना, ग्रन्थम्, कानपुर 1976

25. जयदेव तनेजा : समसामयिक हिन्दी नाटकों में चरित्रसृष्टि, सामयिक प्रकाशन,दिल्ली-1971

26. जयदेव तनेजा : अंधायुग और भारती के अन्य नाट्य प्रयोग,नचिकेता प्रकाशन,नईदिल्ली-1981

27. जवाहरलाल नेहरू : मेरी कहानी, सस्ता साहित्य मण्डल, नईदिल्ली- 1965

28. दुर्गा प्रसाद झाला : प्रगतिशील हिन्दी कविता, ग्रन्थम, कानपुर - 1967

29. देवेन्द्रनाथ शर्मा (स.) : छायावाद प्रगतिवाद, ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना

30. देशराजसिंह भाटी : समकालीन हिन्दी कविता, साहित्य प्रकाशन मंदिर, ग्वालियर- 1972

31. नगेन्द्र : आधुनिक हिंदी कविता की प्रमुख प्रवृतियाँ, गौतम बुकडिपो,दिल्ली-1951

32. नगेन्द्र : आलोचक की आस्था, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली-1966

33. नगेन्द्र : आस्था के चरण, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली - 1968

34. नरेन्द्र देव वर्मा : प्रयोगवाद, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर- 1964

35. नरेन्द्र देव वर्मा : नयी कविता:सिद्धान्त और सृजन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली - 1978

36. नामवर सिंह : इतिहास और आलोचना, सत्साहित्य प्रकाशन, बनारस, 1956

37. नामवर सिंह : कविता के नये प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1974

38. निर्मला जैन : आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएँ,नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नईदिल्ली - 1963

39. नूरजहाँ बेगम : पुराख्यान का आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों पर प्रभाव, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा 1982

40. नेमिचन्द्र जैन : बदलते परिप्रेक्ष्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 1968

41. नन्दकिशोर नन्दन : हिन्दी की आधुनिक प्रबन्ध कविता का पौराणिक आधार, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली 1978

42. पट्टाभिसीतारमैया : भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस का इतिहास,सस्ता साहित्य मण्डल,नईदिल्ली-1948

43. परमानन्द श्रीवास्तव : नयी कविता का परिप्रेक्ष्य, नीलाभ प्रकाशन, इलाहावाद 1962

44. पुत्तुलाल शुक्ल : आधुनिक हिन्दी कविता में छन्द योजना, लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन, लखनऊ सं. 2014

45. पुष्पा वास्कर : धर्मवीर भारती:व्यक्ति और साहित्यकार, अलका प्रकाशन, कानपुर-1987

46. प्रकाश चन्द्र गुप्त : आज का हिन्दी साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली-1966

47. प्रकाश दीक्षित : अस्तित्ववाद और नयी कविता, अनादि प्रकाशन, इलाहाबाद

48. प्रभा खत्री : नयी कविता में आँचलिकता बोध, विवेक पब्लिशिंग हाऊस,जयपुर-1983

49. प्रभात दुबे : आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य की सामाजिक पृष्ठभूमि, प्रगति प्रकाशन, आगरा 1983

50. बनवारी लाल शर्मा : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी प्रबंध काव्य, रामा पब्लिशिंग हाउस, जयपुर-1972

51. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : हम विषपायी जनम के, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी - 1964

52. बालकृष्ण राव एवं : नयी कविता परिवेश प्रवृति एवं अभिव्यवित, रंजनप्रकाशन, आगरा-1975

53. गोविन्द रजनीश

54. ब्रजमोहन शर्मा : धर्मवीर भारती: कनुप्रिया तथा अन्य कृतियॉं, भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली - 1976

55. भगवती चरण वर्मा : साहित्य की मान्यताऍं, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद 1962

56. महावीर सिंह चौहान (स.) : नयी कविता की प्रबंध चेतना, गिरनार प्रकाशन, मेहसाना (गुजरात)-1981

57. रघुवंश : साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी- 1963

58. रणजीत : हिन्दी की प्रगतिशील कविता, प्रगतिशील प्रकाशन, दिल्ली 1971

59. रमन नागपाल : आधुनिक हिन्दी काव्य में पलायनवाद, विभू प्रकाशन, इलाहाबाद-1979

60. रमाशंकर तिवारी : प्रयोगवादी काव्यधारा, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी- 1964

61. रमेश कुंतल मेघ : आधुनिक बोध और आधुनिकीकरण, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली- 1969.

62. राजेन्द्र मिश्र : नयी कविता की पहचान, वाणी प्रकाशन, दिल्ली - 1980

63. राजेश्वर दयाल सक्सेना : छायावाद: स्वरूप और व्याख्या, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर 1963

64. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं. 2038

65. रामदरश मिश्र : हिन्दी कविता: आधुनिक आयाम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

66. रामधारी सिंह 'दिनकर' : काव्य की भूमिका, उदयांचल प्रकाशन पटना, 1958

67. राम प्रसाद मिश्र : आलोचना की कुछ नयी दिशाएँ, प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली- 1977

68. रामप्रसाद त्रिवेदी : प्रगतिवादी समीक्षा, ग्रन्थम्, कानपुर 1964

69. रामवचन राय : नई कविताः उद्भव और विकास,बिहार हिंदी ग्रंथ आकादमी,पटना-1974

70. रामविलास शर्मा : स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,बनारस-1953

71. रामविलास शर्मा : प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा- 1957

72. रेखा अवस्थी : प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य, मैकमिलन कम्पनी ऑफ इंडिया, दिल्ली - 1978

73. रांगेय राघव : प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा 1954

74. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, राजपाल एंड संस, दिल्ली 1982

75. विजय द्विवेदी : नयी कविताः प्रेरणा एवं प्रयोजन, प्रगति प्रकाशन, आगरा- 1978

76. वी0 नारायण कुट्टी : हिन्दी की नई कविता, अनुसंधान प्रकाशन कानपुर

77. शिवकुमार मिश्र : नया हिन्दी काव्य, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर - 1962

78. शिवदान सिंह चौहान : साहित्य की समस्याएँ, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली- 1959

79. शेरजंग गर्ग : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, साहित्य भारती, दिल्ली- 1973

80. शंभुनाथ सिंह : प्रयोगवाद और नयी कविता, समकालीन प्रकाशन, आगरा, 1966

81. श्याम नन्दन किशोर : आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा 1963

82. श्याम सुन्दर घोष : नयी कविता का स्वरूप-विकास, हिन्दी साहित्य संसार, पटना 1965

83. श्याम सुन्दर मिश्र : अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर हिन्दी साहित्य, विद्या प्रकाशन, दिल्ली 1971

84. सच्चिदानंदहीरानंदवात्स्यायन'अज्ञेय' : हरीघास पर क्षण भर, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद 1949

85. सच्चिदानंदहीरानंदवात्स्यायन 'अज्ञेय' : बावरा अहेरी, सरस्वती प्रेस इलाहाबाद 1954

86. सच्चिदानंदहीरानंदवात्स्यायन 'अज्ञेय' : तारसप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी 1972

87. सच्चिदानंदहीरानंदवात्स्यायन 'अज्ञेय' : दूसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन वाराणसी, 1970

88. सच्चिदानंदहीरानंदवत्स्यायन 'अज्ञेय' : तीसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन वाराणसी 1967

89. सत्या मल्होत्रा : नयी कविता में सौन्दर्य चेतना, आर्य बुक डिपो, नयी दिल्ली 1982

90. सरजू प्रसाद मिश्र : आधुनिक हिंदी कविता में व्यक्तित्व अंकन,पुस्तक संस्थान कानपुर-1977

91. सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली - 1950

92. सुन्दर लाल कथूरिया : हिन्दी कविता और रस सिद्धान्त, विद्यार्थी प्रकाशन, दिल्ली- 1977

93. सुन्दर लाल कथूरिया : साहित्यः आधुनिक अत्याधुनिक, साहित्यकार प्रकाशन, दिल्ली - 1977

94. सुमित्रा नंदन पंत : आधुनिक कवि, मोतीलाल बनारसी दास, पटना.

95. सुरेश गौतम : अंधायुगः एक सृजनात्मक उपलब्धि, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली-1973

96. सुलभा बाजीराव पाटील : कनुप्रियाः एक मूल्यांकन, पंचशील प्रकाशन, जयपुर 1981

97. सुषमा पाल : छायावाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि, नेशनल पब्लिशिंग हाउस,नईदिल्ली-1971

98. संतोष तिवारी : नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा 1980

99. हरनारायण सिंह : छायावाद काव्य तथा दर्शन, ग्रन्थम् कानपुर

100 हरिचरण शर्मा : नयी कविता नये धरातल, पदम बुक कम्पनी, जयपुर

101 हुकुमचन्द राजपाल : धर्मवीर भारतीः साहित्य के विविध आयाम, विभुप्रकाशन,साहिबाबाद-1980

102 त्रिलोचन पाण्डेय : छायावादोत्तर हिन्दी कविता, कैलाश पुस्तक सदन, ग्वालियर.

पत्र पत्रिकाएँ

आज
आलोचना
कल्पना
धर्मयुग
नई दुनिया
नयी कविता
निकष
पूर्णा
प्रतीक
रविवार
राष्ट्रवाणी
रूपाभ
समालोचक
साप्ताहिक भारत
सारिका
हंस

****